सगुण भक्ति काव्य

संदर्भ और दृष्टि

(Saguna Bhakti Poetry: Reference and Vision)

चंदन कुमार

सगुण भक्ति काव्य : संदर्भ और दृष्टि

सगुण भक्ति काव्य : संदर्भ और दृष्टि

(Saguna Bhakti Poetry: Reference and Vision)

चंदन कुमार

भाषा प्रकाशन

नई दिल्ली – 110002

© प्रकाशक

I.S.B.N. : 978-81-323-5564-9

प्रथम संस्करण : 2021

भाषा प्रकाशन

22, प्रकाशदीप बिल्डिंग, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002

द्वारा वर्ल्ड टेक्नोलॉजीज नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित

प्रस्तावना

परम सत्ता जहां प्रकृति के बन्धन से मुक्त है, उसे निर्गुण और जहां बन्धनयुक्त है, उसे सगुण कहते हैं। सगुण में भी दो विभाग हैं। एक है उनका रूप और दूसरा अ-रूप। मनुष्य में जो बुद्धि, बोधि तथा मैं-पन आदि हैं, वे सब अ-रूप हैं। इन्हें देखा नहीं जा सकता। लेकिन मनुष्य को तो देखा जा सकता है। उसी तरह सगुण ब्रह्म की भी बुद्धि, बोधि तथा 'मैं-पन' अ-रूप हैं। इसी कारण हम उसे देख नहीं सकते हैं।

सगुण रूप में ईश्वर के साकार स्वरूप का नाम ही अवतार है। निर्गुण निराकार का ध्यान तो सम्भव नहीं है, पर सगुण रूप में आकर वह इस संसार के कार्यों में फिर क्रम और व्यवस्था उत्पन्न करते हैं। हमारा प्रत्येक अवतार सर्व व्यापक चेतना सत्ता का मूर्त रूप है।

सगुण धारा के इस विकास क्रम के समानांतर ही बाहर से आए हुए मुसलमान सूफी संत भी अपने विचारों को सामान्य जनता में फैला रहे थे। मुसलमानों के इस लम्बे प्रवास के कारण भारतीय तथा मुस्लिम संस्कृति का आदान-प्रदान होना स्वाभाविक था। फिर इन सूफी संतों ने भी अपने विचारों को जनसाधारण में व्याप्त करने की, अपने मतों को भारतीय आख्यानों में, भारतीय परिवेश में, यहीं की भाषा-शैली लेकर प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया। इनके मतों में कट्टरता का कहीं भी आभास नहीं था। इनका मुख्य सिद्धान्त प्रेम तत्त्व था। यद्यपि प्रेम के माध्यम से ईश्वर को पाने के लिए किए जाने वाले प्रयास

(विधि) में कुछ अन्तर अवश्य था, तथापि इनके प्रेम तत्त्व के प्रतिपादन एवं प्रसार शैली ने लोगों को आकर्षित किया। इन्होंने एकेश्वरवाद का प्रतिपादन भी किया, जिसे कुछ लोगों ने अद्वैतवाद ही मान लिया, जो कि उचित नहीं है।

पुस्तक लेखन में कई लिखित व अलिखित स्रोतों से मदद ली गई है; मैं उन सभी विज्ञ लेखकों के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ। आशा करता हूँ कि पुस्तक पाठकों के लिए उपयोगी होगी।

–लेखक

अनुक्रम

	प्रस्तावना	*v*
1.	**सगुण**	**1**
	भक्ति: उद्‌भव एवं विकास	3
	कृष्ण भक्ति काव्यधारा	14
	भक्ति काल	14
	दादूदयाल	18
	भक्ति काल	23
	प्राणचंद चौहान	28
	प्रेमाश्रयी काव्य के कवि	31
	कृतियाँ	43
2.	**सगुण धारा– रामभक्ति शाखा भक्तिकाल**	**48**
3.	**भक्ति काल**	**83**
	भक्ति काल	84
	संत कवि	85
	कृष्णाश्रयी शाखा	90
	प्रेमाश्रयी शाखा	95
4.	**भक्तिकाल के कवि**	**96**
	सूरदास	96

	कृतियाँ	97
	संत शिरोमणि रविदास	97
	गदाधर भट्ट	101
	हितहरिवंश	101
	गोविन्दस्वामी	102
	चैतन्य महाप्रभु	106
5.	**तुलसीदास**	**109**
	जन्म	109
	बचपन	110
	भगवान श्री राम जी से भेंट	111
	संस्कृत में पद्य-रचना	112
	रामचरितमानस की रचना	113
	कुछ ग्रंथों का संक्षिप्त विवरण	117
	जानकी-मंगल	118
	रामाज्ञा प्रश्न	118
	आराध्य-दर्शन	121
	रत्नावली का महाप्रस्थान	122
	केशवदास से संबद्ध घटना	123
	जीवन की सांध्य वेला	126
	कवितावली-तुलसीदास	127
	रचना काल	127
	साहित्यिक विशेषताएँ	127
	कवितावली का रचना-काल	129
6.	**नाभादास**	**137**
	कृतियाँ	138
7.	**सूरदास**	**170**
	भक्तिकालीन महाकवि जीवन परिचय	170
	सूरदास की जन्मतिथि एवं जन्मस्थान के विषय में मतभेद	171
	सूरदास की वल्लभाचार्य से भेंट	176
	सूरदास, सूरकुटी, सूर सरोवर, आगरा	177
	सूरदास का काव्य	178

	प्रकृति–चित्रण	179
	सूरदास की भक्ति भावना	182
8.	**रहीम**	**190**
	जीवन परिचय	191
	पिता बैरम खाँ की हत्या	192
	रहीम को अकबर का संरक्षण	193
	विवाह	194
	रहीम का भाग्योदय	194
	रचनाएँ	206
	विशेष बिंदु	208
	खान ए खाना मकबरा	209
9.	**मीरा बाई**	**217**
	जीवन परिचय	217

1

सगुण

परम सत्ता जहां प्रकृति के बन्धन से मुक्त है, उसे निर्गुण और जहां बन्धनयुक्त है, उसे सगुण कहते हैं। सगुण में भी दो विभाग हैं। एक है उनका रूप और दूसरा अ–रूप। मनुष्य में जो बुद्धि, बोधि तथा मैं–पन आदि हैं, वे सब अ–रूप हैं। इन्हें देखा नहीं जा सकता। लेकिन मनुष्य को तो देखा जा सकता है। उसी तरह सगुण ब्रह्म की भी बुद्धि, बोधि तथा 'मैं–पन' अ–रूप हैं। इसी कारण हम उसे देख नहीं सकते हैं।

दूसरा है रूपयुक्त। जैसे व्यक्ति अपने मन या चित्त को नहीं देख सकता है। परन्तु जैसे, हाथी के बारे में सोचते समय उसके चित्त में हाथी का रूप साकार हो उठता है—इतना स्पष्ट कि मन उसे देख लेता है। इसलिए चित्त भी कभी अ–रूप है और कभी रूपयुक्त। वैसे ही परमात्मा का चित्त भी रूपयुक्त है—यह दृश्यमान जगत जिसे हम विश्व कहते हैं, उनके चित्त में उभरने वाली आकृति है। यह विश्व ही रूप का समुद्र है और जब यह विषय होगा तब मन सगुण ब्रह्म हो जाएगा।

जहां सीमा का बन्धन है, वहीं रूप है। जहां सीमा नहीं है, असीम है, वहीं अ–रूप है। यहां गुण रह भी सकता है और नहीं भी। जहां गुण है उसे सगुण और जहां गुण नहीं है, उसे निर्गुण कहते हैं।

परमात्मा का चित्त है विश्व। यह उनकी चैत्तिक सृष्टि है। यह रूपवान है, इसलिए इसमें सीमा है।

सगुण रूप में ईश्वर के साकार स्वरूप का नाम ही अवतार है। र्निगुण निराकार का ध्यान तो सम्भव नहीं है, पर सगुण रूप में आकर वह इस संसार के कार्यों में फिर क्रम और व्यवस्था उत्पन्न करते हैं। हमारा प्रत्येक अवतार सर्व व्यापक चेतना सत्ता का मूर्त रूप है। श्री सुदर्शनसिंह ने लिखा है–

"अवतार शरीर प्रभु का नित्य-विग्रह है। वह न मायिक है और न पाँच भौतिक। उसमें स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीरों का भेद भी नहीं होता। जैसे दीपक की ज्योति में विशुद्ध अग्नि है, दीपक की बत्ती की मोटाई केवल उस अग्नि के आकार का तटस्थ उपादान कारण है, ऐसे ही भगवान का श्री विग्रह शुद्ध सचिदानंदान हैं। भक्त का भाव, भाव स्तर से उद्‌भूत है और भाव-बिस्तर नित्य धाम से। भगवान का नित्य-विग्रह कर्मजन्य नहीं है। जीवन की भाँति किसी कर्म का परिणाम नहीं है। वह स्वेच्छामय है, इसी प्रकार भगवानवतार कर्म भी आसक्ति की कामना या वासना के अवतार प्रेरित नहीं है, दिव्य लीला के रूप है। भगवान के अवतार के समय उनके शरीर का बाल्य-कौमारादि रूपों में परिवर्तन दीखता है, वह रूपों के आविर्भाव तथा तिरोभाव के कारण।"

जिस परमात्मा की वेदों में कविरूप में प्रशंसा की गई है अथवा जिसे क्रान्तदर्शी कहा गया है, विद्वान् लोग जिसके सम्बन्ध में यह कहते हैं कि वह परमात्मा दो रूपों वाला है–सगुण और निर्गुण है–दयालु आदि गुणों के कारण वह सगुण है और निराकार, अकाय आदि गुणों के कारण निर्गुण है–ऐसे परमेश्वर को मनुष्यों में विद्वान् लोग अपने जीवन में धारण करते हैं–प्रकट करते हैं।

मनुष्य अपने चित्त में इस विश्व के जितने व्यापक रूप को धारण करेंगा, उसका चैत्तिक विषय जितना बड़ा होगा, उसी के अनुसार उसकी श्रेष्ठता निर्धारित होगी। अतः साधना है मन के विषय को बड़ा बनाना।

समाज में मनुष्य यदि एक विशेष जिला, प्रान्त, देश आदि को लेकर व्यस्त रहे तो उनका चैत्तिक विषय छोटा ही रह जाएगा। उनमें ब्रह्मा साधना कभी भी नहीं हो सकती। इसके लिए उसे पूरे विश्व को अपने चित्त में धारण करना होगा। परमात्मा के लिए हिन्दू-मुसलमान-सिख-ईसाई आदि कुछ नहीं है। साधक का देश है विश्व-ब्रह्माण्ड और जाति है जीव मात्र।

धार्मिक साधना के लिए संपूर्ण जगत को अपना आलम्बन (विषय) बनाना चाहिए। जो विश्व-एकतावाद का प्रचार करते हैं, परन्तु मन में जिलावाद, जातिवाद तथा देशवाद आदि को प्रश्रय देते हैं, वे कपटी हैं। साधक को यह समझना चाहिए कि यह संपूर्ण विश्व मेरा है और हम इस पूरे विश्व के हैं।

समाज है मनुष्य की सामूहिक संस्था। इसमें एक सामूहिक संगति रहती है। जब तक मनुष्य इस विश्व-एकतावाद को नहीं अपनाएगा, तब तक समाज एक नहीं बन सकता है। आदर्श की भिन्नता के अनुसार सबका भिन्न-भिन्न समाज बनता रहेगा।

विश्व शान्ति के लिए इसी सिद्धांत को लेकर चलना होगा। इसी से धर्म की प्रतिष्ठा होगी। संप्रदायवाद और पंथवाद के द्वारा यह कभी संभव नहीं है। मजहब (रिलिजन) से जीवों की मुक्ति होने वाली नहीं है। सर्व-धर्म समन्वय भी एक कपटाचरण है। विश्व समभाव के लिए निर्गुण ब्रह्मा को ही मानना ही पड़ेगा तथा पूरे विश्व को अपने चित्त में रखना होगा। इस विश्व-एकतावाद को छोड़कर और बाकी जितने भी मार्ग हैं, वे हैं मृत्यु के मार्ग। मनुष्य को जीवन की साधना करनी चाहिए, न कि मौत की।

जगत में शान्ति की प्रतिष्ठा के लिए विश्व-एकतावाद को मानना पड़ेगा, किन्तु शान्ति भी आपेक्षिक सत्य है। पापी जब साधुओं के डर से सिर झुकाकर चलता है, तब उसे सात्विक शान्ति कहते हैं और जब सिर उठाकर चलता है, तब तामसिक शान्ति कहते हैं। विश्व-एकतावाद जिनका ध्येय है, वे अवश्य ही सात्विक प्रकृति के व्यक्ति होंगे। आत्मविभाजनी शक्ति को जड़ से नष्ट करना होगा। इसके लिए अपनी मानसिक तथा आध्यात्मिक साधना के द्वारा निरंतर अपना चैत्तिक विकास करते रहना होगा।

भगवान का अवतार नीति और धर्म की स्थापना के लिए होता रहा है। जब समाज में पापों, मिथ्याचारों, दूषितवृत्तियों, अन्याय का बाहुल्य हो जाता है, तब किसी न किसी रूप में पाप-निवृत्ति के लिए भगवान का स्वरूप प्रकट होता है। वह एक असामान्य प्रतिभाली व्यक्ति के रूप में होता है। उसमें हर प्रकार की शक्ति भरी रहती थी। वह स्वार्थ, लिप्सा के मद को, पाप के पुंज को अपने आत्म-बल से दूर कर देता है। दुराचार, छल कपट, धोखा, भय, अन्याय के वातावरण को दूर कर मनुष्य के हृदय में विराजमान देवत्व की स्थापना करता है।

भक्तिः उद्भव एवं विकास

गुजरात के स्वामी माधवाचार्य (संवत् 1254-1333) ने द्वैतवादी वैष्णव सम्प्रदाय (ब्राह्म सम्प्रदाय) चलाया जिसकी ओर भी लोगों का झुकाव हुआ। इसके साथ ही द्वैताद्वैतवाद (सनकादि सम्प्रदाय) के संस्थापक निम्बार्काचार्य ने

विष्णु के दूसरे अवतार कृष्ण की प्रतिष्ठा विष्णु के स्थान पर की तथा लक्ष्मी के स्थान पर राधा को रख कर देश के पूर्व भाग में प्रचलित कृष्ण-राधा (जयदेव, विद्यापती) की प्रेम कथाओं को नवीन रूप एवं उत्साह प्रदान किया। वल्लभाचार्य जी ने भी कृष्ण भक्ति के प्रसार का कार्य किया। जगत्प्रसिद्ध सूरदास भी इस सम्प्रदाय की प्रसिद्धि के मुख्य कारण कहे जा सकते हैं। सूरदास ने वल्लभाचार्य जी से दीक्षा लेकर कृष्ण की प्रेमलीलाओं एवं बाल क्रीड़ाओं को भक्ति के रंग में रंग कर प्रस्तुत किया। माधुर्यभाव की इन लीलाओं ने जनता को बहुत रसमग्न किया। इस तरह दो मुख्य सम्प्रदाय सगुण भक्ति के अन्तर्गत अपने पूरे उत्कर्ष पर इस काल में विद्यमान थे-रामभक्ति शाखा, कृष्णभक्ति शाखा।

इसके अतिरिक्त भी दो शाखाएँ प्रचलित हुईं-प्रेममार्ग (सूफी) तथा निर्गुणमार्ग शाखा।

सगुण धारा के इस विकास क्रम के समानांतर ही बाहर से आए हुए मुसलमान सूफी संत भी अपने विचारों को सामान्य जनता में फैला रहे थे। मुसलमानों के इस लम्बे प्रवास के कारण भारतीय तथा मुस्लिम संस्कृति का आदान-प्रदान होना स्वाभाविक था। फिर इन सूफी संतों ने भी अपने विचारों को जनसाधारण में व्याप्त करने की, अपने मतों को भारतीय आख्यानों में, भारतीय परिवेश में, यहीं की भाषा-शैली लेकर प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया। इनके मतों में कट्टरता का कहीं भी आभास नहीं था। इनका मुख्य सिद्धान्त प्रेम तत्त्व था। यद्यपि प्रेम के माध्यम से ईश्वर को पाने के लिए किए जाने वाले प्रयास-(विधि) में कुछ अन्तर अवश्य था तथापि इनके प्रेम तत्त्व के प्रतिपादन एवं प्रसार शैली ने लोगों को आकर्षित किया। इन्होंने एकेश्वरवाद का प्रतिपादन भी किया जिसे कुछ लोगों ने अद्वैतवाद ही मान लिया, जो कि उचित नहीं है। हजरत निजामुद्दीन चिश्ती, सलीम चिश्ती आदि अनेक संतों ने हिन्दू-मुसलमान सबका आदर प्राप्त किया। इस सूफी मत में भी चार धाराएँ मुख्यत: चलीं-

1. चिश्ती सम्प्रदाय 2. कादरी सम्प्रदाय 3. सुहरावर्दी सम्प्रदाय 4. नक्शबंदिया सम्प्रदाय।

जायसी, कुतुबन, मंझन आदि प्रसिद्ध (साहित्यकार) कवियों ने हिन्दी साहित्य को अमूल्य साहित्य रत्न भेंट किए। निर्गुणज्ञानाश्रयी शाखा पर भी इनका प्रभाव पड़ा तथा हिन्दू-मुसलमानों के भेद को मिटाने की बातें कहीं जाने लगीं। आचार्य शुक्ल ने भी इन्हें 'हिन्दू और मुसलमान' हृदय को आमने-सामने करके अजनबीपन मिटाने वाला कहा।

रामानन्द जी उत्तर भारत में रामभक्ति को लेकर आए थे। उनके सिद्धान्तों में इस भक्ति का स्वरूप दो प्रकार का था–राम का निर्गुण रूप राम का अवतारी रूप। ये दोनों मत एक साथ ही थे। निर्गुण रूप में राम का नाम तो होता पर उसे 'दशरथ–सुत' की कथा से सम्बद्ध नहीं किया जाता। रामानन्द ने देखा कि भगवान की शरण में आने के उपरान्त छूआ–छूत, जाँत–पाँत आदि का कोई बन्धन नहीं रह जाता, अतः संस्कृत के पण्डित और उच्च ब्राह्मण कुलोद्भूत होने के पश्चात भी उन्होंने देश–भाषा में कविता लिखी और सबको (ब्राह्मण से लेकर निम्नजाति वालों तक को) राम–नाम का उपदेश दिया। कबीर इन्हीं के शिष्य थे। कबीर, रैदास, धन्ना, सेना, पीपा आदि इनके शिष्यों ने इस मत को प्रसिद्ध किया। रामनाम के मंत्र को लेकर चलने वाले अक्खड़–फक्कड़ संतों ने भेद–भाव भुला कर सबको प्रेमपूर्वक गले लगाने की बात कही। वैदिक कर्मकाण्ड के द्वारा फैले हुए आडंबरों एवं बाह्य विधि–विधानों के त्याग पर बल देते हुए राम नाम का प्रेम, श्रद्धा से स्मरण करने की सरल पद्धति और सहज समाधि का प्रसार किया। कबीर में तीन प्रमुख धाराएँ समाहित दिखाई देती हैं–

1. उत्तरपूर्व के नाथ–पंथ और सहजयान का मिश्रित रूप 2. पश्चिम का सूफी मतवाद और 3. दक्षिण का वेदान्तभावित वैष्णवधर्म

हठयोग का कुछ प्रभाव इन पर अवश्य हैं, किन्तु मुख्यतः प्रेम तत्त्व पर ही बल दिया गया है। सामाजिक सुधार के क्षेत्र में इन संतों का महत्त्वपूर्ण योग रहा है। इन संतों के साहित्य में हमें तत्कालीन युग की सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक समस्त स्थितियों के दर्शन हो जाते हैं। धार्मिक दृष्टि से भी इनका योग बहुत है। सहज प्रेम की भाषा पर बल देने के कारण लोगों का इन पर भी बहुत झुकाव रहा। कबीर की मृत्यु के कुछ समय बाद इसमें भी सम्प्रदाय की स्थापना हो गई। अन्य शाखाओं के समान इसका महत्व भी भक्तिकाल को पूर्ण बनाने में है।

ये चारों शाखाएँ भक्तिकाल या मध्यकाल के पूर्व भाग में अपने उत्कर्ष में थीं। इन चारों ही शाखाओं ने हिन्दी साहित्य को बड़े–बड़े व्यक्तित्त्व प्रदान किए जैसे–सूर, तुलसी, कबीर आदि। अपने भक्तिभाव की चरम उत्कृष्टता के लिए भी ये जनता के मन–मानस पर आधिपत्य कर सके। आज भी ये श्रद्धा एवं आदर से देखे जाते हैं। यद्यपि कालान्तर में इन सम्प्रदायों में भी अनैतिकता के तत्त्वों के प्रवेश के कारण शुद्धता नहीं रह गई थी तथा इनका पतन भी धीरे–धीरे हो गया था तथापि जो अद्भुत मणियाँ इस काल में प्राप्त हुई, वे किसी भी अन्य

काल में प्राप्त नहीं हो सकीं, यह निस्संदेह कहा जा सकता है। भक्तिकाल में हर प्रकार से कला समृद्धि हुई, नवीन वातावरण का जन्म हुआ, जन-जन में भक्ति, प्रेम और श्रद्धा के स्रोत फूट पड़े, ऐसा काल वस्तुतः साहित्येतिहास का "स्वर्णकाल" कहलाने योग्य है।

सम्प्रदायों से मुक्त रूप में भी भक्ति का प्रचार था। मीरा, रसखान, रहीम का नाम उतनी ही श्रद्धा से लिया जाता है जितना कि किसी सम्प्रदायबद्ध संत कवि का। इस तरह कहा जा सकता है कि जनता में सम्प्रदाय से भी अधिक शुद्ध भक्ति-भाव की महत्ता थी। ऐकान्तिक भक्ति ने समष्टिगत रूप धारण किया और जन-जन के हृदय को आप्लावित कर दिया।

तुलसी की मृत्य (1680 ई.) के कुछ समय बाद ही रीतिकाल के आगमन के चिह्न दिखाई देने लगे थे। राम के मर्यादावादी रूप का सामान्यीकरण करके उसमें भी लौकिक लीलाओं का समावेश कर दिया गया। कृष्ण की प्रेम भक्ति (मूलक) जागृत करने वाली लीलाओं में से कृष्ण की शृंगारिक लीलाओं को ग्रहण करके उसका अश्लील चित्रण होने लगा था। यह स्थिति रीतिकाल में अपने घोरतम रूप में पहुँच गई थी। इसीलिए कहा गया था "राधिका कन्हाई सुमरिन को बहानों है।" रामभक्ति का जो रूप तुलसी ने अंकित किया था, यद्यपि वह धूमिल नहीं हुआ तथापि राजाओं के आश्रय में रहने वाले कवियों ने शृंगारिकता के वातावरण में उसे विस्मृत कर दिया था। इस तरह धीरे-धीरे ई. 1680-90 के आसपास भक्तिकाल समाप्त हो गया।

कालांतर में यद्यपि जनता में भक्तिभाव विद्यमान रहे तथापि न तो इस काल में (तुलसी आदि के समान) कोई महान विभूति पैदा हो सकी और न कोई बहुत अधिक लोकप्रिय ग्रंथ ही लिखा जा सका।

भक्ति युग का यह आन्दोलन बहुत बड़ा आन्दोलन था एवं ऐसा आन्दोलन भारत ने इससे पहले कभी नहीं देखा था। इस साहित्य ने जनता के हृदय में श्रद्धा, भक्ति, विश्वास, जिजीविषा जागृत की, साहस, उल्लास, प्रेम भाव प्रदान किया, अपनी मातृभूमि, इसकी संस्कृति का विराट एवं उत्साहवर्धक चित्र प्रस्तुत किया, लोगों के हृदय में देशप्रेम भी प्रकारंतर से इसी कारण जागृत हुआ।

भक्तियुग में इस तरह मुख्यतः भक्तिपरक साहित्य की रचना हुई परन्तु यह भी पूर्णतया नहीं कहा जा सकता कि किसी अन्य प्रकार का साहित्य उस काल में था ही नहीं। यह अकबर का शासन काल था तथा उसके दरबार में अनेक कवि थे। अब्दुर्रहीम खानखाना आदि की राजप्रसस्तिपरक कुछ कविताएँ मिलती

हैं। अकबर ने साहित्य की पारम्परिक धारा को भी प्रोत्साहन दिया था अतः काव्य का वह रूप भी कृपाराम की "हिततरंगिणी" बीरबल के फुटकर दोहों आदि में उपलब्ध होता है। इसके अतिरिक्त नीति परक दोहे आदि लिखे गये।

एक और महान कवि आचार्य केशव को शुक्ल जी ने भक्तिकाल के फुटकर कवियों में रखा है। यह कार्य उन्होंने केशव के रचनाकाल के आधार पर किया है। केशव की अलंकार, छंद, रस के लक्षणों-उदाहरणों को प्रस्तुत करने वाली तीन महत्त्वपूर्ण रचनाओं-कवि प्रिया, रसिक प्रिया तथा रामचन्द्रिका को भक्ति से भिन्न मान कर भी उन्हें इस युग के फुटकर कवियों में शुक्ल जी ने रखा है, परन्तु यह उचित नहीं है। केशव का आचार्यत्त्व पूरे रीतिकाल को गौरव प्रदान करता है। रीति-लक्षण-उदाहरण के निर्धारण की परम्परा भी सर्वप्रथम उन्हीं में दिखाई देती है चाहे रीतिकाल में इस निर्धारण के लिए केशव को रीतिकाल से पृथक करना अनुचित है अतः उन्हें भक्तियुग में रखना उचित नहीं है।

भक्तिकाल में ललित कलाओं का उत्कर्ष दिखाई देता है। श्रीकृष्ण-राधा की विभिन्न लीलाओं के चित्र इस काल में मिलते हैं, कोमल एवं सरस भावों को अभिव्यक्त करने वाली अनेक मूर्तियाँ इस काल में मिलती है। मूर्तिकला का बहुत अधिक विकास इस युग में हुआ था। वास्तुकला, चित्रकला में मुस्लिम (ईरानी) शैली का समन्वय भारतीय शैली में हुआ फलतः मेहराबें, गुम्बद आदि का प्रयोग अधिक दिखाई देने लगा। मध्यकाल में राजस्थानी शैली अधिक लोकप्रिय थी। मानवीय चित्रों के अतिरिक्त प्राकृतिक दृश्यों का अंकन, दरबारी जीवन के विविध प्रसंग भी भित्ति चित्र इस युग में प्राप्त होते हैं। 'कुतुबमीनार', 'अढ़ाई दिन का झौंपड़ा' आदि ऐतिहासिक वास्तुकला के अप्रतिम नमूने हैं।

इस तरह साहित्य के साथ ललित कलाओं का विकास भी बहुत अधिक हुआ था। संगीत के क्षेत्र में बहुत प्रगति हुई। कृष्णलीलाओं का गायन, साखी, रमैनी, पद को राग निबद्ध करने की जैसी योजना इस काल में है वैसी अन्यत्र प्राप्य नहीं है। सूर और तुलसी साहित्य में अनेक राग-रागनियों का वर्णन आता है।

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि भक्ति के उद्भव एवं विकास के समय जो कुछ भी भारतीय साहित्य, भारतीय संस्कृति तथा इतिहास को प्राप्त हुआ, वह स्वयं में अद्भुत, अनुपम एवं दुर्लभ है। अंततः हजारी प्रसाद द्विवेदी जी के शब्दों में कह सकते है– "समूचे भारतीय इतिहास में यह अपने 'ग का अकेला साहित्य

है। इसी का नाम भक्ति साहित्य है। यह एक नई दुनिया है। भक्ति का यह नया इतिहास मनुष्य जीवन के एक निश्चित लक्ष्य और आदर्श को लेकर चला। यह लक्ष्य है भगवद्भक्ति, आदर्श है शुद्ध सात्विक जीवन और साधन है भगवान के निर्मल चरित्र और सरस लीलाओं का गान।"

भारतीय धर्म और संस्कृति के इतिहास में कृष्ण सदैव एक अद्भुत व विलक्षण व्यक्तित्त्व माने जाते रहें है। हमारी प्राचीन ग्रंथों में यत्र-तत्र कृष्ण का उल्लेख मिलता है जिससे उनके जीवन के विभिन्न रूपों का पता चलता है।

यदि वैदिक व संस्कृत साहित्य के आधार पर देखा जाए तो कृष्ण के तीन रूप सामने आते है–

1. बाल व किशोर रूप,
2. क्षत्रिय नरेश,
3. ऋषि व धर्मोपदेशक।

श्रीकृष्ण विभिन्न रूपों में लौकिक और अलौकिक लीलाएं दिखाने वाले अवतारी पुरूष हैं। गीता, महाभारत व विविध पुराणों में उन्हीं के इन विविध रूपों के दर्शन होतें हैं।

कृष्ण महाभारत काल में ही अपने समाज में पूजनीय माने जाते थे। वे समय-समय पर सलाह देकर धर्म और राजनीति का समान रूप से संचालन करते थे। लोगों में उनके प्रति श्रद्धा और आस्था का भाव था। कृष्ण भक्ति काव्य धारा के कवियों ने अपनी कविताओं में राधा-कृष्णा की लीलाओं को प्रमुख विषय बनाकर वृहद काव्य सजन किया। इस काव्यधारा की प्रमुख विशेषतायें इस प्रकार है–

1. राम और कृष्ण की उपासना

समाज में अवतारवाद की भावना के फलस्वरूप राम और कृष्ण दोनों के ही रूपों का पूजन किया गया।

दोनों के ही पूर्ण ब्रह्म का प्रतीक मानकर, आदर्श मानव के रूप में प्रस्तुत किया गया।

किंतु जहाँ राम मर्यादा पुरषोत्तम के रूप में सामने आते हैं, वहीं कृष्ण एक सामान्य परिवार में जन्म लेकर सामंती

अत्याचारों का विरोध करते हैं। वे जीवन में अधिकार और कर्तव्य के सुंदर मेल का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

वे जिस तन्मयता से गोपियों के साथ रास रचाते हैं, उसी तत्परता से राजनीति का संचालन करते हैं या फिर महाभारत के युद्ध भूमि में गीता उपदेश देते हैं।

इस प्रकार से राम व कृष्ण ने अपनी अपनी चारित्रिक विशेषताओं द्वारा भक्तों के मानस को आंदोलित किया।

2. राधा-कृष्ण की लीलाएं

कृष्णा-भक्ति काव्य धारा के कवियों ने अपनी कविताओं में राधा-कृष्णा की लीलाओं को प्रमुख विषय बनाया।

श्रीमदभागवत में कृष्ण के लोकरंजक रूप को प्रस्तुत किया गया था।

भागवत के कृष्ण स्वयं गोपियों से निर्लिप्त रहते हैं।

गोपियाँ बार-बार प्रार्थना करती है तभी वे प्रकट होते हैं जबकि हिन्दी कवियों के कान्हा एक रसिक छैला बनकर गोपियों का दिल जीत लेते हैं।

सूरदास जी ने राधा-कृष्ण के अनेक प्रसंगों का चित्रण कर उन्हें एक सजीव व्यक्तित्त्व प्रदान किया है।

हिन्दी कवियों ने कृष्ण के चरित्र को नाना रूप रंग प्रदान किये हैं, जो काफी लीलामयी व मधुर जान पड़ते हैं।

3. वात्सल्य रस का चित्रण

पुष्टिमार्ग प्रारंभ हुया तो बाल कृष्ण की उपासना का ही चलन था। अतः कवियों ने कृष्ण के बाल रूप को पहले पहले चित्रित किया।

यदि वात्सल्य रस का नाम लें तो सबसे पहले सूरदास का नाम आता है, जिन्हें आप इस विषय का विशेषज्ञ कह सकते हैं। उन्होंने कान्हा के बचपन की सूक्ष्म से सूक्ष्म गतिविधियाँ भी ऐसी चित्रित की हैं, मानो वे स्वयं वहाँ उपस्थित हों।

मैया कबहूँ बढेगी चोटि?

कितनी बार मोहिं ढूध पियत भई, यह अजहूँ है छोटी।

सूर का वात्सल्य केवल वर्णन मात्र नहीं है। जिन-जिन स्थानों पर वात्सल्य भाव प्रकट हो सकता था, उन सब घटनाओं को आधार बनाकर काव्य रचना की गयी है। माँ यशोदा अपने शिशु को पालने में सुला रही हैं और निंदिया से विनती करती हैं कि वह जल्दी से उनके लाल की अंखियों में आ जाए।

जसोदा हरी पालनै झुलावै।
हलरावै दुलराय मल्हरावै जोई सोई कछु गावै।
मेरे लाल कौ आउ निंदरिया, काहै मात्र आनि सुलावै।
तू काहे न बेगहि आवे, तो का कान्ह बुलावें।

कृष्ण का शैशव रूप घटने लगता है तो माँ की अभिलाषाएं भी बढ़ने लगती हैं। उसे लगता है कि कब उसका शिशु उसका शिशु उसका आँचल पकड़कर डोलेगा। कब, उसे माँ और अपने पिता को पिता कहके पुकारेगा, वह लिखते है–

जसुमति मन अभिलाष करै,
कब मेरो लाल घुतरुवनी रेंगै, कब घरनी पग द्वैक भरे,
कब वन्दहिं बाबा बोलौ, कब जननी काही मोहि रै,
रब घौं तनक–तनक कछु खैहे, अपने कर सों मुखहिं भरे
कब हसि बात कहेगौ मौ सौं, जा छवि तै दुख दूरि हरै।

सूरदास ने वात्सल्य में संयोग पक्ष के साथ–साथ वियोग का भी सुंदर वर्णन किया है। जब कंस का बुलावा लेकर अक्रूर आते हैं तो कृष्ण व बलराम को मथुरा जाना पड़ता है। इस अवसर पर सूरदास ने वियोग का मर्मस्पर्शी चित्र प्रस्तुत किया है। यशोदा बार बार विनती करती है कि कोई उनके गोपाल को जाने से रोक ले–

जसोदा बार बार यों भारवै
है ब्रज में हितू हमारौ, चलत गोपालहिं राखै

जब उधौ कान्हा का संदेश लेकर आते हैं, तो माँ यशोदा का हृदय अपने पुत्र के वियोग में रो देता है, वह देवकी को संदेश भिजवाती हैं।

संदेस देवकी सों कहियो।
हों तो धाय तिहारे सुत की कृपा करत ही रहियो।।
उबटन तेल तातो जल देखत ही भजि जाने
जोई–चोर मांगत सोइ–सोइ देती करम–करम कर न्हाते।
तुम तो टेक जानतिही धै है ताऊ मोहि कहि आवै।
प्रातः उठत मेरे लाड लडैतहि माखन रोटी भावै।

4. शृंगार का वर्णन

कृष्ण भक्त कवियों ने कृष्ण व गोपियों के प्रेम वर्णन के रूप में पूरी स्वच्छंदता से शृंगार रस का वर्णन किया है। कृष्ण व गोपियों का प्रेम धीरे–धीरे

विकसित होता है। कृष्ण, राधा व गोपियों के बीच अक्सर छेड़छाड़ चलती रहती है–

तुम पै कौन दुहावै गैया
इत चितवन उन धार चलावत, यहै सिखायों मैया।
सूर कहा ए हमकों जातै छाछहि बेचनहारि।

कवि विद्यापति ने कृष्ण के भक्त–वत्सल रूप को छोड़ कर शृंगारिक नायक वाला रूप ही चित्रित किया है।

विद्यापति की राधा भी एक प्रवीण नायिका की तरह कहीं मुग्धा बनती है, तो कभी कहीं अभिसारिका। विद्यापति के राधा–कृष्ण यौवनावस्था में ही मिलते हैं और उनमें प्यार पनपने लगता है।

प्रेमी नायक, प्रेमिका को पहली बार देखता है तो रमनी के रूप पर मुग्ध हो जाता है।

सजनी भलकाए पेखन न मेल
मेघ–माल सयं तड़ित लता जनि
हिरदय सेक्ष दई गेल।

हे सखी ! मैं तो अच्छी तरह उस सुन्दरी को देख नहीं सका क्योंकि जिस प्रकार बादलों की पंक्ति में एका एक बिजली चमक कर छिप जाती है उसी प्रकार प्रिया के सुंदर शरीर की चमक मेरे हृदय में भाले की तरह उतर गयी और मैं उसकी पीडा झेल रहा हूँ।

विद्यापति की राधा अभिसार के लिए निकलती है तो सौंप पाँव में लिपट जाता है। वह इसमें भी अपना भला मानती है, कम से कम पाँव में पड़े नूपुरों की आवाज तो बंद हो गयी।

इसी प्रकार विद्यापति वियोग में भी वर्णन करते हैं। कृष्ण के विरह में राधा की आकुलता, विवशता, दैन्य व निराशा आदि का मार्मिक चित्रण हुया है।

सजनी, के कहक आओव मधाई।
विरह–पयोचि पार किए पाऊव, मझुम नहिं पति आई।
एखत तखन करि दिवस गमाओल, दिवस दिवस करि मासा।
मास–मास करि बरस गमाओल, छोड़ लूँ जीवन आसा।
बरस–बरस कर समय गमाओल, खोल लूं कानुक आसे।
हिमकर–किरन नलिनी जदि जारन, कि कर्ण माधव मासे।

इस प्रकार कृष्ण भक्त कवियों ने प्रेम की सभी अवस्थाओं व भाव-दशाओं का सफलतापूर्वक चित्रण किया है।

5. भक्ति भावना

यदि भक्ति-भावना के विषय में बात करें तो कृष्ण भक्त कवियों में सूरदास, कुंमंदास व मीरा का नाम उल्लेखनीय है।

सूरदासजी ने वल्लभाचार्य जी से दीक्षा ग्रहण कर लेने के पूर्व प्रथम रूप में भक्ति-भावना की व्यंजना की है।

नाथ जू अब कै मोहि उबारो
पतित में विख्यात पतित हौं पावन नाम विहारो।।

सूर के भक्ति काव्य में अलौकिकता और लौकिकतता, रागात्मकता और बौद्धिकता, माधुर्य और वात्सल्य सब मिलकर एकाकार हो गए हैं।

भगवान् कृष्ण के अनन्य भक्ति होने के नाते उनके मन से से सच्चे भाव निकलते हैं। उन्होंने ही भ्रमरनी परम्परा को नए रूप में प्रस्तुत किया। भक्त-शिरोमणि सूर ने इसमें सगुणोपासना का चित्रण, हृदय की अनुभूति के आधार पर किया है।

अंत में गोपियों अपनी आस्था के बल पर निर्गुण की उपासना का खंडन कर देती हैं।

उधौ मन नाहिं भए दस-बीस
एक हुतो सो गयो श्याम संग
को आराधै ईश।

मीराबाई कृष्ण को अपने प्रेमी ही नही, अपितु पति के रूप में भी स्मरण करती है। वे मानती है कि वे जन्म-जन्म से ही कृष्ण की प्रेयसी व पत्नी रही हैं। वे प्रिय के प्रति आत्म-निवेदन व उपालंभ के रूप में प्रणय-वेदना की अभिव्यक्ति करती है।

देखो सईयां हरि मन काठ कियो
आवन कह गयो अजहूं न आयो, करि करि गयो
खान-पान सुध-बुध सब बिसरी कैसे करि मैं जियो
वचन तुम्हार तुमहीं बिसरै, मन मेरो हर लियो
मीरां कहे प्रभु गिरधर नागर, तुम बिन फारत हियो।

भक्ति काव्य के क्षेत्र में मीरा सगुण-निर्गुण श्रद्धा व प्रेम, भक्ति व रहस्यवाद के अन्तर को भरते हुए, माधुर्य भाव को अपनाती हैं। उन्हें तो अपने सांवरियां का ध्यान कराने में, उनको हृदय की रागिनी सुनाने व उनके सम्मुख नृत्य करने में ही आनंद आता है।

आली रे मेरे नैणां बाण पड़ीं।
चित चढ़ी मेरे माधुरी मुरल उर बिच आन अड़ी।
कब की ठाढ़ी पंछ निहारूं अपने भवन खड़ी।

6. ब्रज भाषा व अन्य भाषाओं का प्रयोग

अनेक कवियों ने निःसंकोच कृष्ण की जन्मभूमि में प्रचलित ब्रज भाषा को ही अपने काव्य में प्रयुक्त किया। सूरदास व नंददास जैसे कवियों ने भाषा के रूप को इतना निखार दिया कि कुछ समय बाद यह समस्त उत्तरी भारत की साहित्यिक भाषा बन गई।

यद्यपि ब्रज भाषा के अतिरिक्त कवियों ने अपनी-अपनी मात' भाषाओं में कृष्ण काव्य की रचना की। विद्यापति ने मैथिली भाषा में अनेक भाव प्रकट किए।

सप्ति हे कतहु न देखि मधाई
कांप शरीर धीन नहि मानस, अवधि निअर मेल आई
माधव मास तिथि भयों माधव अवधि कहए पिआ गेल।
मीरा ने राजस्थानी भाषा में अपने भाव प्रकट किए।
रमैया बिन नींद न आवै
नींद न आवै विरह सतावै, प्रेम की आंच हुलावै।

प्रमुख कवि

महाकवि सूरदास को कृष्ण भक्त कवियों में सबसे ऊँचा स्थान दिया जाता है। इनके द्वारा रचित ग्रंथों में "सूर-सागर", "साहित्य-लहरी" व "सूर-सारावली" उल्लेखनीय है। कवि कुंभनदास अष्टछाप कवियों में सबसे बड़े थे, इनके सौ के करीब पद संग्रहित हैं, जिनमें इनकी भक्ति भावना का स्पष्ट परिचय मिलता है।

संतन को कहा सींकरी सो काम।
कुंभनदास लाल गिरधर बिनु और सवै वे काम।

इसके अतिरिक्त परमानंद दास, कृष्णदास गोविंद स्वामी, छीतस्वामी व चतुर्भुज दास आदि भी अष्टछाप कवियों में आते हैं किंतु कवित्व की दृष्टि से सूरदास सबसे ऊपर हैं।

राधावल्लभ संप्रादय के कवियों में "हित-चौरासी" बहुत प्रसिद है, जिसे श्री हित हरिवंश जी ने लिखा है। हिंदी के कृष्ण भक्त कवियों में मीरा के अलावा बेलिकिशन रुक्मिनी के रचयिता पृथ्वीराज राठौर का नाम भी उल्लेखनीय है।

कृष्ण भक्ति धारा के कवियों ने अपने काव्य में भावात्मकता को ही प्रधानता दी। संगीत के माधुर्य से मानो उनका काव्य और निखर आया। इनके काव्य का भाव व कला पक्ष दोनों ही प्रौढ़ थे व तत्कालीन जन ने उनका भरपूर रसास्वादन किया। कृष्ण भक्ति साहित्य ने सैकड़ों वर्षों तक भक्तजनों का हृदय मुग्ध किया। हिन्दी साहित्य के इतिहास में कृष्ण की लीलाओं के गान, कृष्ण के प्रति सख्य भावना आदि की दृष्टि से ही कृष्ण काव्य का महत्व नहीं है, वरन आगे चलकर राधा कृष्ण को लेकर नायक नायिका भेद, नख शिख वर्णन आदि की जो परम्परा रीतिकाल में चली, उस के बीज इसी काव्य में सन्निहित है। रीतिकालीन काव्य में ब्रजभाषा को जो अंलकृत और कलात्मक रूप मिला, वह कृष्ण काव्य के कवियों द्वारा भाषा को प्रौढ़ता प्रदान करने के कारण ही संभव हो सका।

कृष्ण भक्ति काव्यधारा

संत कवि

संपादक-मिथिलेश वामनकर वद: सितम्बर 17, 2008

भक्ति काल

निर्गुण ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रमुख संत कवियों का परिचय

कबीर, कमाल, रैदास या रविदास, धर्मदास, गुरू नानक, दादूदयाल, सुंदरदास, रज्जब, मलूकदास, अक्षर अनन्य, जंभनाथ, सिंगा जी, हरिदास निरंजनी।

कबीर

कबीर का जन्म 1397 ई. में माना जाता है। उनके जन्म और माता-पिता को लेकर बहुत विवाद है। लेकिन यह स्पष्ट है कि कबीर जुलाहा थे, क्योंकि उन्होंने अपने को कविता में अनेक बार जुलाहा कहा है। कहा जाता है कि वे विधवा ब्राह्मणी के पुत्र थे, जिसे लोकापवाद के भय से जन्म लेते ही काशी के लहरतारा ताल के पास फेंक दिया गया था। अली या नीरू नामक जुलाहा बच्चे को अपने यहाँ उठा लाया। इस प्रकार कबीर ब्राह्मणी के पेट से उत्पन्न हुए थे, लेकिन उनका पालन-पोषण जुलाहे के यहाँ हुआ। बाद में वे जुलाहा ही प्रसिद्ध हुए। कबीर की मृत्यु के बारे में भी कहा जाता है कि हिन्दू उनके शव को जलाना चाहते थे और मुसलमान दफनाना। इस पर विवाद हुआ, किन्तु पाया गया कि कबीर का शव अंतर्धान हो गया है। वहाँ कुछ फूल हैं। उनमें कुछ फूलों को हिन्दुओं ने जलाया और कुछ को मुसलमानों ने दफनाया।

कबीर की मृत्यु मगहर जिला बस्ती में सन् 1518 ई. में हुई।

कबीर का अपना पंथ या संप्रदाय क्या था, इसके बारे में कुछ भी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। वे रामानंद के शिष्य के रूप में विख्यात हैं, किन्तु उनके 'राम' रामानंद के 'राम' नहीं हैं। शेख तकी नाम के सूफी संत को भी कबीर का गुरू कहा जाता है, किन्तु इसकी पुष्टि नहीं होती। संभवतः कबीर ने इन सबसे सत्संग किया होगा और इन सबसे किसी न किसी रूप में प्रभावित भी हुए होंगे।

इससे प्रकट होता है कि कबीर की जाति के विषय में यह दुविधा बराबर बनी रही है। इसका कारण उनके व्यक्तित्त्व, उनकी साधना और काव्य में कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं, जो हिन्दू या मुसलमान कहने-भर से नहीं प्रकट होतीं। उनका व्यक्तित्त्व दोनों में से किसी एक में नहीं समाता।

उनकी जाति के विषय में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपनी पुस्तक 'कबीर' में प्राचीन उल्लेखों, कबीर की रचनाओं, प्रथा, वन्यजीवी अथवा बुनकर जातियों के रीति-रिवाजों का विवेचन-विश्लेषण करके दिखाया है।

आज की वन्यजीवी जातियों में से अधिकांश किसी समय ब्राह्मण श्रेष्ठता को स्वीकार नहीं करती थी। जागी नामक आश्रम-भ्रष्ट घरबारियों की एक जाति सारे उत्तर और पूर्वी भारत में फैली थी। ये नाथपंथी थे। कपड़ा बुनकर और सूत कातकर या गोरखनाथ और भरथरी के नाम पर भीख माँग कर जीविका चलाया करते थे। इनमें निराकार भाव की उपासना प्रचलित थी, जाति भेद और ब्राह्मण

श्रेष्ठता के प्रति उनकी कोई सहानुभूति नहीं थी और न अवतारवाद में ही कोई आस्था थी। आसपास के वृहत्तर हिन्दू-समाज की दृष्टि में ये नीच और अस्पृश्य थे। मुसलमानों के आने के बाद ये धीरे-धीरे मुसलमान होते रहे। पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार और बंगाल में इनकी कई बस्तियों ने सामूहिक रूप से मुसलमानी धर्म ग्रहण किया। कबीर दास इन्हीं नवधर्मांतरित लोगों में पालित हुए थे।

रज्जब

(17वीं शती)

रज्जब दादू के शिष्य थे। ये भी राजस्थान के थे। इनकी कविता में सुंदरदास की शास्त्रीयता का तो अभाव है, किन्तु पं. हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार—रज्जब दास निश्चय की दादू के शिष्यों में सबसे अधिक कवित्व लेकर उत्पन्न हुए थे। उनकी कविताएँ भावपन्न, साफ और सहज हैं। भाषा पर राजस्थानी प्रभाव अधिक है और इस्लामी साधना के शब्द भी अपेक्षाकृत अधिक हैं।

अक्षर अनन्य

सन् 1653 में इनके वर्तमान रहने का पता लगता है। ये दतिया रियासत के अंतर्गत सेनुहरा के कायस्थ थे और कुछ दिनों तक दतिया के राजा पृथ्वीचंद के दीवान थे। पीछे ये विरक्त होकर पन्ना में रहने लगे। प्रसिद्ध छत्रसाल इनके शिष्य हुए। एक बार ये छत्रसाल से किसी बात पर अप्रसन्न होकर जंगल में चले गए। पता लगने पर जब महाराज छत्रसाल क्षमा प्रार्थना के लिए इनके पास गए तब इन्हें एक झाड़ी के पास खूब पैर फैलाकर लेटे हुए पाया। महाराज ने पूछा-'पाँव पसारा कब से?' चट से उत्तर मिला-'हाथ समेटा जब से'।

ये विद्वान थे और वेदांत के अच्छे ज्ञाता थे। इन्होंने योग और वेदांत पर कई ग्रंथ लिखे।

कृतियाँ —1. राजयोग 2. विज्ञानयोग 3. ध्यानयोग 4. सिद्धांतबोध 5. विवेकदीपिका 6. ब्रह्मज्ञान 7. अनन्य प्रकाश आदि।

'दुर्गा सप्तशती' का भी हिन्दी पद्यों में अनुवाद किया।

मलूकदास

मलूकदास का जन्म लाला सुंदरदास खत्री के घर में वैशाख कृष्ण 5, सन् 1574ई. में कड़ा, जिला इलाहाबाद में हुआ।

इनकी मृत्यु 108 वर्ष की अवस्था में सन् 1682 में हुई। वे औरंगजेब के समय में दिल के अंदर खोजने वाले निर्गुण मत के नामी संतों में हुए हैं और उनकी गद्दियाँ कड़ा, जयपुर, गुजरात, मुलतान, पटना, नेपाल और काबुल तक में कायम हुई। इनके संबंध में बहुत से चमत्कार और करामातें प्रसिद्ध हैं। कहते है कि एक बार इन्होंने एक डूबते हुए शाही जहाज को पानी के ऊपर उठाकर बचा लिया था और रूपयों का तोड़ा गंगाजी में तैरा कर कड़े से इलाहबाद भेजा था।

आलसियों का यह मूल मंत्र –

अजगर करें न चाकरी, पंछी करें न काम।
दास मलूका कहि गए, सबको दाता राम ।।

इन्हीं का है। हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों को उपदेश में प्रवृत्त होने के कारण दूसरे निर्गुणमार्गी संतों के समान इनकी भाषा में भी फारसी और अरबी शब्दों का प्रयोग है। इसी दृष्टि से बोलचाल की खड़ीबोली का पुट इन सब संतों की बानी में एक सा पाया जाता है। इन सब लक्षणों के होते हुए भी इनकी भाषा सुव्यवस्थित और सुंदर है। कहीं-कहीं अच्छे कवियों का सा पदविन्यास और कवित्त आदि छंद भी पाए जाते हैं। कुछ पद बिल्कुल खड़ीबोली में हैं। आत्मबोध, वैराग्य, प्रेम आदि पर इनकी बानी बड़ी मनोहर है।

कृतियाँ – 1. रत्नखान 2. ज्ञानबोध

सुंदरदास

(1596 ई.-1689ई.)

सुंदरदास 6 वर्ष की आयु में दादू के शिष्य हो गए थे। उनका जन्म 1596ई. में जयपुर के निकट द्यौसा नामक स्थान पर हुआ था। इनके पिता का नाम परमानंद और माता का नाम सती था। दादू की मृत्यु के बाद एक संत जगजीवन के साथ वे 10 वर्ष की आयु में काशी चले आए। वहाँ 30 वर्ष की आयु तक उन्होंने जमकर अध्ययन किया। काशी से लौटकर वे राजस्थान में शेखावटी के निकट फतहपुर नामक स्थान पर गए। वे फारसी भी बहुत अच्छी जानते थे।

उनका देहांत सांगामेर में 1689 ई. में हुआ।

निर्गुण संत कवियों में सुंदरदास सर्वाधिक शास्त्रज्ञ एवं सुशिक्षित थे। कहते हैं कि वे अपने नाम के अनुरूप अत्यंत सुंदर थे। सुशिक्षित होने के कारण उनकी

कविता कलात्मकता से युक्त और भाषा परिमार्जित है। निर्गुण संतों ने गेय पद और दोहे ही लिखे हैं। सुंदरदास ने कवित्त और सवैये भी रचे हैं। उनकी काव्यभाषा में अलंकारों का प्रयोग खूब है। उनका सर्वाधिक प्रसिद्ध ग्रंथ 'सुंदरविलास' है।

काव्यकला में शिक्षित होने के कारण उनकी रचनाएँ निर्गुण साहित्य में विशिष्ट स्थान रखती हैं। निर्गुण साधना और भक्ति के अतिरिक्त उन्होंने सामाजिक व्यवहार, लोकनीति और भिन्न क्षेत्रों के आचार-व्यवहार पर भी उक्तियाँ कहीं हैं। लोकधर्म और लोक मर्यादा की उन्होंने अपने काव्य में उपेक्षा नहीं की है।

व्यर्थ की तुकबंदी और ऊटपटाँग बानी इनको रुचिकर न थी। इसका पता इनके इस कवित्त से लगता है–

बोलिए तौ तब जब बोलिबे की बुद्धि होय,
ना तौ मुख मौन गहि चुप होय रहिए ।।
जोरिए तौ तब जब जोरिबै को रीति जानै,
तुक छंद अरथ अनूप जामे लहिए ।।
गाइए तौ तब जब गाइबे को कंठ होय,
श्रवन के सुनतहीं मनै जाय गहिए ।
तुकभंग, छंदभंग, अरथ मिलै न कछु,
सुंदर कहत ऐसी बानी नहिं कहिए ।।

कृतियाँ–1. सुंदरविलास

दादूदयाल

(1544ई.-1603ई.)

कबीर की भाँति दादू के जन्म और उनकी जाति के विषय में विवाद और अनेक किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। कुछ लोग उन्हें गुजराती ब्राह्मण मानते हैं, कुछ लोग मोची या धुनिया। प्रो. चंद्रिकाप्रसाद त्रिपाठी और क्षितिमोहन सेन के अनुसार दादू मुसलमान थे और उनका नाम दाऊद था। कहते हैं दादू बालक रूप में साबरमती नदी में बहते हुए लोदीराम नामक नागर ब्राह्मण को मिले थे। दादू के गुरू का भी निश्चित रूप से पता नहीं लगता। कुछ लोग मानते हैं कि वे कबीर के पुत्र कमाल के शिष्य थे। पं. रामचंद्र शुक्ल का विचार है कि उनकी बानी

में कबीर का नाम बहुत जगह आया है और इसमें कोई संदेह नहीं कि वे उन्हीं के मतानुयायी थे। वे आमेर, मारवाड़, बीकानेर आदि स्थानों में घूमते हुए जयपुर आए। वहीं के भराने नामक स्थान पर 1603 ई. में शरीर छोड़ा। वह स्थान दादू पंथियों का केन्द्र है। दादू की रचनाओं का संग्रह उनके दो शिष्यों संतदास और जगनदास ने 'हरडेवानी' नाम से किया था। कालांतर में रज्जब ने इसका सम्पादन 'अंगवधू' नाम से किया।

दादू की कविता जन सामान्य को ध्यान में रखकर लिखी गई है, अतएव सरल एवं सहज है। दादू भी कबीर के समान अनुभव को ही प्रमाण मानते थे। दादू की रचनाओं में भगवान के प्रति प्रेम और व्याकुलता का भाव है। कबीर की भाँति उन्होंने भी निर्गुण निराकार भगवान को वैयक्तिक भावनाओं का विषय बनाया है। उनकी रचनाओं में इस्लामी साधना के शब्दों का प्रयोग खुलकर हुआ है। उनकी भाषा पश्चिमी राजस्थानी से प्रभावित हिन्दी है। इसमें अरबी-फारसी के काफी शब्द आए हैं, फिर भी वह सहज और सुगम है।

कृतियाँ – 1. हरडेवानी 2. अंगवधू

गुरू नानक

गुरू नानक का जन्म 1469 ईस्वीं में कार्तिक पूर्णिमा के दिन तलवंडी ग्राम, जिला लाहौर में हुआ था।

इनकी मृत्यु 1531 ईस्वीं में हुई।

इनके पिता का नाम कालूचंद खत्री और माँ का नाम तृप्ता था। इनकी पत्नी का नाम सुलक्षणी था। कहते हैं कि इनके पिता ने इन्हें व्यवसाय में लगाने का बहुत उद्यम किया, किन्तु इनका मन भक्ति की ओर अधिकाधिक झुकता गया। इन्होंने हिन्दू-मुसलमान दोनों की समान धार्मिक उपासना पर बल दिया। वर्णाश्रम व्यवस्था और कर्मकांड का विरोध करके निर्गुण ब्रह्म की भक्ति का प्रचार किया। गुरू नानक ने व्यापक देशाटन किया और मक्का-मदीना तक की यात्रा की। कहते हैं मुगल सम्राट बाबर से भी इनकी भेंट हुई थी। यात्रा के दौरान इनके साथी शिष्य रागी नामक मुस्लिम रहते थे जो इनके द्वारा रचित पदों को गाते थे।

गुरू नानक ने सिख धर्म का प्रवर्त्तन किया। गुरू नानक ने पंजाबी के साथ हिन्दी में भी कविताएँ कीं। इनकी हिन्दी में ब्रजभाषा और खड़ीबोली दोनों का मेल है। भक्ति और विनय के पद बहुत मार्मिक हैं। गुरू नानक ने उलटबाँसी

शैली नहीं अपनाई है। इनके दोहों में जीवन के अनुभव उसी प्रकार गुँथे हैं जैसे कबीर की रचनाओं में. 'आदिगुरू ग्रंथ साहब' के अंतर्गत 'महला' नामक प्रकरण में इनकी बानी संकलित है। उसमें सबद, सलोक मिलते हैं।

गुरू नानक की ही परम्परा में उनके उत्तराधिकारी गुरू कवि हुए। इनमें है–

गुरू अंगद (जन्म 1504 ई.)
गुरू अमरदास (जन्म 1479 ई.)
गुरू रामदास (जन्म 1514 ई.)
गुरू अर्जुन (जन्म 1563ई.)
गुरू तेगबहादुर (जन्म 1622ई.) और
गुरू गोविन्द सिंह (जन्म 1664ई.).

गुरू नानक की रचनाएँ – 1. जपुजी 2. आसादीवार 3. रहिरास 4. सोहिला

धर्मदास

ये बांधवगढ़ के रहनेवाले और जाति के बनिए थे। बाल्यावस्था में ही इनके हृदय में भक्ति का अंकुर था और ये साधुओं का सत्संग, दर्शन, पूजा, तीर्थाटन आदि किया करते थे। मथुरा से लौटते समय कबीरदास के साथ इनका साक्षात्कार हुआ। उन दिनों संत समाज में कबीर की पूरी प्रसिद्धि हो चुकी थी। कबीर के मुख से मूर्तिपूजा, तीर्थाटन, देवार्चन आदि का खंडन सुनकर इनका झुकाव 'निर्गुण' संतमत की ओर हुआ। अंत में ये कबीर से सत्य नाम की दीक्षा लेकर उनके प्रधान शिष्यों में हो गए और सन् 1518 में कबीरदास के परलोकवास पर उनकी गद्दी इन्हीं को मिली। कबीरदास के शिष्य होने पर इन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति, जो बहुत अधिक थी, लुटा दी। ये कबीर की गद्दी पर बीस वर्ष के लगभग रहे और अत्यंत वृद्ध होकर इन्होंने शरीर छोड़ा। इनकी शब्दावली का भी संतों में बड़ा आदर है। इनकी रचना थोड़ी होने पर भी कबीर की अपेक्षा अधिक सरल भाव लिए हुए है, उसमें कठोरता और कर्कशता नहीं है। इन्होंने पूर्वी भाषा का ही व्यवहार किया है। इनकी अन्योक्तियों के व्यंजक चित्र अधिक मार्मिक हैं क्योंकि इन्होंने खंडन-मंडन से विशेष प्रयोजन न रख प्रेमतत्त्व को लेकर अपनी वाणी का प्रसार किया है।

उदाहरण के लिए ये पद देखिए–

मितऊ मड़ैया सूनी करि गैलो ।
अपना बलम परदेश निकरि गैलो, हमरा के किछुवौ न गुन दै गैलो ।
जोगिन होइके मैं वन वन ढूँढ़ौ, हमरा के बिरह बैराग दै गैलो ।।
सँग की सखी सब पार उतरि गइलो, हम धनि ठाढ़ि अकेली रहि गैलो।
धरमदास यह अरजु करतु है, सार सबद सुमिरन दै गैलो ।।

रैदास या रविदास

रामानंद जी के बारह शिष्यों में रैदास भी माने जाते हैं। उन्होंने अपने एक पद में कबीर और सेन का उल्लेख किया है, जिससे स्पष्ट हो जाता है कि वे कबीर से छोटे थे। अनुमानतः 15वीं शती उनका समय रहा होगा। धन्ना और मीराबाई ने रैदास का उल्लेख आदरपूर्वक किया है। यह भी कहा जाता है कि मीराबाई रैदास की शिष्या थीं. रैदास ने अपने को एकाधिक स्थलों पर चमार जाति का कहा है–

कह रैदास खलास चमारा
ऐसी मेरी जाति विख्यात चमार

रैदास काशी के आसपास के थे। रैदास के पद आदि गुरूग्रंथ साहब में संकलित हैं। कुछ फुटकल पद सतबानी में हैं।

रैदास की भक्ति का ढाँचा निर्गुणवादियों का ही है, किन्तु उनका स्वर कबीर जैसा आक्रामक नहीं। रैदास की कविता की विशेषता उनकी निरीहता है। वे अनन्यता पर बल देते हैं। रैदास में निरीहता के साथ-साथ कुंठाहीनता का भाव द्रष्टव्य है। भक्ति-भावना ने उनमें वह बल भर दिया था जिसके आधार पर वे डंके की चोट पर घोषित कर सकें कि उनके कुटुंबी आज भी बनारस के आस-पास ढोर (मुर्दा पशु) ढोते हैं और दासानुदास रैदास उन्हीं का वंशज है–

जाके कुटुंब सब ढोर ढोवंत
फिरहिं अजहुँ बानारसी आसपास ।
आचार सहित बिप्र करहिं डंडउति
तिन तनै रविदास दासानुदासा ।।

रैदास की भाषा सरल, प्रवाहमयी और गेयता के गुणों से युक्त है।

सिंगाजी

चार सौ अस्सी वर्ष पूर्व की बात है। भामगढ़ (मध्य प्रदेश) के राजा के यहां एक निरक्षर युवा सेवक का काम करता था। एक दिन वह डाकघर से आ रहा था। रास्ते में उसने परमविरक्ति के भाव में रंगी कुछ पंक्तियां सुनीं-

'समझि लेओं रे मना भारि!
अंत न होय कोई आपना।
यहीं माया के फंद में
नर आज भुलाना।'

यह विलक्षण सुरीली तान तीर की तरह उस युवक के हृदय में गहरे पैठ गई। वह सोचने लगा इक जब हमारा नाता इस दुनिया से टूटना ही है, यहां अपना कोई नहीं होगा, तो फिर हम इस मायाजाल के भ्रम में क्यों फंसें? इसके बाद वह संत मनरंग के पास पहुंचा, जो संत ब्रह्मगिरि के शिष्य थे। संत मनरंइगइर के समीप पहुंचते ही उसने उनके चरण स्पर्शा किए। यह प्रणाम उसके युवा जीवन का सम्पूर्ण समर्पण सिद्ध हुआ। इसके बाद उसने भामगढ़ के राजा की नौकरी छोड़ दी। यह युवक थे, 'सिंगा जी', जो सेवक की नौकरी करने के पहले हरसूद में रहते हुए वन में गाय-भैंसें चराने का काम करते थे। सिंगा जी का जन्म संवत् 1576 में ग्राम पीपला के भीमा जी गौली के यहां हुआ था। उनकी जन्मदायनी थीं माता गौराबाई। सिंगा जी की बाल्यावस्था बड़वानी के खजूरी ग्राम में व्यतीत हुई। तत्पशचात् इनका परिवार हरसूद में आकर बस गया। यहीं सिंगा जी बड़े हुए। और कुछ दिन बाद भामगढ़ के राजा के यहां इनको सेवक की नौकरी मिल गई, परन्तु अब वे विरक्त होकर महात्मा मनरंग को समर्पित हो गए। इस सेवा, समर्पण तथा साधना ने सेवक और चरवाहा रहे सिंगा जी का जीवन समग्रतः बदल दिया। आध्यात्मिक साधनारत रहते-रहते निरक्षर सिंगा जी को अदृष्ट के अंतराल से वाणी आयी और अपढ़ सिंगा जी की वाणी से एक के बाद एक भक्ति पद और भजन मुखरित होने लगे। वे स्वरचित पद गाया करते थे। सिंगा जी के तमाम पद निमाड़ी बोली में हैं। यात्राओं में निमाड़ी पथिकों के काफिले बैलगाड़यों पर बैठे-बैठे आज भी इनहें गुंजाते रहते हैं। निमाड़ में ग्राम-ग्राम और घर-घर में ये गाए जाते हैं। परन्तु सिंगा जी इतने भावुक तथा विचित्र मानस के संत थे कि निका जीवनान्त अभूतपूर्व तरीके से हुआ। एक बार जब श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी पड़ी तो श्रीकृष्ण जन्मोत्सव के पूर्व ही इनके गुरूदेव को नींद आने लगी। अतः इनसे उन्होंने कहा 'जब मध्य रात्र (12 बजे) आए तो हमें जगा देना।' और वे सो गए। सिंगा जी बैठे-बैठे जागते रहे, पर जब 12 बजे तो सिंगा जी ने सोचा गुरूदेव को क्यों जगाएं? उनहें सोने दें। मैं ही भगवान की आरती-अर्चना आदि सम्पन्न कर देता हूं। कुछ देर बाद जब मनरंग जागे, तो जन्मोत्सव की बेला बीत चुकी थी। वे बड़े क्रुद्ध हुए और क्रोध में ही गुरू ने शिष्य सिंगा जी को दुत्कार कर

निकाल दिया, कहा–'यहां से जा, इफर कभी जीवन में मुंह मत दिखाना।' सिंगा जी गुरू के आदेश का पालन कर चले तो गए परन्तु उन्होंने सोचा, अब इस शरीर को रखें क्यों? इसकी अब जरूरत क्या है? यहीं सोचकर सिंगा जी पीपला चले गए, जहां वे जन्मे थे। वहीं 11 मास व्यतीत किए। संवत् 1616 की श्रावणी पूर्णिमा आयी तो उन्होंने पिपराहट नदी–तट पर अपने लिए एक समाधि तैयार की। एक हाथ में कपूर जलाकर दूसरे हाथ में जप–माला लेकर उसी समाधि की खोखली जगह में जा बैठे और वहां जीवित ही समाधिस्थ हो गए। तब वे केवल 40 वर्ष के थे। जब यह समाचार उनके गुरू को मिला तो वे बहुत पछताए, दुःखी हुए।

आज भी निमाड़ के चरवाहे और किसान ढोलक–मृदंग बजाते हुए गाया करते हैं–

सिंगा बड़ा औइलया पीर,
जिसको सुमेर राव अमीर।'

निमाड़ के मुसलमान उसे 'औलया' और पहुंचा हुआ 'पीर' ही मानते हैं। वहां के गूजर समाज की पंचायतें दंडित अपराधी को यह कहकर छोड़ देती हैं कि, 'जा सिंगा जी महाराज के पांव लाग ले।' और वह अपराधी सिंगा जी की समाधि का स्पर्श कर, उसे प्रणाम कर अपराध–मुक्त और शुद्ध हो जाता है। हिन्दू–मुसलमान सभी बैल आदि कुछ भी खो जाने पर सिंगा जी की समाधि पर आकर मनौती मानते हैं। आज खंडवा–हरदा रेलवे मार्ग पर 'सिंगा जी' नाम का रेलवे स्टेशन भी है। निमाड़ ही नहीं, दूरस्थ स्थानों से भी लाखों आस्थावान यात्री प्रतिवर्ष सिंगा जी की समाधि पर एकत्र होते हैं। मुसलमान दुआ करते हैं, तो हिन्दू यात्री मनौइतयां मानते–प्रसाद चढ़ाते हैं।

रामभक्त कवि

संपादक–मिथिलेश वामनकर वद– सितम्बर 17, 2008

भक्ति काल

रामभक्ति पंथी शाखा के प्रमुख कवि

रामानन्द, तुलसीदास, स्वामी अग्रदास, नाभादास, प्राणचंद चौहान, हृदयराम, केशवदास, सेनापति।

स्वामी रामानन्द

स्वामी रामानन्द का जन्म 1299ई. में माघ कृष्ण सप्तमी को प्रयाग में हुआ था। इनके पिता का नाम पुण्यसदन और माता का नाम सुशीला देवी था। इनका बाल्यकाल प्रयाग में बीता। यज्ञोपवीत संस्कार के उपरान्त वे प्रयाग से काशी चले आए और गंगा के किनारे पंचगंगा घाट पर स्थायी रूप से निवास करने लगे। इनके गुरू स्वामी राघवानन्द थे जो रामानुज (अचारी) संप्रदाय के ख्याति लब्ध संत थे। स्वामी राघवानन्द हिन्दी भाषा में भक्ति परक काव्य रचना करते थे। स्वामी रामानन्द को रामभक्ति गुरू परंपरा से मिली। हिंदी भाषा में लेखन की प्रेरणा उन्हें गुरू कृपा से प्राप्त हुई। पंच गंगाघाट पर रहते हुए स्वामी रामानुज ने रामभक्ति की साधना के साथ-साथ उसका प्रचार और प्रसार भी किया। स्वामी रामानन्द ने जिस भक्ति-धारा का प्रवर्तन किया, वह रामानुजी परंपरा से कई दृष्टियों से भिन्न थी। रामानुजी संप्रदाय में इष्टदेव के रूप में लक्ष्मी नारायण की पूजा होती है। स्वामी रामानन्द ने लक्ष्मीनारायण के स्थान पर सीता और राम को इष्टदेव के आसन पर प्रतिष्ठित किया। नए इष्टदेव के साथ ही स्वामी रामानन्द ने रामानुजी संप्रदाय से अलग एक षडक्षर मंत्र की रचना की।

यह मंत्र है-रांरामायनमः। इष्टदेव और षडक्षर मंत्र के अतिरिक्त स्वामी रामानन्द ने इष्टोपासना पद्धति में भी परिवर्तन किया। स्वामी रामानन्द ने रामानुजी तिलक से भिन्न नए ऊर्ध्व पुण्डतिलक की अभिरचना की। इन भिन्नताओं के कारण स्वामी रामानन्द द्वारा प्रवर्तित भक्तिधारा को रामानु जी संप्रदाय से भिन्न मान्यता मिलने लगी। रामानुजी और रामानन्दी संप्रदाय क्रमशः अचारी और रामावत नाम से जाने जाने लगे। रामानुजी तिलक की भांति रामानन्दी तिलक भी ललाट के अतिरिक्त देह के ग्यारह अन्य भागों पर लगाया जाता है। स्वामी रामानन्द ने जिस तिलक की अभिरचना की उसे रक्तश्री कहा जाता है। कालचक्र में रक्तश्री के अतिरिक्त इस संप्रदाय में तीन और तिलकों की अभिरचना हुई। इन तिलकों के नाम हैं-श्वेतश्री (लश्करी), गोलश्री (बेदीवाले) और लुप्तश्री (चतुर्भुजी)। इष्टदेव, मंत्र, पूजा पद्धति एवं तिलक इन चारों विंदुओं के अतिरिक्त स्वामी रामानन्द ने स्वप्रवर्तित रामावत संप्रदाय में एक और नया तत्त्व जोडा। उन्होंने रामभक्ति के भवन का द्वार मानव मात्र के लिए खोल दिया। जिस किसी भी व्यक्ति की निष्ठा राम में हो, वह रामभक्त है, चाहे वह द्विज हो अथवा शूद्र, हिंदू हो अथवा हिंदूतर। वैष्णव भक्ति भवन के उन्मुक्त द्वार से रामावत संप्रदाय में बहुत से द्विजेतर और हिंदूतर भक्तों का प्रवेश हुआ। स्वामी रामानन्द की

मान्यता थी कि रामभक्ति पर मानवमात्र का अधिकार है, क्योंकि भगवान् किसी एक के नहीं, सबके हैं–सर्वे प्रपत्तिरधिकारिणोमता:। ज्ञातव्य है कि रामानुजीसंप्रदाय में मात्र द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) को ही भगवद्भक्ति का अधिकार प्राप्त है। स्वामी रामानन्द ने रामभक्तिपर मानव मात्र का अधिकार मानकर एक बडा साहसी और क्रान्तिकारी कार्य किया था। इसके लिए उनका बडा विरोध भी हुआ। स्वामी रामानन्द का व्यक्तित्त्व क्रान्तिदर्शी, क्रान्तिधर्मी और क्रान्तिकर्मी था। उनकी क्रान्तिप्रियतामात्र रामभक्तितक ही सीमित नहीं थी। भाषा के क्षेत्र में भी उन्होंने क्रान्ति का बीजारोपण किया। अभी तक धर्माचार्य लेखन–भाषण सारा कुछ देवभाषा संस्कृत में ही करते थे। मातृभाषा होते हुए भी हिंदी उपेक्षित–सी थी। ऐसे परिवेश में स्वामी रामानन्द ने हिंदी को मान्यता देकर अपनी क्रान्तिप्रियता का परिचय दिया। आगे चलकर गोस्वामी तुलसीदास ने स्वामी रामानन्द की भाषा विषयक इसी क्रान्ति प्रियता का अनुसरण करके रामचरितमानस जैसे अद्भुत ग्रंथ का प्रणयन हिंदी भाषा में किया। ऐसा माना जाता है कि स्वामी रामानन्द विभिन्न परिवेशों के बीच एक सेतु की भूमिका का निर्वाह करते थे। वे नर और नारायण के बीच एक सेतु थे, शूद्र और ब्राह्मण के बीच एक सेतु थे, हिन्दू और हिंदूतर के बीच एक सेतु थे, देवभाषा (संस्कृत) और लोकभाषा (हिन्दी) के बीच एक सेतु थे। स्वामी रामानन्द ने कुल सात ग्रंथों की रचना की, दो संस्कृत में और पांच हिंदी में।

उनके द्वारा रचित पुस्तकों की सूची इस प्रकार है–

(1) वैष्णवमताब्जभास्कर: (संस्कृत), (2) श्रीरामार्चनपद्धति:(संस्कृत), (3) रामरक्षास्तोत्र(हिंदी), (4) सिद्धान्तपटल(हिंदी), (5) ज्ञानलीला(हिंदी), (6) ज्ञानतिलक(हिन्दी), (7) योगचिन्तामणि(हिंदी)।

ऐसा माना जाता है कि लगभग एक सौ ग्यारह वर्ष की दीर्घायु में स्वामी रामानन्द ने भगवत्सायुज्यवरण किया। जीवन के अंतिम दिनों में वे काशी से अयोध्या चले गए। वहां वे एक गुफा में प्रवास करने लगे। एक दिन प्रात:काल गुफा से शंख ध्वनि सुनाई पड़ी। भक्तों ने गुफा में प्रवेश किया। वहां न स्वामी जी का देहशेष और न शंख। वहां मात्र पूजा सामग्री और उनकी चरण पादुका। भक्तगण गुफा से चरणपादुका काशी ले आए और यहां उसे पंचगंगा घाट पर स्थापित कर दिया। जिस स्थान पर चरण पादुका की स्थापना हुई, उसे श्रीमठ कहा जाता है। श्रीमठ पर एक नए भवन का निर्माण सन् 1983 ई. में किया गया। स्वामी रामानन्द की गुरू शिष्य परम्परा से ही तुलसीदास, स्वामी अग्रदास, नाभादास जैसे रामभक्त कवियों का उदय हुआ।

गोस्वामी तुलसीदास

गोस्वामी तुलसीदास के जन्म काल के विषय में एकाधिक मत हैं। बेनीमाधव दास द्वारा रचित 'गोसाईं चरित' और महात्मा रघुबरदास कृत 'तुलसी चरित' दोनों के अनुसार तुलसीदास का जन्म 1497 ई. में हुआ था। शिवसिंह सरोज के अनुसार सन् 1526 ई. के लगभग हुआ था। पं. रामगुलाम द्विवेदी इनका जन्म सन् 1532 ई. मानते हैं। यह निश्चित है कि ये महाकवि 16वीं शताब्दी में विद्यमान थे।

तुलसीदास मध्यकाल के उन कवियों में से हैं जिन्होंने अपने बारे में जो थोड़ा–बहुत लिखा है, वह बहुत काम का है।

तुलसी का बचपन घोर दरिद्रता एवं असहायवस्था में बीता था। उन्होंने लिखा है, माता–पिता ने दुनिया में पैदा करके मुझे त्याग दिया। विधाता ने भी मेरे भाग्य में कोई भलाई नहीं लिखी।

मातु पिता जग जाइ तज्यो, विधि हू न लिखी कछु भाल भलाई।

जैसे कुटिल कीट को पैदा करके छोड़ देते हैं वैसे की मेरे माँ–बाप ने मुझे त्याग दिया–

तनु जन्यो कुटिल कीट ज्यों तज्यो माता–पिता हू ।

हनुमानबाहुक में भी यह स्पष्ट है कि अंतिम समय में वे भयंकर बाहु–पीड़ा से ग्रस्त थे। पाँव, पेट, सकल शरीर में पीड़ा होती थी, पूरी देह में फोड़े हो गए थे।

यह मान्य है कि तुलसीदास की मृत्यु सन् 1623 ई. में हुई।

उनके जन्म स्थान के विषय में काफी विवाद है। कोई उन्हें सोरों का बताता है, कोई राजापुर का और कोई अयोध्या का। ज्यादातर लोगों का झुकाव राजापुर की ही ओर है। उनकी रचनाओं में अयोध्या, काशी, चित्रकूट आदि का वर्णन बहुत आता है। इन स्थानों पर उनके जीवन का पर्याप्त समय व्यतीत हुआ होगा।

गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित 12 ग्रंथ प्रामाणिक माने जाते हैं।

कृतियां

1. दोहावली 2. कवितावली 3. गीतावली 4. रामचरितमानस 5. रामाज्ञाप्रश्न 6. विनयपत्रिका 7. रामललानहछू 8. पार्वतीमंगल 9. जानकीमंगल 10. बरवै रामायण 11. वैराग्य संदीपिनी 12. श्रीकृष्णगीतावली

नाभादास

नाभादास अग्रदासजी के शिष्य बड़े भक्त और साधुसेवी थे। सन् 1600 के लगभग वर्तमान थे और तुलसीदासजी की मृत्यु के बहुत पीछे तक जीवित रहे। इनका प्रसिद्ध ग्रंथ भक्तमाल सन् 1585 ई. के पीछे बना और सन् 1712 में प्रियादासजी ने उसकी टीका लिखी। इस ग्रंथ में 200 भक्तों के चमत्कार पूर्ण चरित्र 316 छप्पयों में लिखे गए हैं। इन चरित्रों में पूर्ण जीवनवृत्त नहीं है, केवल भक्ति की महिमासूचक बातें लिखी गई हैं। इनका उद्देश्य भक्तों के प्रति जनता में पूज्यबुद्धि का प्रचार जान पड़ता है। वह उद्देश्य बहुत अंशों में सिद्ध भी हुआ।

नाभाजी को कुछ लोग डोम बताते हैं, कुछ क्षत्रिय। ऐसा प्रसिद्ध है कि वे एकबार तुलसीदास से मिलने काशी गए। पर उस समय गोस्वामी ध्यान में थे, इससे न मिल सके। नाभाजी उसी दिन वृंदावन चले गए। ध्यान भंग होने पर गोस्वामीजी को बड़ा खेद हुआ और वे तुरंत नाभाजी से मिलने वृंदावन चल दिए। नाभाजी के यहाँ वैष्णवों का भंडारा था जिसमें गोस्वामीजी बिना बुलाए जा पहुँचे। गोस्वामीजी यह समझकर कि नाभाजी ने मुझे अभिमानी न समझा हो, सबसे दूर एक किनारे बुरी जगह बैठ गए। नाभाजी ने जान बूझकर उनकी ओर ध्यान न दिया। परसने के समय कोई पात्र न मिलता था जिसमें गोस्वामीजी को खीर दी जाती। यह देखकर गोस्वामीजी एक साधु का जूता उठा लिया और बोले, "इससे सुंदर पात्र मेरे लिए और क्या होगा ?" इस पर नाभाजी ने उठकर उन्हें गले लगा लिया और गद्-गद् हो गए।

अपने गुरू अग्रदास के समान इन्होंने भी रामभक्ति संबंधी कविता की है। ब्रजभाषा पर इनका अच्छा अधिकार था और पद्य रचना में अच्छी निपुणता थी।

कृति – 1. भक्तमाल 2. अष्टयाम

स्वामी अग्रदास

रामानंद के शिष्य अनंतानंद और अनंतानंद के शिष्य कृष्णदास पयहारी थे, कृष्णदास पयहारी के शिष्य अग्रदास जी थे। सन् 1556 के लगभग वर्तमान थे। इनकी बनाई चार पुस्तकों का पता है। इनकी कविता उसी ढंग की है जिस ढंग की कृष्णोपासक नंददासजी की।

प्रमुख कृतियां है-1. हितोपदेश उपखाणाँ बावनी 2. ध्यानमंजरी 3. रामध्यानमंजरी 4. राम-अष्ट्याम।

अग्रदास जी का काव्य ब्रजभाषा में है जिसमे प्रवाह के साथ परिष्कार भी है। सुंदर पद-रचना और अलंकारो के प्रयोग से यह प्रमाणित होता है कि इन्हें शास्त्रीय साहित्य का अच्छा ज्ञान था।

चौपाई

जीव मात्र से द्वैस न राखै। सो सिय राम नाम रस चाखै।1।
दीन भाव निज उर में लावै। सिया राम सन्मुख छवि छावै।2।
तौन उपासक ठीक है भाई। वाकी समुझौ बनी बनाई।3।
सियाराम निशि वासर ध्यावै। अन्त त्यागि तन गर्भ न आवै।4।

दोहा

अग्रदास कह धन्य सो, जाहि दियो गुरू ज्ञान।
सो तन लीन्हो सुफल कै, छूटा दुःख महान।1।

'अग्रअली' नाम से अग्रदास स्वयं को जानकी जी की सखी मानकर काव्य-रचना किया करते थे। रामभक्ति परम्परा में रसिक-भावना के समावेश का श्रेय इन्हीं को प्राप्त है।

हृदयराम

ये पंजाब के रहनेवाले और कृष्णदास के पुत्र थे। इन्होंने सन् 1623 में संस्कृत के हनुमन्नाटक के आधार पर भाषा हनुमन्नाटक लिखा जिसकी कविता बड़ी सुंदर और परिमार्जित है। इसमें अधिकतर कविता और सवैये में बड़े अच्छे संवाद हैं।

प्राणचंद चौहान

इनके व्यक्तित्त्व पर पर्याप्त विवरण नहीं मिलता है। पं. रामचंद्र शुक्ल जी के अनुसार–संस्कृत में रामचरित संबंधी कई नाटक हैं जिनमें कुछ तो नाटक के साहित्यिक नियमानुसार हैं और कुछ केवल संवाद रूप में होने के कारण नाटक कहे गए हैं। इसी पिछली पद्धति पर संवत 1667 (सन् 1610ई.) में इन्होंने रामायण महानाटक लिखा।

कृति – 1. रामायण महानाटक

केशवदास

केशव का जन्म तिथि सं0 1618 वि0 में वर्तमान मध्यप्रदेश राज्य के अंतर्गत ओरछा नगर में हुआ था। ओरछा के व्यासपुर मोहल्ले में उनके अवशेष मिलते हैं। ओरछा के महत्व और उसकी स्थिति के सम्बन्ध में केशव ने स्वयं अनेक भावनात्मक कथन कहे हैं। जिनसे उनका स्वदेश प्रेम झलकता है। आचार्य केशव की रामभक्ति से सम्बन्धित कृति "रामचंद्रिका" है।

'रामचन्द्रिका' संस्कृत के परवर्ती महाकाव्यों की वर्णन-बहुल शैली का प्रतिनिधित्व करती है। 'रामचन्द्रिका' के भाव-विधान में शान्त रस का भी महत्वपूर्ण स्थान है। अत्रि-पत्नी अनसूया के चित्र से ऐसा प्रकट होता है जैसे स्वयं 'निर्वेद' ही अवतरित हो गया हो। वृद्धा अनसूया के कांपते शरीर से ही निर्वेद के संदेश की कल्पना कवि कर लेता है–

कांपति शुभ ग्रीवा, सब अंग सींवां, देखत चित्त भुलाहीं।
जनु अपने मन पति, यह उपदेशति, या जग में कछु नाहीं।।

अंगद-रावण में शान्ति की सोद्देश्य योजना है। अंगद रावण को कुपथ से विमुख करने के लिए एक वैराग्यपूर्ण उक्ति कहता है। अन्त में वह कहता है– "चेति रे चेति अजौं चित्त अन्तर अन्तक लोक अकेलोई जै है।" यह वैराग्य पूर्ण चेतावनी सुन्दर बन पड़ी है।

सेनापति

हिंदी-साहित्य के इतिहास में ऐसे अनेक कवि हुए हैं जिनके कृतित्त्व तो प्राप्त हैं, परंतु व्यक्तित्त्व के विषय में कुछ भी ठीक से पता नहीं है। भक्तिकाल की समाप्ति और रीतिकाल के प्रारंभ के संधिकाल में भी एक महाकवि हुए हैं जिनके जीवन के विषय में जानकारी के नाम पर मात्र उनका लिखा एक कवित्त ही है, ऐसे महाकवि 'सेनापति' के विषय में कवित्त है–

"दीक्षित परसराम, दादौ है विदित नाम,
जिन कीने यज्ञ, जाकी जग में बढ़ाई है।
गंगाधर पिता, गंगाधार ही समान जाकौ,
गंगातीर बसति अनूप जिन पाई है।
महाजानि मनि, विद्यादान हूँ कौ चिंतामनि,
हीरामनि दीक्षित पै तैं पाई पंडिताई है।
सेनापति सोई, सीतापति के प्रसाद जाकी,
सब कवि कान दै सुनत कविताई हैं।"

यहीं कवित्त सेनापति के जीवन परिचय का आधार है। इसके आधार पर विद्वानों ने सेनापति के पितामह का नाम परसराम दीक्षित और पिता का नाम गंगाधर माना है। 'गंगातीर बसति अनूप जिन पाई है' के आधार पर उन्हें उत्तर-प्रदेश के गंगा-किनारे बसे अनूपशहर कस्बे का माना है। सेनापति के विषय में विद्वानों ने माना है कि उन्होंने 'काव्य-कल्पद्रुम' और 'कवित्त-रत्नाकर' नामक दो ग्रंथों की रचना की थी। 'काव्यकल्पद्रुम' का कुछ पता नहीं है। 'कवित्तरत्नाकर' उनकी एक-मात्र प्राप्त कृति है। इस विषय में डॉ. चंद्रपाल शर्मा ने कहीं लिखा है-"सन् 1924 में जब प्रयाग विश्वविद्यालय में हिंदी का अध्ययन अध्यापन प्रारंभ हुआ, तब कविवर सेनापति के एकमात्र उपलब्ध ग्रंथ 'कवित्त-रत्नाकर' को एम.ए. के पाठ्यक्रम में स्थान मिला था। उस समय इस ग्रंथ की कोई प्रकाशित प्रति उपलब्ध नहीं थी। अतः केवल कुछ हस्तलिखित पोथियाँ एकत्रित करके पढ़ाई प्रारंभ की थी।

कवि की निम्नलिखित पंक्तियों के आधार पर 'कवित्त-रत्नाकर' के विषय में माना जाता रहा है कि उन्होंने इसे सत्रहवीं शताब्दी के उतरार्ध में रचा होगा-

"संवत सत्रह सै मैं सेई सियापति पांय,
सेनापति कविता सजी, सज्जन सजौ सहाई।"

सेनापति कृत 'कवित्त-रत्नाकर' की चतुर्थ तरंग में 76 कवित्त हैं जिनमें रामकथा मुक्त रूप में लिखी है।-

"कुस लव रस करि गाई सुर धुनि कहि,
भाई मन संतन के त्रिभुवन जानि है।
देबन उपाइ कीनौ यहै भौ उतारन कौं,
बिसद बरन जाकी सुधार सम बानी है।
भुवपति रूप देह धारी पुत्र सील हरि
आई सुरपुर तैं धरनि सियारानि है।
तीरथ सरब सिरोमनि सेनापति जानि,
राम की कहनी गंगाधार सी बखानी है।"

पाँचवी तरंग में 86 कवित्त हैं, जिनमें राम-रसायन वर्णन है। इनमें राम, कृष्ण, शिव और गंगा की महिमा का गान है। 'गंगा-महिमा' दृष्टव्य है-

"पावन अधिक सब तीरथ तैं जाकी धार,
जहाँ मरि पापी होत सुरपुरपति है।

देखत ही जाकौ भलौ घाट पहिचानियत,
एक रूप बानी जाके पानी की रहति है।
बड़ी रज राखै जाकौ महा धीर तरसत,
सेनापति ठौर-ठौर नीकी यैं बहति है।
पाप पतवारि के कतल करिबै कौं गंगा,
पुन्य की असील तरवारि सी लसति है।"

सेनापति ने अपने काव्य में सभी रसों को अपनाया है। ब्रज भाषा में लिखे पदों में फारसी और संस्कृत के शब्दों का भी प्रयोग किया है। अलंकारों की बात करें तो सेनापति को शेष से तो विशेष मोह था।

रामभक्ति पंथी शाखा कघ्, सेनापति, mppsc, ramand

प्रेमाश्रयी काव्य के कवि

संपादक-मिथिलेश वामनकर on: सितम्बर 17, 2008

निर्गुण प्रेमाश्रयी शाखा के प्रमुख कवियों का परिचय

मलिक मुहम्मद जायसी, कुतबन, मंझन, उसमान, शेख नवी, कासिमशाह, नूर मुहम्मद, मुल्ला दाउद।

मलिक मुहम्मद जायसी

जायसी के जन्म और मृत्यु की कोई प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध रहीं है। ये हिन्दी में सूफी काव्य परंपरा के श्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। ये अमेठी के निकट जायस के रहने वाले थे, इसलिए इन्हें जायसी कहा जाता है। जायसी अपने समय के सिद्ध फकीरों में गिने जाते थे। अमेठी के राजघराने में इनका बहुत मान था। जीवन के अंतिम दिनों में जायसी अमेठी से दो मिल दूर एक जंगल में रहा करते थे। वहीं उनकी मृत्यु हुई। काजी नसरूद्दीन हुसैन जायसी ने, जिन्हें अवध में नवाब शुजाउद्दौला से सनद मिली थी, अपनी याददाश्त में जायसी का मृत्युकाल 4 रजब 949 हिजरी लिखा है। यह काल कहाँ तक ठीक है, नहीं कहा जा सकता।

ये काने और देखने में कुरूप थे। कहते हैं कि शेरशाह इनके रूप को देखकर हँसा था। इस पर यह बोले 'मोहिका हँसेसि कि कोहरहि?' इनके समय में भी इनके शिष्य फकीर इनके बनाये भावपूर्ण दोहे, चौपाइयाँ गाते फिरते थे।

इन्होंने तीन पुस्तकें लिखी–एक तो प्रसिद्ध 'पदमावत', दूसरी 'अखरावट', तीसरी 'आखिरी कलाम' कहते हैं कि एक नवोपलब्ध काव्य 'कन्हावत' भी इनकी रचना है, किन्तु कन्हावत का पाठ प्रामाणिक नहीं लगता। अखरावट में देवनागरी वर्णमाला के एक अक्षर को लेकर सिद्धांत संबंधी तत्त्वों से भरी चौपाइयाँ कहीं गई हैं। इस छोटी सी पुस्तक में ईश्वर, सृष्टि, जीव, ईश्वर प्रेम आदि विषयों पर विचार प्रकट किए गए हैं। आखिरी कलाम में कयामत का वर्णन है। जायसी की अक्षत कीर्ति का आधार है पदमावत, जिसके पढ़ने से यह प्रकट हो जाता है कि जायसी का हृदय कैसा कोमल और 'प्रेम की पीर' से भरा हुआ था। क्या लोकपक्ष में, क्या अध्यात्मपक्ष में, दोनों ओर उसकी गूढ़ता, गंभीरता और सरसता विलक्षण दिखाई देती है।

कृतियाँ – 1. पदमावत 2. अखरावट 3. आखिरी कलाम

कुतबन

ये चिश्ती वंश के शेख बुरहान के शिष्य थे और जौनपुर के बादशाह हुसैनशाह के आश्रित थे। अतः इनका समय विक्रम सोलहवीं शताब्दी का मध्यभाग (सन् 1493) था। इन्होंने 'मृगावती' नाम की एक कहानी चौपाई दोहे के क्रम से सन् 909 हिजरी सन् 1500 ई. में लिखी जिसमें चंद्रनगर के राजा गणपतिदेव के राजकुमार और कंचनपुर के राजा रूपमुरारि की कन्या मृगावती की प्रेम कथा का वर्णन है। इस कहानी के द्वारा कवि ने प्रेममार्ग के त्याग और कष्ट का निरूपण करके साधक के भगवत्प्रेम का स्वरूप दिखाया है। बीच–बीच में सूफियों की शैली पर बड़े सुंदर रहस्यमय आध्यात्मिक आभास हैं।

कृतियाँ – 1. मृगावती

मंझन

इनके संबंध में कुछ भी ज्ञात नहीं है। केवल इनकी रची 'मधुमालती' की एक खंडित प्रति मिली है जिसमें इनकी कोमल कल्पना और स्निग्धसहृदयता का पता लगता है। मंझन ने सन् 1545 ई. में मधुमालती की रचना की। मृगावती के समान मधुमालती में भी पाँच चौपाइयों के उपरांत एक दोहे का क्रम रखा गया। पर मृगावती की अपेक्षा इसकी कल्पना भी विशद् है और वर्णन भी अधिक विस्तृत और हृदयग्राही है। आध्यात्मिक प्रेम भाव की व्यंजना के लिए प्रकृतियों के भी अधिक दृश्यों का समावेश मंझन ने किया है।

ये जायसी के परवर्ती थे। मधुमालती में नायक को अप्सराएँ उड़ाकर मधुमालती की चित्रसारी में पहुँचा देती हैं और वहीं नायक नायिका को देखता है। इसमें मनोहर और मधुमालती की प्रेमकथा के समानांतर प्रेमा और ताराचंद की भी प्रेमकथा चलती है। इसमें प्रेम का बहुत उच्च आदर्श सामने रखा गया है। सूफी काव्यों में नायक की प्राय: दो पत्नियाँ होती हैं, किन्तु इसमें मनोहर अपने द्वारा उपकृत प्रेमा से बहन का संबंध स्थापित करता है। इसमें जन्म-जन्मांतर के बीच प्रेम की अखंडता प्रकट की गई है। इस दृष्टि से इसमें भारतीय पुनर्जन्मवाद की बात कहीं गई है। इस्लाम पुनर्जन्मवाद नहीं मानता। लोक के वर्णन द्वारा अलौकिक सत्ता का संकेत सभी सूफी काव्यों के समान इसमें भी पाया जाता है।

जैन कवि बनारसीदास ने अपने आत्मचरित में सन् 1603 के आसपास की अपनी इश्कबाजीवाली जीवनचर्या का उल्लेख करते हुए लिखा है कि उस समय मैं हाट बाजार में जाना छोड़, घर में पड़े-पड़े 'मृगावती' और 'मधुमालती' नाम की पोथियाँ पढ़ा करता था–

तब घर में बैठे रहैं, नाहिंन हाट बाजार।
मधुमालती, मृगावती पोथी दोय उचार ।

कृतियाँ – 1. मधुमालती

उसमान

ये जहाँगीर के समय में वर्तमान थे और गाजीपुर के रहनेवाले थे। इनके पिता का नाम शेख हुसैन था और ये पाँच भाई थे। ये शाह निजामुद्दीन चिश्ती की शिष्य परंपरा में हाजीबाबा के शिष्य थे। उसमान ने सन् 1613 ई. में 'चित्रावली' नाम की पुस्तक लिखी। पुस्तक के आरंभ में कवि ने स्तुति के उपरांत पैगंबर और चार खलीफों की बादशाह जहाँगीर की तथा शाह निजामुद्दीन और हाजीबाबा की प्रशंसा लिखी है।

कवि ने 'योगी ढूँढन खंड' में काबुल, बदख्शाँ, खुरासान, रूस, साम, मिश्र, इस्तबोल, गुजरात, सिंहलद्वीप आदि अनेक देशों का उल्लेख किया है। सबसे विलक्षण बात है, जोगियों का अँगरेजों के द्वीप में पहुँचना–

वलंदप देखा अँगरेजा। तहाँ जाइ जेहि कठिन करेंजा।
ऊँच नीच धन संपति हेरा । मद बराह भोजन जिन्ह केरा।

कवि ने इस रचना में जायसी का पूरा अनुकरण किया है। जो जो विषय जायसी ने अपनी पुस्तक में रखे हैं उस विषयों पर उसमान ने भी कुछ कहा है।

कहीं-कहीं तो शब्द और वाक्यविन्यास भी वहीं हैं। पर विशेषता यह है कि कहानी बिल्कुल कवि की कल्पित है।

कृतियाँ – 1. चित्रावली

शेख नवी

ये जौनपुर जिले में दोसपुर के पास मऊ नामक स्थान के रहने वाले थे और सन् 1619 में जहाँगीर के समय में वर्तमान थे। इन्होंने 'ज्ञानदीप' नामक एक आख्यान काव्य लिखा, जिसमें राजा ज्ञानदीप और रानी देवजानी की कथा है।

कृतियाँ – 1. ज्ञानदीप

कासिमशाह

ये दरियाबाद (बाराबंकी) के रहने वाले थे और सन् 1731 के लगभग वर्तमान थे। इन्होंने 'हंस जवाहिर' नाम की कहानी लिखी, जिसमें राजा हंस और रानी जवाहिर की कथा है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार– इनकी रचना बहुत निम्न कोटि की है। इन्होंने जगह-जगह जायसी की पदावली तक ली है, पर प्रौढ़ता नहीं है।

कृतियाँ – 1. हंस जवाहिर

नूर मुहम्मद

ये दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह के समय में थे और 'सबरहद' नामक स्थान के रहनेवाले थे जो जौनपुर जिले में जौनपुर आजमगढ़ की सरहद पर है। पीछे सबरहद से ये अपनी ससुराल भादो (आजमगढ़) चले गये. इनके श्वसुर शमसुद्दीन को और कोई वारिस न था इससे वे ससुराल ही में रहने लगे।

नूर मुहम्मद फारसी के अच्छे आलिम थे और इनका हिन्दी काव्यभाषा का भी ज्ञान और सब सूफी कवियों से अधिक था। फारसी में इन्होंने एक दीवान के अतिरिक्त 'रौजतुल हकायक' इत्यादि बहुत सी किताबें लिखी थीं जो असावधानी के कारण नष्ट हो गई।

इन्होंने सन् 1744 ई. में 'इंद्रावती' नामक एक सुंदर आख्यान काव्य लिखा जिसमें कालिंजर के राजकुमार राजकुँवर और आगमपुर की राजकुमारी इंद्रावती की प्रेमकहानी है।

इनका एक और ग्रंथ फारसी अक्षरों में लिखा मिला है, जिसका नाम है 'अनुराग बाँसुरी'। यह पुस्तक कई दृष्टियों से विलक्षण है। पहली बात तो इसकी भाषा सूफी रचनाओं से बहुत अधिक संस्कृतगर्भित है। दूसरी बात है हिंदी भाषा के प्रति मुसलमानों का भाव।

कृतियाँ – 1. इंद्रावती (सन् 1744 ई.) 2. अनुराग बाँसुरी (सन् 1764 ई.)

इसके अतिरिक्त प्रेमाख्यान काव्य की प्रमुख कृतियों में मुल्ला दाउद कृत "चान्दायन" (1379) नायक लोर और चन्दा की प्रेम कथा प्रमुख है।

टैगरू आई ए एस, उसमान, कबीर, कासिमशाह, कुतुबन, छत्तीसगढ़, जायसी, निर्गुण प्रेमाश्रयी, नूर मुहम्मद, प्रारंभिक परीक्षा, बिहार, मंझन, मध्यप्रदेश, मुख्य परीक्षा, मुल्ला दाउद, यूपीएससी, रिजल्ट, लोक सेवा आयोग, शेख नबी, सिविल सेवा, हिन्दी साहित्य, cg psc, cgpsc, GS, history, itihaas, mp, mp psc hindi sahitya, mppsc mp psc, psc, up pcs, uppcs, uppsc

कृष्णभक्त कवि

संपादक–मिथिलेश वामनकर on: सितम्बर 17, 2008

2 भक्ति काल 2 Comments

कृष्णभक्ति शाखा के प्रमुख कवियों का परिचय

सूरदास, नंददास, कृष्णदास, परमानंद, कुंभनदास, चतुर्भुजदास, छीतस्वामी, गोविन्दस्वामी, हितहरिवंश, गदाधर भट्ट, मीराबाई, स्वामी हरिदास, सूरदास–मदनमोहन, श्रीभट्ट, व्यास जी, रसखान, ध्रुवदास, चैतन्य महाप्रभु।

सूरदास

हिन्दी साहित्य के श्रेष्ठ कृष्णभक्त कवि सूरदास का जन्म 1483 ई. के आस–पास हुआ था। इनकी मृत्यु अनुमानतः 1563 ई. के आसपास हुई। इनके बारे में 'भक्तमाल' और 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में थोड़ी–बहुत जानकारी मिल जाती है। 'आईने अकबरी' और 'मुंशियात अब्बुलफजल' में भी किसी संत सूरदास का उल्लेख है, किन्तु वे बनारस के कोई और सूरदास प्रतीत होते हैं। अनुश्रुति यह अवश्य है कि अकबर बादशाह सूरदास का यश सुनकर उनसे मिलने आए थे। 'भक्तमाल' में इनकी भक्ति, कविता एवं गुणों की प्रशंसा है तथा इनकी अंधता का उल्लेख है। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' के अनुसार वे आगरा

और मथुरा के बीच साधु या स्वामी के रूप में रहते थे। वे वल्लभाचार्य के दर्शन को गए और उनसे लीलागान का उपदेश पाकर कृष्ण-चरित विषयक पदों की रचना करने लगे। कालांतर में श्रीनाथ जी के मंदिर का निर्माण होने पर महाप्रभु वल्लभाचार्य ने इन्हें यहाँ कीर्तन का कार्य सौंपा।

सूरदास के विषय में कहा जाता है कि वे जन्मांध थे। उन्होंने अपने को 'जन्म को आँधर' कहा भी है। किन्तु इसके शब्दार्थ पर अधिक नहीं जाना चाहिए। सूर के काव्य में प्रकृतियाँ और जीवन का जो सूक्ष्म सौन्दर्य चित्रित है उससे यह नहीं लगता कि वे जन्मांध थे। उनके विषय में ऐसी कहानी भी मिलती है कि तीव्र अंतर्द्वन्द्व के किसी क्षण में उन्होंने अपनी आँखें फोड़ ली थीं. उचित यहीं मालूम पड़ता है कि वे जन्मांध नहीं थे। कालांतर में अपनी आँखों की ज्योति खो बैठे थे। सूरदास अब अंधों को कहते हैं। यह परम्परा सूर के अंधे होने से चली है। सूर का आशय 'शूर' से है। शूर और सती मध्यकालीन भक्त साधकों के आदर्श थे।

कृतियाँ

1. सूरसागर 2. सूरसारावली 3. साहित्य लहरी

ध्रुवदास

ये श्री हितहरिवंश के शिष्य स्वप्न में हुए थे। इसके अतिरिक्त उनका कुछ जीवनवृत्त प्राप्त नहीं हुआ। वे अधिकतर वृंदावन में ही रहा करते थे। उनकी रचना बहुत ही विस्तृत है और इन्होंने पदों के अतिरिक्त दोह, चौपाई, कवित्त, सवैये आदि अनेक छंदों में भक्ति और प्रेमतत्त्वों का वर्णन किया है।

कृतियाँ-1. वृंदावनसत 2. सिंगारसत 3. रसरत्नावली 4. नेहमंजरी 5. रहस्यमंजरी 6. सुखमंजरी 7. रतिमंजरी 8. वनविहार 9. रंगविहार 10. रसविहार 11. आनंददसाविनोद 12. रंगविनोद 13. नृत्यविलास 14. रंगहुलास 15. मान रसलीला 16. रहसलता 17. प्रेमलता 18. प्रेमावली 19. भजनकुडलिया 20. भक्तनामावली।

रसखान

ये दिल्ली के एक पठान सरदार थे। ये लौकिक प्रेम से कृष्ण प्रेम की ओर उन्मुख हुए। ये गोस्वामी विट्ठलनाथ के बड़े कृपापात्र शिष्य थे। रसखान ने कृष्ण

का लीलागान गेयपदों में नहीं, सवैयों में किया है। रसखान को सवैया छंद सिद्ध था। जितने सहज, सरस, प्रवाहमय सवैये रसखान के हैं, उतने शायद ही किसी अन्य कवि के हों. रसखान का कोई ऐसा सवैया नहीं मिलता जो उच्च स्तर का न हो। उनके सवैये की मार्मिकता का बहुत बड़ा आधार दृश्यों और बाह्यांतर स्थितियों की योजना में है। वहीं योजना रसखान के सवैयों के ध्वनि-प्रवाह में है। ब्रजभाषा का ऐसा सहज प्रवाह अन्यत्र बहुत कम मिलता है।

रसखान सूफियों का हृदय लेकर कृष्ण की लीला पर काव्य रचते हैं। उनमें उल्लास, मादकता और उत्कटता तीनों का संयोग है। ब्रज भूमि के प्रति जो मोह रसखान की कविताओं में दिखाई पड़ता है, वह उनकी विशेषता है।

कृतियाँ

1. प्रेमवाटिका
2. सुजान रसखान

व्यास जी

इनका पूरा नाम हरीराम व्यास था और वे ओरछा के रहनेवाले थे। ओरछानरेश मधुकर शाह के ये राजगुरू थे। पहले ये गौड़ सम्प्रदाय के वैष्णव थे पीछे हितहरिवंशजी के शिष्य होकर राधाबल्लभी हो गए। इनका समय सन् 1563 ई. के आसपास है।

इनकी रचना परिमाण में भी बहुत विस्तृत है और विषय भेद के विचार से भी अधिकांश कृष्णभक्तों की अपेक्षा व्यापक है। ये श्रीकृष्ण की बाललीला औरश्रृंगारलीला में लीन रहने पर भी बीच में संसार पर दृष्टि डाला करते थे। इन्होंने तुलसीदास के समान खलों, पाखंडियों आदि का भी स्मरण किया और रसखान के अतिरिक्त तत्त्वनिरूपण में भी ये प्रवृत्त हुए हैं।

कृतियाँ

1. रासपंचाध्यायी

स्वामी हरिदास

ये महात्मा वृंदावन में निंबार्क मतांतर्गत टट्टी संप्रदाय, जिसे सखी संप्रदाय भी कहते हैं, के संस्थापक थे और अकबर के समय में एक सिद्ध भक्त और

संगीत–कला–कोविद माने जाते थे। कविताकाल सन् 1543 से 1560 ई. ठहरता है। प्रसिद्ध गायनाचार्य तानसेन इनका गुरूवत् सम्मान करते थे। यह प्रसिद्ध है कि अकबर बादशाह साधु के वेश में तानसेन के साथ इनका गाना सुनने के लिए गया था। कहते हैं कि तानसेन इनके सामने गाने लगे और उन्होंने जानबूझकर गाने में कुछ भूल कर दी। इस पर स्वामी हरिदास ने उसी गाना को शुद्ध करके गाया। इस युक्ति से अकबर को इनका गाना सुनने का सौभाग्य प्राप्त हो गया। पीछे अकबर ने बहुत कुछ पूजा चढ़ानी चाही पर इन्होंने स्वीकृत न की।

इनका जन्म समय कुछ ज्ञात नहीं है।

कृतियाँ

1. स्वामी हरिदास जी के पद
2. हरिदास जी की बानी

मीराबाई

ये मेड़तिया के राठौर रत्नसिंह की पुत्री, राव दूदाजी की पौत्री और जोधपुर के बसानेवाले प्रसिद्ध राव जोधाजी की प्रपौत्री थीं. इनका जन्म सन् 1516 ई. में चोकड़ी नाम के एक गाँव में हुआ था और विवाह उदयपुर के महाराणा कुमार भोजराज जी के साथ हुआ था। ये आरंभ से ही कृष्ण भक्ति में लीन रहा करती थी। विवाह के उपरांत थोड़े दिनों में इनके पति का परलोकवास हो गया। ये प्राय: मंदिर में जाकर उपस्थित भक्तों और संतों के बीच श्रीकृष्ण भगवान् की मूर्ति के सामने आनंदमग्न होकर नाचती और गाती थी। कहते हैं कि इनके इस राजकुलविरूद्ध आचरण से इनके स्वजन लोकनिंदा के भय से रूष्ट रहा करते थे। यहाँ तक कहा जाता है कि इन्हें कई बार विष देने का प्रयत्न किया गया, पर विष का कोई प्रभाव इन पर न हुआ। घरवालों के व्यवहार से खिन्न होकर ये द्वारका और वृंदावन के मंदिरों में घूम–घूमकर भजन सुनाया करती थीं. ऐसा प्रसिद्ध है कि घरवालों से तंग आकर इन्होंने गोस्वामी तुलसीदासजी को यह पद लिखकर भेजा था–

स्वस्ति श्री तुलसी कुल भूषन दूषन हरन गोसाईं ।
बारहिं बार प्रनाम करहुँ, अब हरहु सोक समुदाई ।।
घर के स्वजन हमारे जेते सबन्ह उपाधि बढ़ाई ।।
साधु संग अरू भजन करत मोहिं देत कलेस महाई ।।

मेरे मात पिता के सम हौ, हरिभक्तन्ह सुखदाई ॥
हमको कहा उचित करिबो है, सो लिखिए समझाई ॥

इस पर गोस्वामी जी ने 'विनयपत्रिका' का यह पद लिखकर भेजा था –

जाके प्रिय न राम बैदेही ।
सो नर तजिय कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही ॥
नाते सबै राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं ।
अंजन कहा आँखि जौ फूटै, बहुतक कहौं कहाँ लौं ॥

मीराबाई की मृत्यु द्वारका में सन् 1546 ई. में हो चुकी थी। अतः यह जनश्रुति किसी की कल्पना के आधार पर ही चल पड़ी।

मीराबाई का नाम प्रधान भक्तों में है और इनका गुणगान नाभाजी, ध्रुवदास, व्यास जी, मलूकदास आदि सब भक्तों ने किया है।

कृतियाँ

1. नरसी जी का मायरा
2. गीतगोविंद टीका
3. राग गोविंद
4. राग सोरठ के पद।

गदाधर भट्ट

ये दक्षिणी ब्राह्मण थे। इनके जन्म का समय ठीक से पता नहीं, पर यह बात प्रसिद्ध है कि ये श्री चैतन्य महाप्रभु को भागवत सुनाया करते थे। इनका समर्थन भक्तमाल की इन पंक्तियों से भी होता है–

भागवत सुधा बरखै बदन, काहू को नाहिंन दुखद ।
गुणनिकर गदाधर भट्ट अति सबहिन को लागै सुखद॥

संस्कृत के चूडांत पंडित होने के कारण शब्दों पर इनका बहुत विस्तृत अधिकार था। इनका पदविन्यास बहुत ही सुंदर है।

हितहरिवंश

राधावल्लभी सम्प्रदाय के प्रवर्तक गोसाई हितहरिवंश का जन्म सन् 1502 ई. में मथुरा से 4 मील दक्षिण बादगाँव में हुआ था। राधावल्लभी सम्प्रदाय के पंडित गोपालप्रसाद शर्मा ने इनका जन्म सन् 1473 ई. माना है।

इनके पिता को नाम केशवदास मिश्र और माता का नाम तारावती था।

कहते हैं कि हितहरिवंश पहले माध्वानुयायी गोपाल भट्ट के शिष्य थे। पीछे इन्हें स्वप्न में राधिकाजी ने मंत्र दिया और इन्होंने अपना एक अलग संप्रदाय चलाया। अतः हित सम्प्रदाय को माधव संप्रदाय के अंतर्गत मान सकते हैं। हितहरिवंश के चार पुत्र और एक कन्या हुई। गोसाई जी ने सन् 1525 ई. में श्री राधावल्लभ जी की मूर्ति वृंदावन में स्थापित की और वहीं विरक्त भाव से रहने लगे। ये संस्कृत के अच्छे विद्वान और भाषा काव्य के अच्छे मर्मज्ञ थे। ब्रजभाषा की रचना इनकी यद्यपि बहुत विस्तृत नहीं है तथापि बड़ी सरस और हृदयग्राहिणी है।

कृतियाँ– 1. राधासुधानिधि 2. हित चौरासी

गोविन्दस्वामी

ये अंतरी के रहनेवाले सनाढ्य ब्राह्मण थे जो विरक्त की भाँति आकर महावन में रहने लगे थे। पीछे गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के शिष्य हुए जिन्होंने इनके रचे पदों से प्रसन्न होकर इन्हें अष्टछाप में लिया। ये गोवर्धन पर्वत पर रहते थे और उसके पास ही इन्होंने कदंबों का एक अच्छा उपवन लगाया था जो अब तक 'गोविन्दस्वमी की कदंबखडी' कहलाता है।

इनका रचनाकाल सन् 1543 और 1568 ई. के भीतर ही माना जा सकता है।

वे कवि होने के अतिरिक्त बड़े पक्के गवैये थे। तानसेन कभी-कभी इनका गाना सुनने के लिए आया करते थे।

छीतस्वामी

विट्ठलनाथ जी के शिष्य और अष्टछाप के अंतर्गत थे। पहले ये मथुरा के सुसम्पन्न पंडा थे और राजा बीरबल जैसे लोग इनके जजमान थे। पंडा होने के कारण ये पहले बड़े अक्खड़ और उद्दंड थे। पीछे गोस्वामी विट्ठलनाथ जी से दीक्षा लेकर परम शांत भक्त हो गए और श्रीकृष्ण का गुणानुवाद करने लगे।

इनकी रचनाओं का समय सन् 1555 ई. के इधर मान सकते हैं।

इनके पदों में शृंगार के अतिरिक्त ब्रजभूमि के प्रति प्रेमव्यंजना भी अच्छी पाई जाती है।

'हे विधना तोसों अँचरा पसारि माँगौ जनम जनम दीजो याही ब्रज बसिबो' पद इन्हीं का है।

चतुर्भुजदास

ये कुंभनदास जी के पुत्र और गोसाईं विट्ठलनाथ जी के शिष्य थे। ये भी अष्टछाप के कवियों में हैं। इनकी भाषा चलती और सुव्यवस्थित है। इनके बनाए तीन ग्रंथ मिले हैं।

कृतियाँ

1. द्वादशयश 2. भक्तिप्रताप 3. हितजू को मंगल

कुंभनदास

ये भी अष्टछाप के एक कवि थे और परमानंद जी के ही समकालीन थे। ये पूरे विरक्त और धन, मान, मर्यादा की इच्छा से कोसों दूर थे। एक बार अकबर बादशाह के बुलाने पर इन्हें फतहपुर सीकरी जाना पड़ा जहाँ इनका बड़ा सम्मान हुआ। पर इसका इन्हें बराबर खेद ही रहा, जैसा कि इस पद से व्यंजित होता है–

संतन को कहा सीकरी सो काम ?
आवत जात पनहियाँ टूटी, बिसरि गयो हरि नाम
जिनको मुख देखे दुख उपजत, तिनको करिबे परी सलाम
कुंभनदास लाल गिरिधर बिनु और सबै बेकाम.

इनका कोई ग्रंथ न तो प्रसिद्ध है और न अब तक मिला है।

परमानंद

यह वल्लभाचार्य जी के शिष्य और अष्टछाप में थे। सन् 1551 ई. के आसपास वर्तमान थे। इनका निवास स्थान कन्नौज था। इसी से ये कान्यकुब्ज अनुमान किए जाते हैं। अत्यंत तन्मयता के साथ बड़ी ही सरल कविता करते थे। कहते हैं कि इनके किसी एक पद को सुनकर आचार्यजी कई दिनों तक बदन की सुध भूले रहे। इनके फुटकल पद कृष्णभक्तों के मुँह से प्रायः सुनने को आते हैं।

कृतियाँ – 1. परमानंदसागर

कृष्णदास

जन्मना शूद्र होते हुए भी वल्लभाचार्य के कृपा-पात्र थे और मंदिर के प्रधान हो गए थे। 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' के अनुसार एक बार गोसाई विट्‌ठलनाथजी से किसी बात पर अप्रसन्न होकर इन्होंने उनकी ड्‌योढ़ी बंद कर दी। इस पर गोसाईं के कृपापात्र महाराज बीरबल ने इन्हें कैद कर लिया। पीछे गोसाईं जी इस बात से बड़े दुखी हुए और उनको कारागार से मुक्त कराके प्रधान के पद पर फिर ज्यों का त्यों प्रतिष्ठित कर दिया। इन्होंने भी और सब कृष्ण भक्तों के समान राधाकृष्ण के प्रेम को लेकर श्रृंगार रस के ही पद गाए हैं। 'जुगलमान चरित' नामक इनका एक छोटा सा ग्रंथ मिलता है। इसके अतिरिक्त इनके बनाए दो ग्रंथ और कहे जाते हैं-भ्रमरगीत और प्रेमतत्त्व निरूपण।

इनका कविताकाल सन् 1550 के आगे पीछे माना जाता है।

कृतियाँ – 1. जुगलमान चरित 2. भ्रमरगीत 3. प्रेमतत्त्व निरूपण

श्रीभट्‌ट

ये निंबार्क सम्प्रदाय के प्रसिद्ध विद्वान केशव काश्मीरी के प्रधान शिष्य थे। इनका जन्म सन् 1538 ई. में अनुमान किया जाता है। इनकी कविता सीधी-सादी और चलती भाषा में है। पद भी प्राय: छोटे-छोटे हैं। ऐसा प्रसिद्ध है कि जब ये तन्मय होकर अपने पद गाने लगते थे तब कभी-कभी उस पद के ध्यानानुरूप इन्हें भगवान की झलक प्रत्यक्ष मिल जाती थी।

कृतियाँ-1. युगल शतक 2. आदि बानी

सूरदास मदनमोहन

ये अकबर के समय में संडीले के अमीन थे। ये जो कुछ पास में आता प्राय: साधुओं की सेवा में लगा दिया करते थे। कहते हैं कि एक बार संडीले तहसील की मालगुजारी के कई लाख रूपये सरकारी खजाने में आए थे। इन्होंने सब का सब साधुओं को खिलापिला दिया और शाही खजाने में कंकड़-पत्थरों से भरे संदूक भेज दिए जिनके भीतर कागज के चिट यह लिख कर रख दिए–

तेरह लाख सँडीले आए, सब साधुन मिलि गटके।
सूरदास मदनमोहन आधी रातहिं सटके ।।

और आधी रात को उठकर कहीं भाग गए। बादशाह ने इनका अपराध क्षमा करके इन्हें फिर बुलाया, पर ये विरक्त होकर वृंदावन में रहने लगे। इनकी कविता

इतनी सरस होती थी कि इनके बनाए बहुत से पद सूरसागर में मिल गए। इनकी कोई पुस्तक प्रसिद्ध नहीं।

इनका रचनाकाल सन् 1533 ई. और 1543 ई. के बीच अनुमान किया जाता है।

नंददास

नंददास 16 वीं शती के अंतिम चरण में विद्यमान थे। इनके विषय में 'भक्तमाल' में लिखा है–

'चन्द्रहास–अग्रज सुहृद परम प्रेम में पगे'

इससे इतना ही सूचित होता है कि इनके भाई का नाम चंद्रहास था। 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' के अनुसार ये तुलसीदास के भाई थे, किन्तु अब यह बात प्रामाणिक नहीं मानी जाती। उसी वार्ता में यह भी लिखा है कि द्वारका जाते हुए नंददास सिंधुनद ग्राम में एक रूपवती खत्रानी पर आसक्त हो गए। ये उस स्त्री के घर में चारों ओर चक्कर लगाया करते थे। घरवाले हैरान होकर कुछ दिनों के लिए गोकुल चले गए। वहाँ भी वे जा पहुँचे। अंत में वहीं पर गोसाई विट्ठलनाथ जी के सदुपदेश से इनका मोह छूटा और ये अनन्य भक्त हो गए। इस कथा में ऐतिहासिक तथ्य केवल इतना ही है कि इन्होंने गोसाई विट्ठलनाथ जी से दीक्षा ली।

इनके काव्य के विषय में यह उक्ति प्रसिद्ध है–

'और कवि गढ़िया, नंददास जड़िया'

इससे प्रकट होता है कि इनके काव्य का कला–पक्ष महत्त्वपूर्ण है। इनकी रचना बड़ी सरस और मधुर है। इनकी सबसे प्रसिद्ध पुस्तक 'रासपंचाध्यायी' है, जो रोला छंदों में लिखी गई है। इसमें जैसा कि नाम से ही प्रकट है, कृष्ण की रासलीला का अनुप्रासादियुक्त साहित्यिक भाषा में विस्तार के साथ वर्णन है।

कृतियाँ

पद्य रचना

1. रासपंचाध्यायी 2. भागवत दशम स्कंध 3. रूक्मिणीमंगल 4. सिद्धांत पंचाध्यायी 5. रूपमंजरी 6. मानमंजरी 7. विरहमंजरी 8. नामचिंतामणिमाला 9. अनेकार्थनाममाला 10. दानलीला 11. मानलीला 12. अनेकार्थमंजरी 13. ज्ञानमंजरी

14. श्यामसगाई 15. भ्रमरगीत 16. सुदामाचरित्र 'गद्यरचना' 1. हितोपदेश 2. नासिकेतपुराण

चैतन्य महाप्रभु

चैतन्य महाप्रभु भक्तिकाल के प्रमुख कवियों में से एक हैं। इन्होंने वैष्णवों के गौड़ीय संप्रदाय की आधारशिला रखी। भजन गायकी की एक नयी शैली को जन्म दिया तथा राजनैतिक अस्थिरता के दिनों में हिंदू मुस्लिम एकता की सद्भावना को बल दिया, जाति-पांत, ऊंच-नीच की भावना को दूर करने की शिक्षा दी तथा विलुप्त वृंदावन को फिर से बसाया और अपने जीवन का अंतिम भाग वहीं व्यतीत किया।

चैतन्य महाप्रभु का जन्म सन् 1486 की फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा को पश्चिम बंगाल के नवद्वीप (नादिया) नामक उस गांव में हुआ, जिसे अब मायापुर कहा जाता है। यद्यपि बाल्यावस्था में इनका नाम विश्वंभर था, परंतु सभी इन्हें निमाई कहकर पुकारते थे। गौरवर्ण का होने के कारण लोग इन्हें गौरांग, गौर हरि, गौर सुंदर आदि भी कहते थे। चैतन्य महाप्रभु के द्वारा गौड़ीय वैष्णव संप्रदाय की आधारशिला रखी गई। उनके द्वारा प्रारंभ किए गए महामंत्र नाम संकीर्तन का अत्यंत व्यापक व सकारात्मक प्रभाव आज पश्चिमी जगत तक में है। इनके पिता का नाम जगन्नाथ मिश्र व मां का नाम शचि देवी था। निमाई बचपन से ही विलक्षण प्रतिभा संपन्न थे। साथ ही, अत्यंत सरल, सुंदर व भावुक भी थे। इनके द्वारा की गई लीलाओं को देखकर हर कोई हतप्रभ हो जाता था। बहुत कम उम्र में ही निमाई न्याय व व्याकरण में पारंगत हो गए थे। इन्होंने कुछ समय तक नादिया में स्कूल स्थापित करके अध्यापन कार्य भी किया। निमाई बाल्यावस्था से ही भगवद्चिंतन में लीन रहकर राम व कृष्ण का स्तुति गान करने लगे थे। 15-16 वर्ष की अवस्था में इनका विवाह लक्ष्मीप्रिया के साथ हुआ। सन् 1505 में सर्प दंश से पत्नी की मृत्यु हो गई। वंश चलाने की विवशता के कारण इनका दूसरा विवाह नवद्वीप के राजपंडित सनातन की पुत्री विष्णुप्रिया के साथ हुआ। जब ये किशोरावस्था में थे, तभी इनके पिता का निधन हो गया।

सन 1509 में जब ये अपने पिता का श्राद्ध करने गया गए, तब वहां इनकी मुलाकात ईश्वरपुरी नामक संत से हुई। उन्होंने निमाई से कृष्ण-कृष्ण रटने को कहा। तभी से इनका सारा जीवन बदल गया और ये हर समय भगवान श्रीकृष्ण की भक्ति में लीन रहने लगे। भगवान श्रीकृष्ण के प्रति इनकी अनन्य निष्ठा व

विश्वास के कारण इनके असंख्य अनुयायी हो गए। सर्वप्रथम नित्यानंद प्रभु व अद्वैताचार्य महाराज इनके शिष्य बने। इन दोनों ने निमाई के भक्ति आंदोलन को तीव्र गति प्रदान की। निमाई ने अपने इन दोनों शिष्यों के सहयोग से ढोलक, मृदंग, झाँझ, मंजीरे आदि वाद्य यंत्र बजाकर व उच्च स्वर में नाच-गाकर हरि नाम संकीर्तन करना प्रारंभ किया। 'हरे-कृष्ण, हरे-कृष्ण, कृष्ण-कृष्ण, हरे-हरे। हरे-राम, हरे-राम, राम-राम, हरे-हरे' नामक अठारह शब्दीय कीर्तन महामंत्र निमाई की ही देन है। जब ये कीर्तन करते थे, तो लगता था मानो ईश्वर का आह्वान कर रहे हैं। सन् 1510 में संत प्रवर श्री पाद केशव भारती से संन्यास की दीक्षा लेने के बाद निमाई का नाम कृष्ण चैतन्य देव हो गया। बाद में ये चैतन्य महाप्रभु के नाम से प्रख्यात हुए।

चैतन्य महाप्रभु संन्यास लेने के बाद नीलांचल चले गए। इसके बाद दक्षिण भारत के श्री रंग क्षेत्र व सेतु बंध आदि स्थानों पर भी रहे। इन्होंने देश के कोने-कोने में जाकर हरिनाम की महत्ता का प्रचार किया। सन् 1515 में वृंदावन आए। यहां इन्होंने इमली तला और अक्रूर घाट पर निवास किया। वृंदावन में रहकर इन्होंने प्राचीन श्रीधाम वृंदावन की महत्ता प्रतिपादित कर लोगों की सुप्त भक्ति भावना को जागृत किया। यहां से फिर ये प्रयाग चले गए। इन्होंने काशी, हरिद्वार, शृंगेरी (कर्नाटक), कामकोटि पीठ (तमिलनाडु), द्वारिका, मथुरा आदि स्थानों पर रहकर भगवद्नाम संकीर्तन का प्रचार-प्रसार किया। चैतन्य महाप्रभु ने अपने जीवन के अंतिम वर्ष जगन्नाथ पुरी में रहकर बिताए। यहीं पर सन् 1533 में 47 वर्ष की अल्पायु में रथयात्रा के दिन उनका देहांत हो गया।

चैतन्य महाप्रभु ने लोगों की असीम लोकप्रियता और स्नेह प्राप्त किया कहते हैं कि उनकी अद्भुत भगवद्भक्ति देखकर जगन्नाथ पुरी के राजा तक उनके श्रीचरणों में नत हो जाते थे। बंगाल के एक शासक के मंत्री रूपगोस्वामी तो मंत्री पद त्यागकर चैतन्य महाप्रभु के शरणागत हो गए थे। उन्होंने कुष्ठ रोगियों व दलितों आदि को अपने गले लगाकर उनकी अनन्य सेवा की। वे सदैव हिंदू-मुस्लिम एकता का संदेश देते रहे। साथ ही, उन्होंने लोगों को पारस्परिक सद्भावना जागृत करने की प्रेरणा दी। वस्तुत: उन्होंने जातिगत भेदभाव से ऊपर उठकर समाज को मानवता के सूत्र में पिरोया और भक्ति का अमृत पिलाया। वे गौड़ीय संप्रदाय के प्रथम आचार्य माने जाते हैं। उनके द्वारा कई ग्रंथ भी रचे गए। उन्होंने संस्कृत भाषा में भी तमाम रचनाएं कीं। उनका मार्ग प्रेम व भक्ति का था। वे नारद जी की भक्ति से अत्यंत प्रभावित थे, क्योंकि नारद जी सदैव

'नारायण-नारायण' जपते रहते थे। उन्होंने विश्व मानव को एक सूत्र में पिरोते हुए यह समझाया कि ईश्वर एक है। उन्होंने लोगों को यह मुक्ति सूत्र भी दिया-'कृष्ण केशव, कृष्ण केशव, कृष्ण केशव, पाहियाम। राम राघव, राम राघव, राम राघव, रक्षयाम।' हिंदू धर्म में नाम जप को ही वैष्णव धर्म माना गया है और भगवान श्रीकृष्ण को प्रधानता दी गई है। चैतन्य ने इन्हीं की उपासना की और नवद्वीप से अपने छह प्रमुख अनुयायियों (षड गोस्वामियों), गोपाल भट्ट गोस्वामी, रघुनाथ भट्ट गोस्वामी, सनातन गोस्वामी, रूप गोस्वामी, जीव गोस्वामी, रघुनाथ दास गोस्वामी को वृंदावन भेजकर वहां गोविंददेव मंदिर, गोपीनाथ मंदिर, मदन मोहन मंदिर, राधा रमण मंदिर, राधा दामोदर मंदिर, राधा श्यामसुंदर मंदिर और गोकुलानंद मंदिर नामक सप्त देवालयों की आधारशिला रखवाई। लोग चैतन्य को भगवान श्रीकृष्ण का अवतार मानते हैं।

मलिक का जन्म

मलिक मुहम्मद जायसी का जन्म 900 हिजरी (सन् 1492 के लगभग) हुआ माना जाता है। जैसा कि उन्होंने खुद ही कहा है –

या अवतार मोर नव सदी।
तीस बरस उपर कवि बदी।।

कवि की दूसरी पंक्ति का अर्थ यह है कि वे जन्म से तीस वर्ष पीछे अच्छी कविता कहने लगे। जायसी अपने प्रमुख एवं प्रसिद्ध ग्रंथ पद्मावत के निर्माण-काल के संबंध में कहा है –

सन नव सै सत्ताइस अहा।
कथा आरंभ बैन कवि कहा।।

इसका अर्थ यह है कि 'पदमावत' की कथा के प्रारंभिक वचन कवि ने सन् 927 हिजरी (सन् 1520 ई. के लगभग) में कहा था। ग्रंथ प्रारंभ में कवि ने 'शाहे वक्त' शेरशाह की प्रशंसा की है, जिसके शासनकाल का आरंभ 947 हिजरी अर्थात सन् 1540 ई. से हुआ था। उपर्युक्त बात से यहीं पता चलता है कि कवि ने कुछ थोड़े से पद्य 1540 ई. में बनाए थे, परंतु इस ग्रंथ को शेरशाह के 19 या 20 वर्ष पीछे समय में पूरा किया होगा।

जायसी का जन्म स्थान –

जायसी ने पद्मावत की रचना जायस में की –

जाएस नगर धरम् अस्थान।
तहवां यह कबि कीन्ह बखानू।।

जायसी के जन्म स्थान के विषय में मतभेद है कि जायस ही उनका जन्म स्थान था या वह कहीं और से आकर जायस में बस गए थे। जायसी ने स्वयं ही कहा है –

जायस नगर मोर अस्थानू।
नगर का नवां आदि उदयानू।।
तहां देवस दस पहुँचे आएडं।।।
या बेराग बहुत सुख पाय

जायस वालों और स्वयं जायसी के कथानुसार वह जायस के ही रहने वाले थे। पं. सूर्यकांत शास्त्री ने लिखा है कि उनका जन्म जायस शहर के "कंचाना मुहल्लां' में हुआ था। कई विद्वानों ने कहा है कि जायसी गाजीपुर में पैदा हुए थे। मानिकपुर में अपने ननिहाल में जाकर रुके थे।

डा. वासदेव अग्रवाल के कथन व शोध के अनुसार –

जायसी ने लिखा है कि जायस नगर में मेरा जन्म स्थान है। मैं वहाँ दस दिनों के लिए पाहुने के रूप में पहुँचा था, पर वहीं मुझे वैराग्य हो गया और सुख मिला।

इस प्रकार स्पष्ट है कि जायसी का जन्म जायस में नहीं हुआ था, बल्कि वह उनका धर्म-स्थान था और वह वहीं कहीं से आकर रहने लगे थे।

2

सगुण धारा– रामभक्ति शाखा भक्तिकाल

जगत्प्रसिद्ध स्वामी शंकराचार्य जी ने जिस अद्वैतवाद का निरूपण किया था, वह भक्ति के सन्निवेश के उपयुक्त न था। यद्यपि उसमें ब्रह्म की व्यावहारिक सगुण सत्ता का भी स्वीकार था, पर भक्ति के सम्यक् प्रसार के लिए जैसे दृढ़ आधार की आवश्यकता थी वैसा दृढ़ आधार स्वामी रामानुजाचार्य जी (संवत् 1073) ने खड़ा किया। उनके विशिष्टाद्वैतवाद के अनुसार चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म के ही अंश जगत् के सारे प्राणी हैं, जो उसी से उत्पन्न होते हैं और उसी में लीन होते हैं। अत: इन जीवों के लिए उद्धार का मार्ग यहीं है कि वे भक्ति द्वारा उस अंशी का सामीप्य लाभ करने का प्रयत्न करें। रामानुज जी की शिष्य परंपरा देश में बराबर फैलती गई और जनता भक्तिमार्ग की ओर अधिक आकर्षित होती रही। रामानुज जी के श्री संप्रदाय में विष्णु या नारायण की उपासना है। इस संपद्राय में अनेक अच्छे साधु महात्मा बराबर होते गए।

विक्रम की चौदहवीं शताब्दी के अंत में वैष्णव श्री संप्रदाय के प्रधान आचार्य श्री राघवानंद जी काशी में रहते थे। अपनी अधिक अवस्था होते देख वे बराबर इस चिंता में रहा करते थे कि मेरे उपरांत संप्रदाय के सिद्धांतों की रक्षा किस प्रकार हो सकेगी। अंत में राघवानंदजी रामानंद जी को दीक्षा प्रदान कर

निश्चिंत हुए और थोड़े दिनों में परलोकवासी हुए। कहते हैं कि रामानंद जी ने भारतवर्ष का पर्यटन करके अपने संप्रदाय का प्रचार किया।

स्वामी रामानंद जी के समय के संबंध में कहीं कोई लेख न मिलने से हमें उसके निश्चय के लिए कुछ आनुषंगिक बातों का सहारा लेना पड़ता है। वैरागियों की परंपरा में रामानंद जी का मानिकपुर के शेख तकी पीर के साथ वाद विवाद होना माना जाता है। ये शेख तकी दिल्ली के बादशाह सिकंदर लोदी के समय में थे। कुछ लोगों का मत है कि ये सिकंदर लोदी के पीर (गुरू) थे और उन्हीं के कहने से उसने कबीर साहब को जंजीर से बाँधकर गंगा में डुबाया था। कबीर के शिष्य धर्मदास ने भी इस घटना का उल्लेख इस प्रकार किया है–

साह सिकंदर जल में बोरे, बहुरि अग्नि परजारे।
मैमत हाथी आनि झुकाए, सिंहरूप दिखराए
निरगुन कथैं, अभयपद गावैं, जीवन को समझाए।
काजी पंडित सबै हराए, पार कोउ नहिं पाए।

शेख तकी और कबीर के संवाद प्रसिद्ध ही हैं। इससे सिद्ध होता है कि रामानंद जी दिल्ली के बादशाह सिकंदर लोदी के समय में वर्तमान थे। सिकंदर लोदी संवत् 1546 से संवत् 1574 तक गद्दी पर रहा। अत: इन 28 वर्षों के काल विस्तार के भीतर चाहे आरंभ की ओर, चाहे अंत की ओर रामानंद जी का वर्तमान रहना ठहरता है।

कबीर के समान सेन भगत भी रामानंद जी के शिष्यों में प्रसिद्ध हैं। ये सेन भगत बाँधवगढ़ नरेश के नाई थे और उनकी सेवा किया करते थे। ये कौन बाँधवगढ़ नरेश थे, इसका पता 'भक्तमाल रामरसिकावली' में रीवाँ नरेश महाराज रघुराज सिंह ने दिया है–

बाँधवगढ़ पूरब जो गायो। सेन नाम नापित तहँ जायो
ताकी रहै सदा यह रीती। करत रहै साधुन सों प्रीती
तहँ को राजा राम बघेला। बरन्यो तेहि कबीर को चेला
करै सदा तिनकी सेवकाई। मुकर दिखावै तेल लगाई

रीवाँ राज्य के इतिहास में राजा राम या रामचंद्र का समय संवत् 1611 से 1648 तक माना जाता है। रामानंद जी से दीक्षा लेने के उपरांत ही सेन पक्के भगत हुए होंगे। पक्के भगत हो जाने पर ही उनके लिए भगवान के नाई का रूप धरने वाली बात प्रसिद्ध हुई होगी। उक्त चमत्कार के समय वे राजसेवा में थे। अत: राजा रामचंद्र से अधिक से अधिक 30 वर्ष पहले यदि उन्होंने दीक्षा ली

हो तो संवत् 1575 या 1580 तक रामानंद जी का वर्तमान रहना ठहरता है। इस दशा में स्थूल रूप से उनका समय विक्रम की 15वीं शती के चतुर्थ और 16वीं शती के तृतीय चरण के भीतर माना जा सकता है।

'श्री रामार्चन पद्धति' में रामानंद जी ने अपनी पूरी गुरू परंपरा दी है। उसके अनुसार रामानुजाचार्य जी रामानंद जी से 14 पीढ़ी ऊपर थे। रामानुजाचार्य का परलोकवास संवत् 1194 में हुआ। अब 14 पीढ़ियों के लिए यदि हम 300 वर्ष रखें तो रामानंद जी का समय प्राय: वहीं आता है, जो ऊपर दिया गया है। रामानंद जी का और कोई वृत्त ज्ञात नहीं।

तत्त्वत: रामानुजाचार्य जी के मतावलंबी होने पर भी अपनी उपासना पद्धति का उन्होंने विशेष रूप रखा। उन्होंने उपासना के लिए बैकुंठ निवासी विष्णु का स्वरूप न लेकर लोक में लीला विस्तार करने वाले उनके अवतार राम का आश्रय लिया। इनके इष्टदेव राम हुए और मूलमंत्र हुआ राम नाम। पर इससे यह नहीं समझना चाहिए कि इनके पूर्व देश में रामोपासक भक्त होते ही न थे। रामानुजाचार्य जी ने जिस सिद्धांत का प्रतिपादन किया उसके प्रवर्तक शठकोपाचार्य उनसे पाँच पीढ़ी पहले हुए हैं। उन्होंने अपनी 'सहस्रगीति' में कहा है 'दशरथस्य सुतं तं बिना अन्यशरणवान्नास्मि'। श्री रामानुज के पीछे उनके शिष्य कुरेशस्वामी हुए जिनकी 'पंचस्तवी' में राम की विशेष भक्ति स्पष्ट झलकती है। रामानंद जी ने केवल यह किया कि विष्णु के अन्य रूपों में 'रामरूप' को ही लोक के लिए अधिक कल्याणकारी समझ छाँट लिया और एक सबल संप्रदाय का संघटन किया। इसके साथ ही साथ उन्होंने उदारतापूर्वक मनुष्यमात्र को इस सुलभ सगुणभक्ति का अधिकारी माना और देशभेद, वर्णभेद, जातिभेद आदि का विचार भक्ति मार्ग से दूर रखा। यह बात उन्होंने सिद्धों या नाथपंथियों की देखादेखी नहीं की, बल्कि भगवद् भक्ति के संबंध में महाभारत, पुराण आदि के कथित सिद्धांत के अनुसार की। रामानुज संप्रदाय में दीक्षा केवल द्विजातियों को दी जाती थी, पर स्वामी रामानंद ने रामभक्ति के द्वार सब जातियों के लिए खोल दिया और एक उत्साही विरक्त दल का संघटन किया, जो आज भी 'बैरागी' के नाम से प्रसिद्ध है। अयोध्या, चित्रकूट आदि आज भी वैरागियों के मुख्य स्थान हैं।

भक्तिमार्ग में इनकी उदारता का अभिप्राय यह कदापि नहीं है जैसा कि कुछ लोग समझा और कहा करते हैं कि रामानंद जी वर्णाश्रम के विरोधी थे। समाज के लिए वर्ण और आश्रम की व्यवस्था मानते हुए वे भिन्न-भिन्न कर्तव्यों की योजना स्वीकार करते थे। केवल उपासना के क्षेत्र में उन्होंने सबका समान

अधिकार स्वीकार किया। भगवद्‌भक्ति में वे किसी भेदभाव को आश्रय नहीं देते थे। कर्म के क्षेत्र में शास्त्र मर्यादा इन्हें मान्य थी, पर उपासना के क्षेत्र में किसी प्रकार का लौकिक प्रतिबंध ये नहीं मानते थे। सब जाति के लोगों को एकत्र कर रामभक्ति का उपदेश ये करने लगे और राम नाम की महिमा सुनाने लगे।

रामानंद जी के ये शिष्य प्रसिद्ध हैं कबीरदास, रैदास, सेन नाई और गाँगरौनगढ़ के राजा पीपा, जो विरक्त होकर पक्के भक्त हुए।

रामानंद जी के रचे हुए केवल दो संस्कृत के ग्रंथ मिलते हैं वैष्णवमताब्जभास्कर और श्री रामार्चनपद्धति। और कोई ग्रंथ इनका आज तक नहीं मिला है।

इधर सांप्रदायिक झगड़े के कारण कुछ नए ग्रंथ रचे जाकर रामानंद जी के नाम से प्रसिद्ध किए गए हैं जैसे ब्रह्मसूत्रों पर आनंद भाष्य और भगवद्‌गीताभाष्य जिनके संबंध में सावधान रहने की आवश्यकता है। बात यह है कि कुछ लोग रामानुज परंपरा से रामानंद जी की परंपरा बिल्कुल स्वतंत्र और अलग सिद्ध करना चाहते हैं। इसी से रामानंद जी को एक स्वतंत्र आचार्य प्रमाणित करने के लिए उन्होंने उनके नाम पर एक वेदांतभाष्य प्रसिद्ध किया है। रामानंद जी समय–समय पर विनय और स्तुति के हिन्दी पद भी बनाकर गाया करते थे। केवल दो–तीन पदों का पता अब तक लगा है। एक पद तो यह है, जो हनुमान जी की स्तुति में है

आरति कीजै हनुमान ललाकी। दुष्टदलन रघुनाथ कला की
जाके बल भर ते महि काँपे। रोग सोग जाकी सिमा न चाँपे
अंजनी–सुत महाबलदायक। साधु–संत पर सदा सहायक
बाएं भुजा सब असुर सँहारी। दहिन भुजा सब संत उबारी
लछिमन धरती में मूर्छि परयो। पैठि पताल जमकातर तोरयो
आनि सजीवन प्रान उबारयो। मही सब्रन कै भुजा उपारयो
गाढ़ परे कपि सुमिरौं तोहीं। होहु दयाल देहु जस मोहीं
लंकाकोट समुंदर खाई। जात पवनसुत बार न लाई
लंक प्रजारी असुर सब मारयो। राजा राम के काज सँवारयो
घंटा ताल झालरी बाजै। जगमग जोति अवधपुर छाजै
जो हनुमान जी की आरती गावै। बसि बैकुंठ अमर पद पावै
लंक विध्वंस कियो रघुराई। रामानंद आरती गाई
सुर नर मुनि सब करहिं आरती। जै जै जै हनुमान लाल की

स्वामी रामानंद जी का कोई प्रामाणिक वृत्त न मिलने से उनके संबंध में कई प्रकार के प्रवादों के प्रचार का अवसर लोगों को मिला है। कुछ लोगों का कहना है कि रामानंद जी अद्वैतियों के ज्योतिर्मठ के ब्रह्मचारी थे। इस संबंध में इतना ही कहा जा सकता है कि यह संभव है कि उन्होंने ब्रह्मचारी रहकर कुछ दिन उक्त मठ में वेदांत का अध्ययन किया हो, पीछे रामानुजाचार्य के सिद्धांतों की ओर आकर्षित हुए हों।

दूसरी बात जो उनके संबंध में कुछ लोग इधर उधर कहते सुने जाते हैं वह यह है कि उन्होंने बारह वर्ष तक गिरनार या आबू पर्वत पर योगसाधना करके सिद्धि प्राप्त की थी। रामानंद जी के जो दो ग्रंथ प्राप्त हैं तथा उसके संप्रदाय में जिस ढंग की उपासना चली आ रही है उससे स्पष्ट है कि वे खुले हुए विश्व के बीच भगवान की कला की भावना करने वाले विशुद्ध वैष्णव भक्तिमार्ग के अनुयायी थे, घट के भीतर ढूँढ़ने वाले योगमार्गी नहीं। इसलिए योग साधना वाली प्रसिद्धि का रहस्य खोलना आवश्यक है।

भक्तमाल में रामानंद जी के बारह शिष्य कहे गए हैं अनंतानंद, सुखानंद, सुरसुरानंद, नरहर्यानंद, भावानंद, पीपा, कबीर, सेन, धाना, रैदास, पद्मावती और सुरसरी।

अनंतानंदजी के शिष्य कृष्णदास पयहारी हुए जिन्होंने गलता (अजमेर राज्य, राजपूताना) में रामानंद संप्रदाय की गद्दी स्थापित की। यहीं पहली और सबसे प्रधान गद्दी हुई। रामानुज संप्रदाय के लिए दक्षिण में जो महत्व तोताद्रि का था वहीं महत्व रामानंद संप्रदाय के लिए उत्तर भारत में गलता को प्राप्त हुआ। यह 'उत्तर तोताद्रि' कहलाया। कृष्णदास पयहारी राजपूताने की ओर के दाहिमा (दाधीच्य) ब्राह्मण थे। जैसा कि आदिकाल के अंतर्गत दिखाया जा चुका है, भक्ति आंदोलन के पूर्व देश में विशेषत: राजपूताने में एनाथपंथी कनफटे योगियों का बहुत प्रभाव था जो अपनी सिद्धि की धाक जनता पर जमाए रहते थे। जब सीधे सादे वैष्णव भक्तिमार्ग का आंदोलन देश में चला तब उसके प्रति दुर्भाव रखना उनके लिए स्वाभाविक था। कृष्णदास पयहारी जब पहले पहल गलता पहुँचे, तब वहाँ की गद्दी नाथपंथी योगियों के अधिकार में थी। वे रात भर टिकने के विचार से वहीं धूनी लगाकर बैठ गए। पर कनफटों ने उन्हें उठा दिया। ऐसा प्रसिद्ध है कि इस पर पयहारीजी ने भी अपनी सिद्धि दिखाई और वे धूनी की आग एक कपड़े में उठाकर दूसरी जगह जा बैठे। यह देख योगियों का महंत बाघ बनकर उनकी ओर झपटा। इस पर पयहारीजी के मुँह से निकला कि 'तू कैसा

गदहा है?' वह महंत तुरंत गदहा हो गया और कनफटों की मुद्राएँ उनके कानों से निकल निकलकर पयहारीजी के सामने इकट्ठी हो गईं। आमेर के राजा पृथ्वीराज के बहुत प्रार्थना करने पर महंत फिर आदमी बनाया गया। उसी समय राजा पयहारीजी के शिष्य हो गए और गलता की गद्दी पर रामानंदी वैष्णवों का अधिकार हुआ।

नाथपंथी योगियों के कारण जनता के हृदय में योगसाधना और सिद्धि के प्रतिआस्था जमी हुई थी।1 इससे पयहारीजी की शिष्यपरंपरा में योगसाधना का भी कुछ समावेश हुआ। पयहारीजी के दो प्रसिद्ध शिष्य हुएएअग्रदास और कील्हदास। इन्हीं कील्हदासजी की प्रवृत्ति रामभक्ति के साथ–साथ योगाभ्यास की ओर भी हुई जिससे रामानंद जी की वैरागी परंपरा की एक शाखा में योगसाधना का भी समावेश हुआ। यह शाखा वैरागियों में 'तपसी शाखा' के नाम से प्रसिद्ध हुई। कील्हदास के शिष्य द्वारकादास ने इस शाखा को पल्लवित किया। उनके संबंध में भक्तमाल में ये वाक्य हैं–

'अष्टांग जोग तन त्यागियो द्वारकादास, जानै दुनी'

जब कोई शाखा चल पड़ती है, तब आगे चलकर अपनी प्राचीनता सिद्ध करने के लिए वह बहुत सी कथाओं का प्रचार करती है। स्वामी रामानंद जी के बारह वर्ष तक योगसाधना करने की कथा इसी प्रकार की है, जो वैरागियों की 'तपसी शाखा' में चली। किसी शाखा की प्राचीनता सिद्ध करने का प्रयत्न कथाओं की उद्‌भावना तक ही नहीं रह जाता। कुछ नए ग्रंथ भी संप्रदाय के मूल प्रवर्तक के नाम से प्रसिद्ध किए जाते हैं। स्वामी रामानंद जी के नाम से चलाए हुए ऐसे दो रद्दी ग्रंथ हमारे पास हैं एक का नाम है योगचिंतामणि, दूसरे का रामरक्षा स्त्रोत। दोनों के कुछ नमूने देखिए–

(1)

विकट कटक रे भाई। काया चढ़ा न जाई
जहँ नाद बिंदु का हाथी। सतगुर ले चले साथी
जहाँ है अष्टदल कमल फूला। हंसा सरोवर में भूला
शब्द तो हिरदय बसे, शब्द नयनों बसे,
शब्द की महिमा चार बेद गाई।
कहैं गुरू रामानंद जी, सतगुर दया करि मिलिया,
सत्य का शब्द सुनु रे भाई
सुरत नगर करै सयल। जिसमें है आत्मा का महल
(योगचिंतामणि से)

(2)

संध्यातारिणी सर्वेदु:ख विदारिणी।

संध्या उच्चरै विघ्न टरै। पिंड प्राण कै रक्षा श्रीनाथ निरंजन करै। नाद नादं सुषुम्ना के साज साज्या। चाचरी, भूचरी, खेचरी, अगोचरी, उनमनी पाँच मुद्रा सधांत साधुराजा।

डरे डुँगरे जले और थले बाटे घाटे औघट निरंजन निराकार रक्षा करें। बाघ बाघिनी का करो मुख काला। चौंसठ जोगिनी मारि कुटका किया, अखिल ब्रह्मांड तिहुँ लोक में दुहाई फिरिबा करै। दास रामानंद ब्रह्म चीन्हा, सोई निज तत्त्व ब्रह्मज्ञानी।

(रामरक्षा स्त्रोत से)

झाड़फूँक के काम के ऐसे-ऐसे स्त्रोत भी रामानंद जी के गले मढ़े गए हैं। स्त्रोत के आरंभ में जो 'संध्या' शब्द है नाथपंथ में उसका पारिभाषिक अर्थ है 'सुषुम्ना नाड़ी की संधि में प्राण का जाना' इसी प्रकार 'निरंजन भी गोरखपंथ में उस ब्रह्म' के लिए एक रूढ़ शब्द है जिसकी स्थिति वहाँ मानी गई है जहाँ नाद और बिंदु दोनों का लय हो जाता है–

नादकोटि सहस्राणि बिंदुकोटि शतानि च।

सर्वे तत्रा लयं योति यत्र देवो निरंजन:

'नाद' और 'बिंदु' क्या है, यह नाथपंथ के प्रपंच में दिखाया जा चुका है।

सिखों के 'ग्रंथसाहब' में भी निर्गुण उपासना के दो पद रामानंद के मिलते हैं। एक यह है

कहाँ जाइए हो घरि लागो रंग। मेरो चंचल मन भयो अपंग
जहाँ जाइए तहँ जल पषान। पूरि रहे हरि सब समान
वेद स्मृति सब मेल्हे जोइ। उहाँ जाइए हरि इहाँ न होइ
एक बार मन भयो उमंग। घसि चोवा चंदन चारि अंग
पूजत चाली ठाइँ ठाइँ। सो ब्रह्म बतायो गुरू आप माइँ
सतगुर मैं बलिहारी तोर। सकल विकल भ्रम जारे मोर
रामानंद रमै एक ब्रह्म। गुरू कै एक सबद काटै कोटि क्रम्म

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि ग्रंथ साहब में उद्धृत दोनों पद भी वैष्णव भक्त रामानंद जी के नहीं हैं, और किसी रामानंद के हों तो हो सकते हैं।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, वास्तव में रामानंद जी के केवल दो संस्कृत ग्रंथ ही आज तक मिले हैं। 'वैष्णवमताब्जभास्कर' में रामानंद जी के

शिष्य सुरसुरानंद ने नौ प्रश्न किए हैं जिनके उत्तर में रामतारक मंत्र की विस्तृत व्याख्या, तत्त्वोपदेश, अहिंसा का महत्व, प्रपत्ति, वैष्णवों की दिनचर्या, षोडशोपचारपूजन इत्यादि विषय हैं।

अर्चावतारों के चार भेद स्वयं व्यक्त, दैव, सैद्ध और मानुष करके कहा गया है कि वे प्रशस्त देशों (अयोध्या, मथुरा आदि) में श्री सहित सदा निवास करते हैं। जातिभेद, क्रियाकलाप आदि की अपेक्षा न करने वाले भगवान की शरण में सबको जाना चाहिएए

प्राप्तुं परा सिद्धि मकिंचनो जनो–द्विजादिरिच्छंछरणं हरिं ब्रजेत्।
परम् दयालु स्वगुणानपेक्षितक्रियाकलापादिकजातिभेदम्।

1. गोस्वामी तुलसीदास जी यद्यपि स्वामी रामानंद जी की शिष्य परंपरा के द्वारा देश के बड़े भाग में रामभक्ति की पुष्टि निरंतर होती आ रही थी और भक्त लोग फुटकल पदों में राम की महिमा गाते आ रहे थे, पर हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में इस भक्ति का परमोज्ज्वल प्रकाश विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में गोस्वामी तुलसीदास जी की वाणी द्वारा स्फुरित हुआ। उनकी सर्वतोन्मुखी प्रतिभा ने भाषाकाव्य की सारी प्रचलित पद्धतियों के बीच अपना चमत्कार दिखाया। सारांश यह कि रामभक्ति का वह परम विशद साहित्यिक संदर्भ इन्हीं भक्तशिरोमणि द्वारा संघटित हुआ जिससे हिन्दी काव्य की प्रौढ़ता के युग का आरंभ हुआ।

'शिवसिंहसरोज' में गोस्वामी जी के एक शिष्य बेनीमाधवदास कृत 'गोसाईंचरित्र' का उल्लेख है। इस ग्रंथ का कहीं पता न था। पर कुछ दिन हुए सहसा यह अयोध्या से निकल पड़ा। अयोध्या में एक अत्यंत निपुण दल है, जो लुप्त पुस्तकों और रचनाओं को समय–समय पर प्रकट करता है। कभी नंददास कृत तुलसी की वंदना का पद प्रकट होता है जिसमें नंददास कहते हैं–

श्रीमत्तुलसीदास स्वगुरू भ्राता पद बंदे।
नंददास के हृदय नयन को खोलेउ सोई

कभी सूरदास जी द्वारा तुलसीदास की स्तुति का यह पद प्रकाशित होता है–

धान्य भाग्य मम संत सिरोमनि चरन कमल तकि आयउँ।
दया दृष्टि ते मम दिसि हेरेउ, तत्त्व स्वरूप लखायो।
कर्म उपासन ज्ञान जनित भ्रम संसय सूल नसायो।

इस पद के अनुसार सूरदास का 'कर्मउपासन ज्ञानजनित भ्रम' बल्लभाचार्य जी ने नहीं तुलसीदास जी ने दूर किया था। सूरदास जी तुलसीदास जी से अवस्था में बहुत बड़े थे और उनसे पहले प्रसिद्ध भक्त हो गए थे, यह सब लोग जानते हैं।

ये दोनों पद 'गोसाईंचरित्र' के मेल में हैं, अतः मैं इन सबका उद्‌गम एक ही समझता हूँ। 'गोसाईंचरित्र' में वर्णित बहुत सी बातें इतिहास के सर्वथा विरुद्ध पड़ती हैं, यह बात माताप्रसाद गुप्त अपने कई लेखों में दिखा चुके हैं। रामानंद जी की शिष्य परंपरा के अनुसार देखें तो भी तुलसीदास के गुरू का नाम नरहर्यानंद और नरहर्यानंद के गुरू का नाम अनंतानंद (प्रिय शिष्य अनंतानंद हते। नरहर्यानंद सुनाम छते) असंगत ठहरता है। अनंतानंद और नरहर्यानंद दोनों रामानंद जी के बारह शिष्यों में थे। नरहरिदास को अलबत्ता कुछ लोग अनंतानंद का शिष्य कहते हैं, पर भक्तमाल के अनुसार वे अनंतानंद के शिष्य श्रीरंग के शिष्य थे। गिरनार में योगाभ्यासी सिद्ध रहा करते हैं, 'तपसी शाखा' की यह बात भी गोसाईंचरित्र में आ गई है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि तिथि, वार आदि ज्योतिष की गणना से सब कुछ ठीक मिलाकर तथा तुलसी के संबंध में चली आती हुई सारी जनश्रुतियों का समन्वय करके सावधानी के साथ इसकी रचना हुई है। पर एक ऐसी पदावली इसके भीतर चमक रही है, जो इसे बिल्कुल आजकल की रचना घोषित कर रही है। यह है 'सत्यं, शिवं, सुंदरम्' देखिए

देखिन तिरषित दृष्टि तें सब जने, कीन्ही सही संकरम्।
दिव्याषर सो लिख्यो, पढ़ै धुनि सुने, सत्यं, शिवं, सुंदरम्

यह पदावली अंग्रेजी समीक्षा क्षेत्र में प्रचलित 'द ट्रयू, द गुड, ऐंड द ब्यूटीफुल' का अनुवाद है, जिसका प्रचार पहले पहल ब्रह्मसमाज में, फिर बँगला और हिन्दी की आधुनिक समीक्षाओं में हुआ, यह हम अपने 'काव्य में रहस्यवाद' के भीतर दिखा चुके हैं।

यह बात अवश्य है कि 'गोसाईंचरित्र' में जो वृत्त दिए गए हैं, वे अधिकतर वे ही हैं, जो परंपरा से प्रसिद्ध चले आ रहे हैं।

गोस्वामी जी का एक और जीवन चरित्र, जिसकी सूचना 'मर्यादा' पत्रिका की ज्येष्ठ 1969 की संख्या में श्रीयुत् इंद्रदेव नारायण जी ने दी थी, उनके एक दूसरे शिष्य महात्मा रघुवरदास जी का लिखा 'तुलसीचरित' कहा जाता है। यह कहाँ तक प्रामाणिक है, नहीं कहा जा सकता। दोनों चरितों के वृत्तांतों में परस्पर

बहुत कुछ विरोध है। बाबा बेनीमाधवदास के अनुसार गोस्वामी जी के पिता जमुना के किनारे दुबेपुरवा नामक गाँव के दूबे और मुखिया थे और पूर्वज पत्यौजा ग्राम से यहाँ आए थे। पर बाबा रघुबरदास के 'तुलसीचरित' में लिखा है कि सरवार में मझौली से तेईस कोस पर कसया ग्राम में गोस्वामी जी के प्रपितामह परशुराम मिश्र जो गाना मिश्र थे रहते थे। वे तीर्थाटन करते करते चित्रकूट पहुँचे और उसी ओर राजापुर में बस गए। उनके पुत्र शंकर मिश्र हुए। शंकर मिश्र के रुद्रनाथ मिश्र और रुद्रनाथ मिश्र के मुरारि मिश्र हुए जिनके पुत्र तुलाराम ही आगे चलकर भक्तचूड़ामणि गोस्वामी तुलसीदास जी हुए।

दोनों चरितों में गोस्वामी जी का जन्म संवत् 1554 दिया हुआ है। बाबा बेनीमाधवदास की पुस्तक में तो श्रावण शुक्ल सप्तमी तिथि भी दी हुई है। पर इस संवत् को ग्रहण करने से तुलसीदास जी की आयु 126–127 वर्ष आती है, जो पुनीत आचरण के महात्माओं के लिए असंभव तो नहीं कहीं जा सकती। शिवसिंहसरोज में लिखा है कि गोस्वामी जी संवत् 1583 के लगभग उत्पन्न हुए थे। मिरजापुर के प्रसिद्ध रामभक्त और रामायणी पंडित रामगुलाम द्विवेदी भक्तों की जनश्रुति के अनुसार इनका जन्म संवत् 1589 मानते थे। इसी सबसे पिछले संवत् को ही डॉ. ग्रियर्सन ने स्वीकार किया है। इनका सरयूपारी ब्राह्मण होना तो दोनों चरितों में पाया जाता है और सर्वमान्य है। 'तुलसी परासर गोत दूबे पतिऔजा के' यह वाक्य भी प्रसिद्ध चला आता है और पं. रामगुलाम ने भी इसका समर्थन किया है। उक्त प्रसिद्धि के अनुसार गोस्वामी जी के पिता का नाम आत्माराम दूबे और माता का नाम हुलसी था। माता के नाम के प्रमाण में रहीम का यह दोहा कहा जाता है

सुरतिय, नरतिय, नागतिय, सब चाहति अस होय।
गोद लिये हुलसी फिरैं, तुलसी सो सुत होय

तुलसीदास जी ने कवितावली में कहा है कि 'मातु पिता जग जाइ तज्यौ बिधिहू न लिख्यो कछु भाल भलाई।' इसी प्रकार विनयपत्रिका में भी ये वाक्य हैं 'जनक जननी तज्यौ जनमि, करम बिनु बिधिहु सृज्यौ अवडेरे' तथा 'तनुजन्यो कुटिल कीट ज्यों, तज्यो मातु पिता हूँ।' इन वचनों के अनुसार यह जनश्रुति चल पड़ी कि गोस्वामी जी अभुक्त मूल में उत्पन्न हुए थे, इससे उनके माता–पिता ने उन्हें त्याग दिया था। उक्त जनश्रुति के अनुसार गोसाईंचरित में लिखा है कि गोस्वामी जी जब उत्पन्न हुए तब पाँच वर्ष के बालक के समान थे और उन्हें पूरे दाँत भी थे। वे रोए नहीं, केवल 'राम' शब्द उनके मुँह से सुनाई पड़ा। बालक

को राक्षस समझ पिता ने उसकी उपेक्षा की। पर माता ने उसकी रक्षा के लिए उद्विग्न होकर उसे अपनी एक दासी मुनिया को पालने पोसने को दिया और वह उसे लेकर अपनी ससुराल चली गई। पाँच वर्ष पीछे जब मुनिया भी मर गई तब राजापुर में बालक के पिता के पास संवाद भेजा गया, पर उन्होंने बालक को लेना स्वीकार न किया। किसी प्रकार बालक का निर्वाह कुछ दिन हुआ। अंत में बाबा नरहरिदास ने उसे अपने पास रख लिया और कुछ शिक्षा दीक्षा दी। इन्हीं गुरू से गोस्वामी जी राम कथा सुना करते थे। इन्हीं अपने गुरू बाबा नरहरिदास के साथ गोस्वामी जी काशी में आकर पंचगंगा घाट पर स्वामी रामानंद जी के स्थान पर रहने लगे। वहाँ पर एक परम विद्वान महात्मा शेषसनातन जी रहते थे जिन्होंने तुलसीदास जी को वेद-वेदांग, दर्शन, इतिहास, पुराण आदि में प्रवीण कर दिया। 15 वर्ष तक अध्ययन करके गोस्वामी जी फिर अपनी जन्मभूमि राजापुर लौटे, पर वहाँ इनके परिवार में कोई नहीं रह गया था और घर भी गिर गया था।

यमुनापार के एक ग्राम के रहने वाले भारद्वाज गोत्री एक ब्राह्मण यमद्वितीया को राजापुर में स्नान करने आए। उन्होंने तुलसीदास जी की विद्या, विनय और शील पर मुग्ध होकर अपनी कन्या इन्हें ब्याह दी। इसी पत्नी के उपदेश से गोस्वामी जी का विरक्त होना और भक्ति की सिद्धि प्राप्त करना प्रसिद्ध है। तुलसीदास जी अपनी इस पत्नी पर इतने अनुरक्त थे कि एक बार उसके मायके चले जाने पर वे बढ़ी नदी पार करके उससे जाकर मिले। स्त्री ने उस समय ये दोहे कहे–

लाज न लागत आपको दौरे आएहु साथ।
धिक धिक ऐसे प्रेम को कहा कहौं मैं नाथ
अस्थि चर्ममय देह मम तामे जैसी प्रीति।
तैसी जौ श्रीराम महँ, होति न तौ भवभीति

यह बात तुलसीदास जी को ऐसी लगी कि वे तुरंत काशी आकर विरक्त हो गए। इस वृत्तांत को प्रियदास जी ने भक्तमाल की अपनी टीका में दिया है और 'तुलसीचरित' और 'गोसाईचरित' में भी इसका उल्लेख है।

गोस्वामी जी घर छोड़ने पर कुछ दिन काशी में, फिर काशी से अयोध्या जाकर रहे। उसके पीछे तीर्थयात्रा करने निकले और जगन्नाथपुरी, रामेश्वर, द्वारका होते हुए बद्रिकाश्रम गए। वहाँ से ये कैलाश और मानसरोवर तक निकल गए। अंत में चित्रकूट आकर ये बहुत दिनों तक रहे जहाँ अनेक संतों से इनकी भेंट हुई। इसके अनंतर संवत् 1631 में अयोध्या जाकर इन्होंने रामचरितमानस का

आरंभ किया और उसे 2 वर्ष 7 महीने में समाप्त किया। रामायण का कुछ अंश, विशेषतः किषकिंधाकांड, काशी में रचा गया। रामायण समाप्त होने पर ये अधिकतर काशी में ही रहा करते थे। वहाँ अनेक शास्त्रज्ञ विद्वान इनसे आकर मिला करते थे क्योंकि इनकी प्रसिद्धि सारे देश में हो चुकी थी। ये अपने समय के सबसे बड़े भक्त और महात्मा माने जाते थे। कहते हैं कि उस समय के प्रसिद्ध विद्वान मधुसूदन सरस्वती से इनसे वाद हुआ था जिससे प्रसन्न होकर इनकी स्तुति में यह शोक उन्होंने कहा था–

आनंदकानने कश्चिज्जक्ष्मस्तुलसीतरुः।
कवितामंजरी यस्य रामभ्रमर भूषिता

गोस्वामी जी के मित्रों और स्नेहियों में नवाब अब्दुर्रहीम खानखाना, महाराज मानसिंह, नाभाजी और मधुसूदन सरस्वती आदि कहे जाते हैं। 'रहीम' से इनसे समय-समय पर दोहों में लिखा पढ़ी हुआ करती थी। काशी में इनके सबसे बड़े स्नेही और भक्त भदैनी के एक भूमिहार जमींदार टोडर थे जिनकी मृत्यु होने पर इन्होंने कई दोहे कहे हैं

चार गाँव को ठाकुरो मन को महामहीप।
तुलसी या कलिकाल में अथ टोडर दीप
तुलसी रामसनेह को सिर पर भारी भारु।
टोडर काँधा नहिं दियो, सब कहि रहे उतारु
रामधाम टोडर गए, तुलसी भए असोच।
जियबो मीत पुनीत बिनु, यहै जानि संकोच

गोस्वामी जी की मृत्यु के संबंध में लोग यह दोहा कहा करते हैं–

संवत् सोरह सै असी, असी गंगा के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो शरीर

पर बाबा बेनीमाधवदास की पुस्तक में दूसरी पंक्ति इस प्रकार है या कर दी गई है

श्रावण कृष्णा तीज शनि, तुलसी तज्यो शरीर।

यहीं ठीक तिथि है क्योंकि टोडर के वंशज अब तक इसी तिथि को गोस्वामी जी के नाम सीधा दिया करते हैं।

'मैं पुनि निज गुरू सन् सुनी, कथा सो सूकर खेत' को लेकर लोग गोस्वामी जी का जन्मस्थान ढूँढ़ने एटा जिले के सोरों नामक स्थान तक सीधे पच्छिम दौड़े हैं। पहले पहल उस ओर इशारा स्व. लाला सीताराम ने (राजापुर

के) अयोध्याकांड के स्वसंपादित संस्करण की भूमिका में दिया था। उसके बहुत दिन पीछे उसी इशारे पर दौड़ लगी और अनेक प्रकार के कल्पित प्रमाण सोरों को जन्म स्थान सिद्ध करने के लिए तैयार किए गए। सारे उपद्रव की जड़ है 'सूकर खेत' जो भ्रम में सोरों समझ लिया गया। 'सूकर छेत्रा' गोंडे के जिले में सरजू के किनारे एक पवित्र तीर्थ है, जहाँ आसपास के कई जिलों के लोग स्नान करने जाते हैं और मेला लगता है।

जिन्हें भाषा की परख है उन्हें यह देखते देर न लगेगी कि तुलसीदास जी की भाषा में ऐसे शब्द, जो स्थान विशेष के बाहर नहीं बोले जाते हैं, केवल दो स्थानों के हैं चित्रकूट के आसपास के और अयोध्या के आसपास के। किसी कवि की रचना में यदि किसी स्थान विशेष के भीतर ही बोले जाने वाले अनेक शब्द मिलें तो उस स्थान विशेष से कवि का निवास संबंध मानना चाहिए। इस दृष्टि से देखने पर यह बात मन में बैठ जाती है कि तुलसीदास जी का जन्म राजापुर में हुआ जहाँ उनकी कुमार अवस्था बीती। सरवरिया होने के कारण उनके कुल के तथा संबंधी अयोध्या, गोंडा, बस्ती के आसपास थे, जहाँ उनका आना-जाना बराबर रहा करता था। विरक्त होने पर वे अयोध्या में ही रहने लगे थे। 'रामचरितमानस' में आए हुए कुछ शब्द और प्रयोग नीचे दिए जाते हैं, जो अयोध्या के आसपास ही (बस्ती, गोंडा आदि कुछ भागों में) बोले जाते हैं–

माहुर = विष। सरौं = कसरत। फहराना या फरहराना = प्रफुल्लचित्त होना (सरौं करहिं पायक फहराई)। फुर = सच। अनभल ताकना = बुरा मनाना (जेहिराउर अति अनभल ताका)। राउर, राउरेहि = आपको (भलउ कहत दुख रउरेहि लागा)। रमा लहीं = रमा ने पाया (प्रथम पुरुष स्त्री, बहुवचन, उदा.-भरि जनम जे पाए न ते परितोष उमा रमा लही)। कूटि = दिल्लगी, उपहास।

इसी प्रकार ये शब्द चित्रकूट के आसपास तथा बघेलखंड में ही (जहाँ की भाषा पूरबी हिन्दी या अवधी ही है) बोले जाते हैं –

कुराय = वे गढे जो करेंल पोली जमीन में बरसात के कारण जगह-जगह पड़ जाते हैं (काँट कुराय लपेटन लोटन ठावहिं ठाँव बझाऊ रे। विनय.)।

सुआर = सूपकार, रसोइया।

ये शब्द और प्रयोग इस बात का पता देते हैं कि किन किन स्थानों की बोली गोस्वामी जी की अपनी थी। आधुनिक काल के पहले साहित्य या काव्य की सर्वमान्य व्यापक भाषा ब्रज रही है, यह तो निश्चित है। भाषा काव्य के परिचय के लिए प्रायः सारे उत्तर भारत के लोग बराबर इसका अभ्यास करते थे

और अभ्यास द्वारा सुंदर रचना भी करते थे। ब्रजभाषा में रीतिग्रंथ लिखनेवाले चिंतामणि, भूषण, मतिराम, दास इत्यादि अधिकतर कवि अवध के थे और ब्रजभाषा के सर्वमान्य कवि माने जाते हैं। दास जी ने तो स्पष्ट व्यवस्था ही दी है कि 'ब्रजभाषा हेतु ब्रजवास ही न अनुमानौ'। पर पूरबी हिन्दी या अवधी के संबंध में यह बात नहीं है। अवधी भाषा में रचना करने वाले जितने कवि हुए हैं सब अवध या पूरब के थे। किसी पछाहीं कवि ने कभी पूरबी हिन्दी या अवधी पर ऐसा अधिकार प्राप्त नहीं किया कि उसमें रचना कर सके। जो बराबर सोरों की पछाहीं बोली (ब्रज) बोलता आया होगा वह 'जानकीमंगल' और 'पार्वतीमंगल' की–सी ठेठ अवधी लिखेगा, 'मानस' ऐसे महाकाव्य की रचना अवधी में करेंगा और व्याकरण के ऐसे देशबद्ध प्रयोग करेंगा जैसे ऊपर दिखाए गए हैं? भाषा के विचार में व्याकरण के रूपों का मुख्यत: विचार होता है।

भक्त लोग अपने को जन्मजन्मांतर से अपने आराध्य इष्टदेव का सेवक मानते हैं। इसी भावना के अनुसार तुलसी और सूर दोनों ने कथाप्रसंग के भीतर अपने को गुप्त या प्रकट रूप में राम और कृष्ण के समीप तक पहुँचाया है। जिस स्थल पर ऐसा हुआ है वहीं कवि के निवास स्थान का पूरा संकेत भी है। 'रामचरितमानस' के अयोध्याकांड में वह स्थल देखिए जहाँ प्रयाग से चित्रकूट जाते हुए राम जमुना पार करते हैं और भारद्वाज के द्वारा साथ लगाए हुए शिष्यों को विदा करते हैं। राम सीता तट पर के लोगों से बातचीत कर ही रहे हैं कि

तेहि अवसर एक तापस आवा। तेजपुंज लघु बयस सुहावा
कवि अलषित गति बेष बिरागी। मन क्रम बचन राम अनुरागी
सजल नयन तन पुलक निज इष्ट देउ पहिचानि।
परेउ दंड जिमि धरनितल दसा न जाइ बखानि

यह तापस एकाएक आता है। कब जाता है, कौन है, इसका कहीं कोई उल्लेख नहीं है। बात यह है कि इस ढंग से कवि ने अपने को ही तापस रूप में राम के पास पहुँचाया है और ठीक उसी प्रदेश में जहाँ के वे निवासी थे, अर्थात् राजापुर के पास।

सूरदास ने भी भक्तों की इस पद्धति का अवलंबन किया है। यह तो निर्विवाद है कि बल्लभाचार्य जी से दीक्षा लेने के उपरांत सूरदास जी गोवर्ध्दन पर श्रीनाथ जी के मंदिर में कीर्तन किया करते थे। अपने सूरसागर के दशम् स्कंध के आरंभ में सूरदास ने श्रीकृष्ण के दर्शन के लिए अपने को ढाढ़ी के रूप में नंद के द्वार पर पहुँचाया है–

नंद जू! मेरे मन आनंद भयो, हौं गोवर्द्धन तें आयो।
तुम्हरे पुत्र भयो मैं सुनि कै अति आतुर उठि धायो
×××
जब तुम मदनमोहन करि टेरौ, यह सुनि कै घर जाऊँ।
हौं तौ तेरे घर को ढाढ़ी, सूरदास मेरो नाऊँ

सबका सारांश यह है कि तुलसीदास का जन्म स्थान जो राजापुर प्रसिद्ध चला आता है वही, ठीक है।

एक बात की ओर और ध्यान जाता है। तुलसीदास जी रामानंद संप्रदाय की बैरागी परंपरा में नहीं जान पड़ते। उक्त संप्रदाय के अंतर्गत जितनी शिष्य परंपराएँ मानी जाती हैं उनमें तुलसीदास जी का नाम कहीं नहीं है। रामानंद परंपरा में सम्मिलित करने के लिए उन्हें नरहरिदास का शिष्य बताकर जो परंपरा मिलाई गई है वह कल्पित प्रतीत होती है। वे रामोपासक वैष्णव अवश्य थे, पर स्मार्त वैष्णव थे।

गोस्वामी जी के प्रादुर्भाव को हिन्दी काव्य क्षेत्र में एक चमत्कार समझना चाहिए। हिन्दी काव्य की शक्ति का पूर्ण प्रसार इनकी रचनाओं में ही पहले पहल दिखाई पड़ा। वीरगाथाकाल के कवि अपने संकुचित क्षेत्र में काव्यभाषा के पुराने रूप को लेकर एक विशेष शैली की परंपरा निभाते आ रहे थे। चलती भाषा का संस्कार और समुन्नति उनके द्वारा नहीं हुई। भक्तिकाल में आकर भाषा के चलते रूप को समाश्रय मिलने लगा। कबीरदास ने चलती बोली में अपनी वाणी कही। पर वह बोली बेठिकाने की थी। उसका कोई नियत रूप न था। शौरसेनी, अपभ्रंश या नागर अपभ्रंश का जो सामान्य रूप साहित्य के लिए स्वीकृत था उससे कबीर का लगाव न था। उन्होंने नाथपंथियों की 'सधुक्कड़ी भाषा' का व्यवहार किया जिसमें खड़ी बोली के बीच राजस्थानी और पंजाबी का मेल था। इसका कारण यह था कि मुसलमानों की बोली पंजाबी या खड़ी बोली हो गई थी और निर्गुणपंथी साधुओं का लक्ष्य मुसलमानों पर भी प्रभाव डालने का था। अतः उनकी भाषा में अरबी और फारसी के शब्दों का भी मनमाना प्रयोग मिलता है। उनका कोई साहित्यिक लक्ष्य न था और वे पढ़े-लिखे लोगों से दूर ही दूर अपना उपदेश सुनाया करते थे।

साहित्य की भाषा में, जो वीरगाथा काल के कवियों के हाथ में बहुत कुछ अपने पुराने रूप में ही रही, प्रचलित भाषा के संयोग से नया जीवन सगुणोपासक कवियों द्वारा प्राप्त हुआ। भक्तवर सूरदास जी ब्रज की चलती

भाषा को परंपरा से चली आती हुई काव्यभाषा के बीच पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित करके साहित्यिक भाषा को लोकव्यवहार के मेल में लाए। उन्होंने परंपरा से चली आती हुई काव्यभाषा का तिरस्कार न करके उसे एक नया चलता रूप दिया। सूरसागर को ध्यानपूर्वक देखने से उसमें क्रियाओं के कुछ पुराने रूप, कुछ सर्वनाम (जैसे जासु तासु, जेहि तेहि) तथा कुछ प्राकृत के शब्द पाए जाएँगे। सारांश यह कि वे परंपरागत काव्यभाषा को बिल्कुल अलग करके एकबारगी नई चलती बोली लेकर नहीं चले। भाषा का एक शिष्ट सामान्य रूप उन्होंने रखा जिसका व्यवहार आगे चलकर बराबर कविता में होता आया। यह तो हुई ब्रज भाषा की बात। इसके साथ ही पूरबी बोली या अवधी भी साहित्य निर्माण की ओर अग्रसर हो चुकी थी। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, अवधी की सबसे पुरानी रचना ईश्वरदास की 'सत्यवती कथा' है। आगे चलकर 'प्रेममार्गी शाखा' के मुसलमान कवियों ने अपनी कहानियों के लिए अवधी भाषा ही चुनी। इस प्रकार गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपने समय में काव्यभाषा के दो रूप प्रचलित पाए एक ब्रज और दूसरी अवधी। दोनों में उन्होंने समान अधिकार के साथ रचनाएँ कीं।

भाषा पद्य के स्वरूप को लेते हैं तो गोस्वामी जी के सामने कई शैलियाँ प्रचलित थीं जिनमें से मुख्य ये हैं(क) वीरगाथाकाल की छप्पय पद्धति, (ख) विद्यापति और सूरदास की गीत पद्धति, (ग) गंग आदि भाटों की कवित्त सवैया पद्धति, (घ) कबीरदास की नीति संबंधी बानी की दोहा पद्धति जो अपभ्रंश से चली आती थी और (ड़) ईश्वरदास की दोहे, चौपाई वाली प्रबंध पद्धति। इस प्रकार काव्यभाषा के दो रूप और रचना की पाँच मुख्य शैलियाँ साहित्य क्षेत्र में गोस्वामी जी को मिलीं। तुलसीदास जी के रचनाविधान की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे अपनी सर्वतोन्मुखी प्रतिभा के बल से सबके सौंदर्य की पराकाष्ठा अपनी दिव्य वाणी में दिखाकर साहित्यक्षेत्र में प्रथम पद के अधिकारी हुए। हिन्दी कविता के प्रेमी मात्र जानते हैं कि उनका ब्रज और अवधी दोनों भाषाओं पर समान अधिकार था। ब्रजभाषा का जो माधुर्य हम सूरसागर में पाते हैं वहीं माधुर्य और भी संस्कृत रूप में हम गीतावली और कृष्णगीतावली में पाते हैं। ठेठ अवधी की जो मिठास हमें जायसी के पद्मावत में मिलती है वहीं जानकीमंगल, पार्वतीमंगल, बरवैरामायण और रामललानहछू में हम पाते हैं। यह सूचित करने की आवश्यकता नहीं कि न तो सूर का अवधी पर अधिकार था और न जायसी का ब्रजभाषा पर।

प्रचलित रचना शैलियों पर भी उनका इसी प्रकार का पूर्ण अधिकार हम पाते हैं।

(क) वीरगाथाकाल की छप्पय पद्धति पर इनकी रचना थोड़ी है पर इनकी निपुणता पूर्ण रूप से प्रदर्शित करती है, जैसे–

कतहुँ विटप भूधार उपारि परसेन बरक्खत।
कतहुँ बाजि सो बाजि मर्दि गजराज करक्खत
चरन चोट चटकन चकोट अरि उर सिर बज्जत।
बिकट कटक बिद्दरत बीर वारिद जिमि गज्जत
लंगूर लपेटत पटकि भट, 'जयति राम जय' उच्चरत।
तुलसीस पवननंदन अटल जुद्ध क्रुद्ध कौतुक करत
डिगति उर्वि अति गुर्वि, सर्व पब्बै समुद्र सर।
ब्याल बधिर तेहि काल, बिकल दिगपाल चराचर
दिग्गयंद लरखरत, परत दसकंठ मुक्ख भर।
सुरविमान हिमभानु, संघटित होत परस्पर।
चौके विरंचि संकर सहित, कोल कमठ अहि कलमल्यौ।
ब्रह्मांड खंड कियो चंडधुनि, जबहिं राम सिवधानुदल्यौ

(ख) विद्यापति और सूरदास की गीत पद्धति पर इन्होंने बहुत विस्तृत और बड़ी सुंदर रचना की है। सूरदास जी की रचना में संस्कृत की 'कोमलकांत पदावली' और अनुप्रासों की वह विचित्र योजना नहीं है, जो गोस्वामी जी की रचना में है। दोनों भक्त शिरोमणियों की रचना में यह भेद ध्यान देने योग्य है और इस पर ध्यान अवश्य जाता है। गोस्वामी जी की रचना अधिक संस्कृतगर्भित है। पर इसका यह अभिप्राय नहीं है कि इनके पदों में शुद्ध देशभाषा का माधुर्य नहीं है। इन्होंने दोनों प्रकार की मधुरता का बहुत ही अनूठा मिश्रण किया है। विनयपत्रिका के प्रारंभिक स्त्रोतों में जो संस्कृत पदविन्यास है उसमें गीतगोविंद के पदविन्यास से इस बात की विशेषता है कि वह विषम है और रस के अनुकूल कहीं कोमल और कहीं-कहीं कर्कश देखने में आता है। हृदय के विविधा भावों की व्यंजना गीतावली के मधुर पदों में देखने योग्य है। कौशल्या के सामने भरत अपनी आत्मग्लानि की व्यंजना किन शब्दों में करते हैं, देखिए–

जौ हौं मातुमते महँ हवैहौं।
तौ जननी जग में या मुख की कहाँ कालिमा ध्वैहौं?
क्यौं हौं आजु होत सुचि सपथनि, कौन मानिहै साँची?

महिमा मृगी कौन सुकृती की खल बच बिसिषन्ह बाँची?

इसी प्रकार चित्रकूट में राम के सम्मुख जाते हुए भरत की दशा का भी सुंदर चित्रण है–

बिलोके दूरि तें दोउ वीर।
मन अगहुँड़ तन पुलक सिथिल भयो, नयन नलिन भरेनीर।
गड़त गोड़ मनो सकुच पंक महँ, कढ़त प्रेमबल धीर

'गीतावली' की रचना गोस्वामी जी ने सूरदास जी के अनुकरण पर की है। बाललीला के कई एक पद ज्यों के त्यों सूरसागर में भी मिलते हैं, केवल 'राम' 'श्याम' का अंतर है। लंकाकांड तक तो कथा की अनेकरूपता के अनुसार मार्मिक स्थलों का जो चुनाव हुआ है वह तुलसी के सर्वथा अनुरूप है। पर उत्तरकांड में जाकर सूर पद्धति के अतिशय अनुकरण के कारण उनका गंभीर व्यक्तित्त्व तिरोहित सा हो गया है। जिस रूप में राम को उन्होंने सर्वत्र लिया है, उनका भी ध्यान उन्हें नहीं रह गया। 'सूरदास' में जिस प्रकार गोपियों के साथ श्रीकृष्ण हिंडोला झूलते हैं, होली खेलते हैं, वहीं करते राम भी दिखाए गए हैं। इतना अवश्य है कि सीता की सखियों और पुरनारियों का राम की ओर पूज्यभाव ही प्रकट होता है। राम की नखशिख शोभा का अलंकृत वर्णन भी सूर की शैली पर बहुत से पदों में लगातार चला गया है। सरयूतट के इस आनंदोत्सव को आगे चलकर रसिक लोग क्या रूप देंगे इसका ख्याल गोस्वामी जी को न रहा।

(ग) गंग आदि भाटों की कवित्त, सवैया पद्धति पर भी इसी प्रकार सारा रामचरित गोस्वामी जी कह गए हैं जिसमें नाना रसों का सन्निवेश अत्यंत विशद रूप में और अत्यंत पुष्ट और स्वच्छ भाषा में मिलता है। नाना रसमयी रामकथा तुलसीदास जी ने अनेक प्रकार की रचनाओं में कहीं है। कवितावली में रसानुकूल शब्दयोजना बड़ी सुंदर है। जो तुलसीदास जी ऐसी कोमल भाषा का व्यवहार करते हैं –

राम को रूप निहारत जानकि, कंकन के नग की परछाहीं।
याते सबै सुधि भूलि गई, कर टेकि रही, पल डारति नाहीं
गोरो गरूर गुमान भरो यह, कौसिक, छोटो सो ढोटो है काको?
जल को गए लक्खन, हैं लरिका, परिखौ, पिय छाँह घरीक हवै ठाढ़े।
पोंछि पसेउ बयारि करौं, अरु पाँय पखारिहौं भूभुरि डाढ़े

वे ही वीर और भयानक के प्रसंग में ऐसी शब्दावली का व्यवहार करते हैं–

प्रबल प्रचंड बरिबंड बाहुदंड वीर,
धाए जातुधान, हनुमान लियो घेरि कै।
महाबल पुंज कुंजरारि ज्यों गरजि भट,
जहाँ तहाँ पटके लंगूर फेरि फेरि कै।
मारे लात, तोरे गात, भागे जात, हाहा खात,
कहैं तुलसीस 'राखि राम की सौं' टेरि कै।
ठहर ठहर परे, कहरि कहरि उठै,
हहरि हहरि हर सिद्ध हँसे हेरि कै
बालधी बिसाल विकराल ज्वाल लाल मानौ,
लंक लीलिबे को काल रसना पसारी है।
कैधों ब्योम वीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु,
बीररस बीर तरवारि सी उघारी है

(घ) नीति के उपदेश की सूक्ति पद्धति पर बहुत से दोहे रामचरितमानस और दोहावली में मिलेंगे जिनमें बड़ी मार्मिकता से और कहीं-कहीं बड़े रचनाकौशल से व्यवहार की बातें कहीं गई हैं और भक्तिप्रेम की मर्यादा दिखाई गई है–

रीझि आपनी बूझि पर, खीझि विचार विहीन।
ते उपदेस न मानहीं, मोह महोदधि मीन।
लोगन भलो मनाव जो, भलो होन की आस।
करत गगन को गेंडुआ, सो सठ तुलसीदास।
की तोहि लागहि राम प्रिय, की तु राम प्रिय होहि।
दुइ महँ रुचौ जो सुगम सोइ, कीबे तुलसी तोहि

(ङ) जिस प्रकार चौपाई, दोहे के क्रम से जायसी ने अपना पद्मावत नाम का प्रबंधकाव्य लिखा उसी क्रम पर गोस्वामी जी ने अपना परम प्रसिद्ध काव्य रामचरितमानस, जो लोगों के हृदय का हार बनता चला आता है, रचा। भाषा वहीं अवधी है, केवल पदविन्यास का भेद है। गोस्वामी जी शास्त्रपारंगत विद्वान थे अतः उनकी शब्दयोजना साहित्यिक और संस्कृतगर्भित है। जायसी में केवल ठेठ अवधी का माधुर्य है, पर गोस्वामी जी की रचना में संस्कृत की कोमल पदावली का भी बहुत ही मनोहर मिश्रण है। नीचे दी हुई कुछ चौपाइयों में दोनों की भाषा का भेद स्पष्ट देखा जा सकता है

जब हुँत कहिगा पंखि संदेसी। सुनिउँ कि आवा है परदेसी
तब हुँत तुम्ह बिन रहे न जीऊ। चातक भयउँ कहत पिउ पीउ
भइउँ बिरह जरि कोइलि कारी। डार डार जो कूकि पुकारी

जायसी

अमिय मूरिमय चूरन चारू। समन सकल भवरुज परिवारू
सुकृत संभु तनु विमल विभूती। मंजुल मंगल मोद प्रसूती
जन मन मंजु मुकुर मल हरनी। किए तिलक गुन गन बस करनी

तुलसी

सारांश यह कि हिन्दी काव्य की सब प्रकार की रचनाशैली के ऊपर गोस्वामी जी ने अपना ऊँचा आसन प्रतिष्ठित किया है। यह उच्चता और किसी को प्राप्त नहीं।

अब हम गोस्वामी जी के वर्णित विषय के विस्तार का विचार करेंगे। यह विचार करेंगे कि मानव जीवन की कितनी अधिक दशाओं का सन्निवेश उनकी कविता के भीतर है। इस संबंध में हम यह पहले ही कह देना चाहते हैं कि अपने दृष्टिविस्तार के कारण ही तुलसीदास जी उत्तरी भारत की समग्र जनता के हृदयमंदिर में पूर्ण प्रेमप्रतिष्ठा के साथ विराज रहे हैं। भारतीय जनता का प्रतिनिधि कवि यदि किसी को कह सकते हैं तो इन्हीं महानुभाव को। और कवि जीवन का कोई एक पक्ष लेकर चले हैं जैसे वीरकाल के कवि उत्साह को, भक्तिकाल के दूसरे कवि प्रेम और ज्ञान को, अलंकारकाल के कवि दांपत्य प्रणय या शृंगार को। पर इनकी वाणी की पहुँच मनुष्य के सारे भावों और व्यवहारों तक है। एक ओर तो वह व्यक्तिगत साधना के मार्ग में विरागपूर्ण शुद्ध भगवद्भक्ति का उपदेश करती है, दूसरी ओर लोकपक्ष में आकर पारिवारिक और सामाजिक कर्तव्यों का सौंदर्य दिखाकर मुग्ध करती है। व्यक्तिगत साधना के साथ ही साथ लोकधर्म की अत्यंत उज्ज्वल छटा उसमें वर्तमान है।

पहले कहा जा चुका है कि निर्गुण धारा के संतों की बानी में किस प्रकार लोकधर्म की अवहेलना छिपी हुई थी। सगुण धारा की भारतीय पद्धति के भक्तों में कबीर, दादू आदि के लोकधर्म विरोधी स्वरूप को यदि किसी ने पहचाना तो गोस्वामी जी ने। उन्होंने देखा कि उनके वचनों से जनता की चित्तवृत्ति में ऐसे घोर विकार की आशंका है जिससे समाज विशृंखल हो जाएगा, उसकी मर्यादा

नष्ट हो जायगी। जिस समाज से ज्ञानसंपन्न शास्त्रज्ञ विद्वानों, अन्याय अत्याचार के दमन में तत्पर वीरों, पारिवारिक कर्तव्यों का पालन करने वाले उच्चाशय व्यक्तियों, पतिप्रेम परायण सतियों, पितृभक्ति के कारण अपना सुख सर्वस्व त्यागने वाले सत्पुरुषों, स्वामी की सेवा में मर मिटनेवाले सच्चे सेवकों, प्रजा का पुत्रवत् पालन करने वाले शासकों आदि के प्रति श्रद्धा और प्रेम का भाव उठ जायगा उसका कल्याण कदापि नहीं हो सकता।

गोस्वामी जी को निर्गुण पंथियों की बानी में लोकधर्म की उपेक्षा का भाव स्पष्ट दिखाई पड़ा। साथ ही उन्होंने यह भी देखा कि बहुत से अनधिकारी और अशिक्षित वेदांत के कुछ चलते शब्दों को लेकर, बिना उनका तात्पर्य समझे, यों ही 'ज्ञानी' बने हुए, मूर्ख जनता को लौकिक कर्तव्यों से विचलित करना चाहते हैं और मूर्खतामिश्रित अहंकार की वृद्धि कर रहे हैं। इसी दशा को लक्ष्य करके उन्होंने इस प्रकार के वचन कहे हैं –

श्रुति सम्मत हरिभक्ति पथ संजुत विरति विवेक।
नहि परिहरहिं विमोहबस कल्पहि पंथ अनेक
साखी सबदी दोहरा कहि कहनी उपखान।
भगति निरूपहिं भगत कलि निंदहिं वेद पुरान
बादहिं शूद्र द्विजन सन हम तुमतें कछु घाटि।
जानहिं ब्रह्म सो बिप्रवर आँखि देखावहिं डाटि

इसी प्रकार योगमार्ग से भक्तिमार्ग का पार्थक्य गोस्वामी जी ने बहुत स्पष्ट शब्दों में बताया है। योगमार्ग ईश्वर को अंतस्थ मानकर अनेक प्रकार की अंतस्साधनाओं में प्रवृत्त करता है। सगुण भक्तिमार्गी ईश्वर को भीतर और बाहर सर्वत्र मानकर उनकी कला का दर्शन खुले हुए व्यक्त जगत के बीच करता है। वह ईश्वर को केवल मनुष्य के क्षुद्र घट के भीतर ही नहीं मानता। इसी से गोस्वामी जी कहते हैं –

अंतर्जामिहु तें बड़ बाहिरजामी हैं राम, जो नाम लिए तें।
पैज परे प्रहलादहु को प्रगटे प्रभु पाहन तें, न हिए तें

'घट के भीतर' कहने से गुह्य या रहस्य की धारणा फैलती है, जो भक्ति के सीधे स्वाभाविक मार्ग में बाधा डालती है। घट के भीतर साक्षात्कार करने की बात कहने वाले प्राय: अपने को गूढ़ रहस्यदर्शी प्रगट करने के लिए सीधी सादी बात को भी रूपक बाँधकर और टेढ़ी पहेली बनाकर कहा करते हैं। पर इस प्रकार के दुराव–छिपाव की प्रवृत्ति को गोस्वामी जी भक्ति का विरोधी मानते हैं।

सरलता या सीधेपन को वे भक्ति का नित्य लक्षण कहते हैं मन की सरलता, वचन की सरलता और कर्म की सरलता, तीनों को

सूधो मन, सूधो बचन, सूधी सब करतूति।
तुलसी सूधी सकल बिधि, रघुबर प्रेम प्रसूति

वे भक्ति के मार्ग को ऐसा नहीं मानते जिसे 'खै कोई बिरलै'। वे उसे ऐसा सीधा सादा स्वाभाविक मार्ग बताते हैं, जो सबके सामने दिखाई पड़ता है। वह संसार में सबके लिए ऐसा ही सुलभ है जैसे अन्न और जल।

निगम अगम, साहब सुगम, राम साँचिली चाह।
अंबु असन अवलोकियत, सुलभ सबहि जग माँह

अभिप्राय यह कि जिस हृदय से भक्ति की जाती है वह सबके पास है। हृदय की जिस पद्धति से भक्ति की जाती है वह भी वहीं है जिससे माता–पिता की भक्ति, पुत्र कलत्र का प्रेम किया जाता है। इसी से गोस्वामी जी चाहते हैं कि–

यहि जग महँ जहँ लगि या तन की प्रीति प्रतीति सगाई।
सो सब तुलसीदास प्रभु ही सों होहु सिमिटि इक ठाई

नाथपंथी रमते जोगियों के प्रभाव से जनता अंधी भेड़ बनी हुई तरह तरह की करामातों को साधुता का चिह्न मानने लगी थी और ईश्वरोन्मुख साधना को कुछ बिरले रहस्यदर्शी लोगों का ही काम समझने लगी थी। जो हृदय सबके पास होता है वहीं अपनी स्वाभाविक वृत्तियों द्वारा भगवान की ओर लगाया जा सकता है, इस बात पर परदा सा डाल दिया गया था। इससे हृदय रहते भी भक्ति का सच्चा स्वाभाविक मार्ग लोग नहीं देख पाते थे। यह पहले कहा जा चुका है कि नाथपंथ का हठयोग मार्ग हृदयपक्ष शून्य है। रागात्मिका वृत्ति से उसका कोई लगाव नहीं। अतः रमते जोगियों की रहस्यभरी बानियाँ सुनते सुनते जनता के हृदय में भक्ति की सच्ची भावना दब गई थी, उठने ही नहीं पाती थी। लोक की इसी दशा को लक्ष्य करके गोस्वामी जी को कहना पड़ा था किए–

गोरख जगायो जोग, भगति भगायो लोग।

गोस्वामी जी की भक्तिपद्धति की सबसे बड़ी विशेषता है उसकी सर्वांगपूर्णता। जीवन के किसी पक्ष को सर्वथा छोड़कर वह नहीं चलती है। सब पक्षों के साथ उसका सामंजस्य है। न उनका कर्म या धर्म से विरोध है, न ज्ञान से। धर्म तो उसका नित्यलक्षण है। तुलसी की भक्ति को धर्म और ज्ञान दोनों की

रसानुभूति कह सकते हैं। योग का भी उसमें समन्वय है, पर उतने ही का जितना ध्यान के लिए, चित्त को एकाग्र करने के लिए आवश्यक है।

प्राचीन भारतीय भक्तिमार्ग के भीतर भी उन्होंने बहुत सी बढ़ती हुई बुराइयों को रोकने का प्रयत्न किया। शैवों और वैष्णवों के बीच बढ़ते हुए विद्वेष को उन्होंने अपनी सामंजस्य व्यवस्था द्वारा बहुत कुछ रोका जिसके कारण उत्तरी भारत में वह वैसा भयंकर रूप न धारण कर सका जैसा उसने दक्षिण में किया। यहीं तक नहीं, जिस प्रकार उन्होंने लोकधर्म और भक्तिसाधना को एक में सम्मिलित करके दिखाया उसी प्रकार कर्म, ज्ञान और उपासना के बीच भी सामंजस्य उपस्थित किया। 'मानस' के बालकांड में संत समाज का जो लंबा रूपक है वह इस बात को स्पष्ट रूप में सामने लाता है। भक्ति की चरम सीमा पर पहुँचकर भी लोकपक्ष उन्होंने नहीं छोड़ा। लोकसंग्रह का भाव उनकी भक्ति का एक अंग था। कृष्णोपासक भक्तों में इस अंग की कमी थी। उनके बीच उपास्य और उपासक के संबंध की ही गूढ़ातिगूढ़ व्यंजना हुई, दूसरे प्रकार के लोकव्यापक नाना संबंधों के कल्याणकारी सौंदर्य की प्रतिष्ठा नहीं हुई। यहीं कारण है कि इनकी भक्तिरसभरी वाणी जैसी मंगलकारिणी मानी गई वैसी और किसी की नहीं। आज राजा से रंक तक के घर में गोस्वामी जी का रामचरितमानस विराज रहा है और प्रत्येक प्रसंग पर इनकी चौपाइयाँ कहीं जाती हैं।

अपनी सगुणोपासना का निरूपण गोस्वामी जी ने कई ढंग से किया है। रामचरितमानस में नाम और रूप दोनों को ईश्वर की उपाधि कहकर वे उन्हें उसकी अभिव्यक्ति मानते हैं–

नाम रूप दुइ ईस उपाधी। अकथ अनादि सुसामुझि साधी
नाम रूप गति अकथ कहानी। समुझत सुखद न परति बखानी
अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी। उभय प्रबोधक चतुर दुभाखी

दोहावाली में भक्ति की सुगमता बड़े ही मार्मिक ढंग से गोस्वामी जी ने इस दोहे के द्वारा सूचित की है–

की तोहि लागहिं राम प्रिय, की तु रामप्रिय होहि।
दुई महँ रुचौ जो सुगम सोइ, कीबे तुलसी तोहि

इसी प्रकार रामचरितमानस के उत्तरकांड में उन्होंने ज्ञान की अपेक्षा भक्ति को कहीं अधिक सुसाध्य और आशुफलदायिनी कहा है।

रचनाकौशल, प्रबंधपटुता, सहृदयता इत्यादि सब गुणों का समाहार हमें रामचरितमानस में मिलता है। पहली बात जिस पर ध्यान जाता है, वह है कथाकाव्य के सब अवयवों का उचित समीकरण। कथाकाव्य या प्रबंधकाव्य के भीतर इतिवृत्त, वस्तु व्यापार वर्णन, भाव व्यंजना और संवाद, ये अवयव होते हैं। न तो अयोध्यापुरी की शोभा, बाललीला, नखशिख, जनक की वाटिका, अभिषेकोत्सव इत्यादि के वर्णन बहुत लंबे होने पाए हैं, न पात्रों के संवाद, न प्रेम, शोक आदि भावों की व्यंजना। इतिवृत्त कीश्रृंखला भी कहीं से टूटती नहीं है।

दूसरी बात है कथा के मार्मिक स्थलों की पहचान। अधिक विस्तार हमें ऐसे ही प्रसंगों का मिलता है, जो मनुष्य मात्र के हृदय को स्पर्श करने वाले हैं जैसे जनक की वाटिका में राम सीता का परस्पर दर्शन, राम वन गमन, दशरथ मरण, भरत की आत्मग्लानि, वन के मार्ग में स्त्री पुरुषों की सहानुभूति, युद्ध में लक्ष्मण को शक्ति लगना इत्यादि।

तीसरी बात है प्रसंगानुकूल भाषा। रसों के अनुकूल कोमल, कठोर पदों की योजना तो निर्दिष्ट रूढ़ि ही है। उसके अतिरिक्त गोस्वामी जी ने इस बात का भी ध्यान रखा है कि किस स्थल पर विद्वानों या शिक्षितों की संस्कृत मिश्रित भाषा रखनी चाहिए और किस स्थल पर ठेठ बोली। घरेलू प्रसंग समझकर कैकेयी और मंथरा के संवाद में उन्होंने ठेठ बोली और स्त्रियों में विशेष चलते प्रयोगों का व्यवहार किया है। अनुप्रास की ओर प्रवृत्ति तो सब रचनाओं में स्पष्ट लक्षित होती है।

चौथी बात हैश्रृंगार की शिष्ट मर्यादा के भीतर बहुत ही व्यंजक वर्णन।

जिस धूमधाम से 'मानस' की प्रस्तावना चली है उसे देखते ही ग्रंथ के महत्व का आभास मिल जाता है। उससे साफ झलकता है कि तुलसीदास जी अपने ही तक दृष्टि रखनेवाले भक्त न थे, संसार को भी दृष्टि फैलाकर देखने वाले भक्त थे। जिस व्यक्त जगत के बीच उन्हें भगवान के रामरूप की कला का दर्शन कराना था, पहले चारों ओर दृष्टि दौड़ाकर उसके अनेक रूपात्मक स्वरूप को उन्होंने सामने रखा है। फिर उसके भले बुरे पक्षों की विषमता देख दिखाकर अपने मन का यह कहकर समाधान किया है

सुधा सुरा सम साधु असाधू। जनक एक जगजलधि अगाधू

इसी प्रस्तावना के भीतर तुलसी ने अपनी उपासना के अनुकूल विशिष्टाद्वैत सिद्धांत का आभास भी यह कहकर दिया है –

सियाराममय सब जग जानी। करौं प्रनाम जोरि जुग पानी

जगत् को केवल राममय न कहकर उन्होंने 'सियाराममय' कहा है। सीता प्रकृतिस्वरूपा हैं और राम ब्रह्म हैं, प्रकृति अचित् पक्ष है और ब्रह्म चित् पक्ष। अतः परमार्थिक सत्ता चिदचिद्विशिष्ट है, यह स्पष्ट झलकता है। चित् और अचित् वस्तुतः एक ही हैं, इसका निर्देश उन्होंने –

गिरा अर्थ, जल बीचि सम कहियत भिन्न, नभिन्न।
बंदौ सीताराम पद जिनहि परम प्रिय खिन्न

कहकर किया है।

'रामचरितमानस' के भीतर कहीं-कहीं घटनाओं के थोड़े ही हेर फेर तथा स्वकल्पित संवादों के समावेशों के अतिरिक्त अपनी ओर से छोटी-मोटी घटनाओं या प्रसंगों की नई कल्पना तुलसीदास जी ने नहीं की है। 'मानस' में उनका ऐसा न करना तो उनके उद्देश्य के अनुसार बहुत ठीक है। राम के प्रामाणिक चरित द्वारा वे जीवन भर बना रहने वाला प्रभाव उत्पन्न करना चाहते थे, और काव्यों के समान केवल अल्प स्थायी रसानुभूति मात्र नहीं। 'ये प्रसंग तो केवल तुलसी द्वारा कल्पित हैं' यह धारणा उन प्रसंगों का कोई स्थायी प्रभाव श्रोताओं या पाठकों पर न जमने देती। पर गीतावली तो प्रबंध काव्य न थी। उसमें तो सूर के अनुकरण पर वस्तु व्यापार वर्णन का बहुत विस्तार है। उसके भीतर छोटे-छोटे नूतन प्रसंगों की उद्भावना का पूरा अवकाश था, फिर भी कल्पित घटनात्मक प्रसंग नहीं पाए जाते। इससे यहीं प्रतीत होता है कि उनकी प्रतिभा अधिकतर उपलब्ध प्रसंगों को लेकर चलने वाली थी, नए-नए प्रसंगों की उद्भावना करने वाली नहीं। उनकी कल्पना वस्तुस्थिति को ज्यों की त्यों लेकर उसके मार्मिक स्वरूपों के उद्घाटन में प्रवृत्त होती थी। गोपियों को छकाने वाली कृष्णलीला के अंतर्गत छोटी-मोटी कथा के रूप में कुछ दूर तक मनोरंजक और कुतूहलप्रद ढंग से चलने वाले नाना प्रसंगों की जो नवीन उद्भावना सूरसागर में पाई जाती है वह तुलसी के किसी ग्रंथ में नहीं मिलती।

'रामचरितमानस' में तुलसी केवल कवि रूप में ही नहीं, उपदेशक के रूप में भी सामने आते हैं। उपदेश उन्होंने किसी न किसी पात्र के मुख से कराए हैं, इससे काव्यदृष्टि से यह कहा जा सकता है कि वे उपदेश पात्र के स्वभावचित्रण के साधनरूप हैं। पर बात यह नहीं है। वे उपदेश उपदेश के लिए ही हैं।

गोस्वामी जी के रचे बारह ग्रंथ प्रसिद्ध हैं जिनमें पाँच बड़े और सात छोटे हैं। दोहावली, कवित्तरामायण, गीतावली, रामचरितमानस, विनयपत्रिका बड़े ग्रंथ

हैं तथा रामललानहछू, पार्वतीमंगल, जानकीमंगल, बरवैरामायण, वैराग्यसंदीपनी, कृष्णगीतावली और रामाज्ञाप्रश्नावली छोटे। पं. रामगुलाम द्विवेदी ने, जो एक प्रसिद्ध भक्त और रामायणी हो गए हैं, इन्हीं बारह ग्रंथों को गोस्वामी जी कृत माना है। पर शिवसिंहसरोज में दस और ग्रंथों के नाम गिनाए गए हैं, यथा रामसतसई, संकटमोचन, हनुमद्बाहुक, रामसलाका, छंदावली, छप्पय रामायण, कड़खा रामायण, रोला रामायण, झूलना रामायण और कुंडलिया रामायण। इनमें से कई एक तो मिलते ही नहीं। हनुमद्बाहुक को पं. रामगुलाम जी ने कवितावली के ही अंतर्गत लिया है। रामसतसई में सात सौ से कुछ अधिक दोहे हैं जिनमें से डेढ़ सौ के लगभग दोहावली के ही हैं। अधिकांश दोहे उसमें कुतूहलवर्धक, चातुर्य लिए हुए और क्लिष्ट हैं। यद्यपि दोहावली में भी कुछ दोहे इस ढंग के हैं, पर गोस्वामी जी ऐसे गंभीर, सहृदय और कलामर्मज्ञ महापुरुष के ऐसे पद्यों का इतना बड़ा ढेर लगाना समझ में नहीं आता। जो हो, बाबा बेनीमाधवदास के नाम पर प्रणीत चरित में भी रामसतसई का उल्लेख हुआ है।

कुछ ग्रंथों के निर्माण के संबंध में जो जनश्रुतियाँ प्रसिद्ध हैं, उनका उल्लेख भी यहाँ आवश्यक है। कहते हैं कि बरवै रामायण गोस्वामी जी ने अपने स्नेही मित्र अब्दुर्रहीम खानखाना के कहने पर उनके बरवा (बरवै नायिकाभेद) को देखकर बनाया था। कृष्णगीतावली वृंदावन की यात्रा के अवसर पर बनी कहीं जाती है। पर बाबा बेनीमाधवदास के 'गोसाईंचरित' के अनुसार रामगीतावली और कृष्णगीतावली दोनों ग्रंथ चित्रकूट में उस समय के कुछ पीछे लिखे गए जब सूरदास जी उनसे मिलने वहाँ गए थे। गोस्वामी जी के एक मित्र पं. गंगाराम ज्योतिषी काशी में प्रहलाद घाट पर रहते थे। रामाज्ञाप्रश्न उन्हीं के अनुरोध से बना माना जाता है। हनुमानबाहुक से तो प्रत्यक्ष है कि वह बाहुओं में असह्य पीड़ा उठने के समय रचा गया था। विनयपत्रिका के बनने का कारण यह कहा जाता है कि जब गोस्वामी जी ने काशी में रामभक्ति की गहरी धूम मचाई तब एक दिन कलिकाल तुलसीदास जी को प्रत्यक्ष आकर धमकाने लगा और उन्होंने राम के दरबार में रखने के लिए वह पत्रिका या अर्जी लिखी।

गोस्वामी जी की सर्वांगपूर्ण काव्यकुशलता का परिचय आरंभ में ही दिया जा चुका है। उनकी साहित्यमर्मज्ञता, भावुकता और गंभीरता के संबंध में इतना और जान लेना भी आवश्यक है कि उन्होंने रचनानैपुण्य का भद्दा प्रदर्शन कहीं नहीं किया है और न शब्द चमत्कार आदि के खेलवाड़ों में वे फँसे हैं। अलंकारों की योजना उन्होंने ऐसे मार्मिक ढंग से की है कि वे सर्वत्र भावों या तथ्यों की

व्यंजना को प्रस्फुटित करते हुए पाए जाते हैं, अपनी अलग चमक-दमक दिखाते हुए नहीं। कहीं-कहीं लंबे लंबे सांग रूपक बाँधने में अवश्य उन्होंने एक भद्दी परंपरा का अनुसरण किया है। दोहावली के कुछ दोहों के अतिरिक्त और सर्वत्र भाषा का प्रयोग उन्होंने भावों और विचारों को स्पष्ट रूप में रखने के लिए किया है। कारीगरी दिखाने के लिए नहीं। उनकी सी भाषा की सफाई और किसी कवि में नहीं। सूरदास में ऐसे वाक्य मिलते हैं, जो विचारधारा आगे बढ़ाने में कुछ भी योग देते नहीं पाए जाते, केवल पादप्रत्यर्थ ही लाए हुए जान पड़ते हैं। इसी प्रकार तुकांत के लिए शब्द भी तोड़े मरोड़े गए हैं। पर गोस्वामी जी की काव्यरचना अत्यंत प्रौढ़ और सुव्यवस्थित है, एक भी शब्द फालतू नहीं। खेद है कि भाषा की यह सफाई पीछे होनेवाले बहुत कम कवियों में रह गई। सब रसों की सम्यक् व्यंजना उन्होंने की है, पर मर्यादा का उल्लंघन कहीं नहीं किया है। प्रेम औरशृंगार का ऐसा वर्णन जो बिना किसी लज्जा और संकोच के सबके सामने पढ़ा जा सके, गोस्वामी जी का ही है। हम निस्संकोच कह सकते हैं कि यह एक कवि ही हिन्दी को प्रौढ़ साहित्यिक भाषा सिद्ध करने के लिए काफी है।

2.स्वामी अग्रदास रामानंद जी के शिष्य अनंतानंद और अनंतानंद के शिष्य कृष्णदास पयहारी थे। कृष्णदास पयहारी के शिष्य अग्रदासजी थे। इन्हीं अग्रदासजी के शिष्य भक्तमाल के रचयिता प्रसिद्ध नाभादासजी थे। गलता (राजपूताना) की प्रसिद्ध गद्दी का उल्लेख पहले हो चुका है।6 वहीं ये भी रहा करते थे और संवत् 1632 के लगभग वर्तमान थे। इनकी बनाई चार पुस्तकों का पता है–

1. हितोपदेश उपखाणा बावनी
2. ध्यानमंजरी
3. रामध्यानमंजरी
4. कुंडलिया।

इनकी कविता उसी ढंग की है जिस ढंग की कृष्णोपासक नंददास जी की। उदाहरण के लिए यह पद्य देखिए–

कुंडल ललित कपोल जुगल अस परम सुदेसा।
तिनको निरखि प्रकास लजत राकेस दिनेसा।
मेचक कुटिल विसाल सरोरुह नैन सुहाए।
मुख पंकज के निकट मनो अलि छौना आए

इनका एक पद भी देखिए

पहरे राम तुम्हारे सोवत। मैं मतिमंद अंधा नहिं जोवत
अपमारग मारग महि जान्यो। इंद्री पोषि पुरुषारथ मान्यो
औरनि के बल अनतप्रकार। अगरदास के राम अधार

3. नाभादास जी ये उपर्युक्त अग्रदास जी के शिष्य, बड़े भक्त और साधुसेवी थे। संवत् 1657 के लगभग वर्तमान थे और गोस्वामी तुलसीदास जी की मृत्यु के बहुत पीछे तक जीवित रहे। इनका प्रसिद्ध ग्रंथ भक्तमाल संवत् 1642 के पीछे बना और संवत् 1769 में प्रियादास जी ने उसकी टीका लिखी। इस ग्रंथ में 200 भक्तों के चमत्कारपूर्ण चरित्र 316 छप्पयों में लिखे गए हैं। इन चरित्रों में पूर्ण जीवनवृत्त नहीं है, केवल भक्ति की महिमासूचक बातें दी गई हैं। इनका उद्देश्य भक्तों के प्रति जनता में पूज्यबुद्धि का प्रचार जान पड़ता है। यह उद्देश्य बहुत अंशों में सिद्ध भी हुआ। आज उत्तरी भारत के गाँव-गाँव में साधुवेषधारी पुरुषों को शास्त्रज्ञ विद्वानों और पंडितों से कहीं बढ़कर जो सम्मान और पूजा प्राप्त है, वह बहुत कुछ भक्तों की करामातों और चमत्कारपूर्ण वृत्तांतों के सम्यक् प्रचार से।

नाभा जी को कुछ लोग डोम बताते हैं, कुछ क्षत्रिय। ऐसा प्रसिद्ध है कि वे एक बार गोस्वामी तुलसीदास जी से मिलने काशी गए। पर उस समय गोस्वामी जी ध्यान में थे, इससे न मिल सके। नाभा जी उसी दिन वृंदावन चले गए। ध्यान भंग होने पर गोस्वामी जी को बड़ा खेद हुआ और वे तुरंत नाभा जी से मिलने वृंदावन चल दिए। नाभा जी के यहाँ वैष्णवों का भंडारा था जिसमें गोस्वामी जी बिना बुलाए जा पहुँचे। गोस्वामी जी यह समझकर कि नाभा जी ने मुझे अभिमानी न समझा हो, सबसे दूर एक किनारे बुरी जगह बैठ गए। नाभा जी ने जान बूझकर उनकी ओर ध्यान न दिया। परसने के समय कोई पात्र न मिलता था जिसमें गोस्वामी जी को खीर दी जाती। यह देखकर गोस्वामी जी एक साधु का जूता उठा लाए और बोले, 'इससे सुंदर पात्र मेरे लिए और क्या होगा?' इस पर नाभा जी ने उठकर उन्हें गले लगा लिया और गद्गद हो गए। ऐसा कहा जाता है कि तुलसी संबंधी अपने प्रसिद्ध छप्पय के अंत में पहले नाभा जी ने कुछ चिढ़कर यह चरण रखा था 'कलि कुटिल जीव तुलसी भए, वाल्मीकि अवतार धारि।' यह वृत्तांत कहाँ तक ठीक है, नहीं कहा जा सकता, क्योंकि गोस्वामी जी खानपान का विचार रखने वाले स्मार्त वैष्णव थे। तुलसीदास जी के संबंध में नाभा जी का प्रसिद्ध छप्पय यह है–

त्रोता काव्य निबंध करी सत कोटि रमायन।
इक अच्छर उच्चरे ब्रह्महत्यादि परायन
अब भक्तन सुख दैन बहुरि लीला बिस्तारी।
रामचरनरसमत्ता रहत अहनिसि व्रतधारी
संसार अपार के पार को सुगम रूप नौका लियो।
कलि कुटिल जीव निस्तारहित वाल्मीकि तुलसी भयो

अपने गुरू अग्रदास के समान इन्होंने भी रामभक्ति संबंधी कविता की है। ब्रजभाषा पर इनका अच्छा अधिकार था और पद्य रचना में अच्छी निपुणता थी। रामचरित संबंधी इनके पदों का एक छोटा सा संग्रह अभी थोड़े दिन हुए प्राप्त हुआ है।

इन पुस्तकों के अतिरिक्त इन्होंने दो 'अष्टयाम' भी बनाए एक ब्रजभाषा गद्य में, दूसरा रामचरितमानस की शैली पर दोहा चौपाइयों में। दोनों के उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

गद्य

तब श्री महाराजकुमार प्रथम श्री वशिष्ठ महाराज के चरन छुइ प्रनाम करत भए। फिरि अपर वृद्ध समाज तिनको प्रनाम करत भए। फिरि श्री राजाधिराज जू को जोहार करिके श्री महेंद्रनाथ दशरथ जू के निकट बैठत भए।

पद्य

अवधपुरी की शोभा जैसी। कहि नहिं सकहिं शेष श्रुति तैसी
रचित कोट कलधौत सुहावन। बिबिधा रंग मति अति मन भावन
चहुँ दिसि विपिन प्रमोदअनूपा। चतुरवीस जोजन रस रूपा
सुदिसि नगर सरजूसरिपावनि। मनिमय तीरथ परम सुहावनि
बिगसे जलज भृंग रस भूले। गुंजत जल समूह दोउ कूले
परिखा प्रति चहुँदिसि लसति, कंचन कोट प्रकास।
बिबिधा भाँति नग जगमगत, प्रति गोपुर पुर पास

4. प्राणचंद चौहान के संस्कृत में रामचरित संबंधी कई नाटक हैं जिनमें कुछ तो नाटक के साहित्यिक नियमानुसार हैं और कुछ केवल संवाद रूप में होने के कारण नाटक कहे गए हैं। इसी पिछली पद्धति पर संवत् 1667 में इन्होंने रामायण महानाटक लिखा। रचना का ढंग नीचे उद्धृत अंश से ज्ञात हो सकता है

कातिक मास पच्छ उजियारा। तीरथ पुन्य सोम कर वारा

ता दिन कथा कीन्ह अनुमाना। शाह सलेम दिलीपति थाना
संवत् सोरह सै सत साठा। पुन्य प्रगास पाय भय नाठा
जो सारद माता कर दाया। बरनौं आदि पुरुष की माया
जेहि माया कह मुनि जग भूला। ब्रह्मा रहे कमल के फूला
निकसि न सक माया कर बाँधा। देषहु कमलनाल के राँधा
आदिपुरुष बरनौं केहिभाँती। चाँद सुरज तहँ दिवस न राती
निरगुन रूप करै सिव धयाना। चार बेद गुन जेरि बखाना
तीनों गुन जानै संसारा। सिरजै पालै भंजनहारा
श्रवन बिना सो अस बहुगुना। मन में होइ सु पहले सुना
देषै सब पै आहि न आँषी। अंधकार चोरी के साषी
तेहि कर दहुँ को करै बषाना। जिहि कर मर्म बेद नहिं जाना
माया सींव भो कोउ न पारा। शंकर पँवरि बीच होइ हारा

5. हृदयराम ये पंजाब के रहनेवाले और कृष्णदास के पुत्र थे। इन्होंने संवत् 1680 में संस्कृत के हनुमन्नाटक के आधार पर भाषा हनुमन्नाटक लिखा जिसकी कविता बड़ी सुंदर और परिमार्जित है। इसमें अधिकतर कवित्त और सवैयों में बड़े अच्छे संवाद हैं। पहले कहा जा चुका है कि गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपने समय की सारी प्रचलित काव्य पद्धतियों पर रामचरित का गान किया। केवल रूपक या नाटक के ढंग पर उन्होंने कोई रचना नहीं की। गोस्वामी जी के समय से ही उनकी ख्याति के साथ-साथ रामभक्ति की तरंगें भी देश के भिन्न-भिन्न भागों में उठ चली थीं। अतः उस काल के भीतर ही नाटक के रूप में कई रचनाएँ हुई जिनमें सबसे अधिक प्रसिद्ध हृदयराम का हनुमन्नाटक हुआ।

नीचे कुछ उदाहरण दिए जाते हैं –

देखन जौ पाऊँ तौ पठाऊँ जमलोक, हाथ
दूजो न लगाऊँ, वार करौं एक करको।
मीजि मारौं उर ते उखारि भुजदंड, हाड़,
तोरि डारौं बर अवलोकि रघुबर को
कासों राग द्विज को, रिसात भहरात राम,
अति थहरात गात लागत है धार को।
सीता को संताप मेटि प्रगट प्रताप कीनों,
को है वह आप चाप तोरयो जिन हर को
जानकी को मुख न बिलोक्यों ताते कुंडल,

न जानत हौं, वीर पायँ छुवै रघुराई के।
हाथ जो निहारे नैन फूटियो हमारे,
ताते कंकन न देखे, बोल कह्यो सतभाइ के
पाँयन के परिबे कौ जाते दास लछमन
यातें पहिचानत है भूषन जे पायँ के।
बिछुआ है एई, अरु झाँझर हैं एई जुग
नूपुर हैं, तेई राम जानत जराइ के
सातों सिंधु, सातों लोक, सातों रिषि हैं ससोक,
सातों रबि घोरे, थोरे देखे न डरात मैं।
सातों दीप, सातों ईति काँप्यई करत और
सातों मत रात दिन प्रान हैं न गात मैं
सातों चिरजीव बरराइ उठैं बार बार,
सातों सुर हाय हाय होत दिन रात मैं।
सातहूँ पताल काल सबद कराल, राम
भेदे सात ताल, चाल परी सात सात मैं
एहो हनू! कह्यौ श्री रघुबीर कछू सुधि है सिय की छिति माँही?
है प्रभु लंक कलंक बिना सुबसै तहँ रावन बाग की छाँहीं
जीवति है? कहिबेई को नाथ, सु क्यों न मरी हमतें बिछुराहीं।
प्रान बसै पद पंकज में जम आवत है पर पावत नाहीं

रामभक्ति का एक अंग आदि रामभक्त हनुमान जी की उपासना भी हुई। स्वामी रामानंद जी कृत हनुमान जी की स्तुति का उल्लेख हो चुका है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने हनुमान की वंदना बहुत स्थलों पर की है। 'हनुमानबाहुक' तो केवल हनुमान जी को ही संबोधन करके लिखा गया है। भक्ति के लिए किसी पहुँचे हुए भक्त का प्रसाद भी भक्तिमार्ग में अपेक्षित होता है। संवत् 1696 में रायमल्ल पांडे ने 'हनुमच्चरित्र' लिखा था। गोस्वामी जी के पीछे भी कई लोगों ने रामायणें लिखीं, पर वे गोस्वामी जी की रचनाओं के सामने प्रसिद्धि न प्राप्त कर सकीं। ऐसा जान पड़ता है कि गोस्वामी जी की प्रतिभा का प्रखर प्रकाश डेढ़ सौ वर्ष तक ऐसा छाया रहा कि रामभक्ति की और रचनाएँ उसके सामने ठहर न सकीं। विक्रम की 19वीं और 20वीं शताब्दी में अयोध्या के महंत बाबा रामचरणदास, बाबा रघुनाथदास, रीवाँ के महाराज रघुराज सिंह आदि ने रामचरित

संबंधी विस्तृत रचनाएँ कीं जो सर्वप्रिय हुईं। इस काल में रामभक्ति विषयक कविता बहुत कुछ हुई।

रामभक्ति की काव्यधारा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें सब प्रकार की रचनाएँ हुईं, उसके द्वारा कई प्रकार की रचना पद्धतियों को उत्तेजना मिली। कृष्णोपासी कवियों ने मुक्तक के एक विशेष अंग गीतकाव्य की ही पूर्ति की, पर रामचरित को लेकर अच्छे अच्छे प्रबंधकाव्य रचे गए।

तुलसीदास जी के प्रसंग में यह दिखाया जा चुका है कि रामभक्ति में भक्ति का पूर्ण स्वरूप विकसित हुआ है। प्रेम और श्रद्धा अर्थात् पूज्य बुद्धि दोनों के मेल से भक्ति की निष्पत्ति होती है। श्रद्धा धर्म की अनुगामिनी है। जहाँ धर्म का स्फुरण दिखाई पड़ता है वहीं श्रद्धा टिकती है। धर्म ब्रह्म के सत्स्वरूप की व्यक्त प्रवृत्ति है, उस स्वरूप की क्रियात्मक अभिव्यक्ति है, जिसका आभास अखिल विश्व की स्थिति में मिलता है। पूर्ण भक्त व्यक्त जगत् के बीच सत् की इस सर्वशक्तिमयी प्रवृत्ति के उदय का, धर्म की इस मंगलमयी ज्योति के स्फुरण का साक्षात्कार चाहता रहता है। इसी ज्योति के प्रकाश में सत् के अनंत रूप सौंदर्य की भी मनोहर झाँकी उसे मिलती है। लोक में जब कभी वह धर्म के स्वरूप को तिरोहित या आच्छादित देखता है तब मानो भगवान उसकी दृष्टि से उसकी खुली हुई आँखों के सामने से ओझल हो जाते हैं और वह वियोग की आकुलता का अनुभव करता है। फिर जब अधर्म का अंधकार फाड़कर धर्मज्योति अमोघ शक्ति के साथ-साथ फूट पड़ती है तब मानो उसके प्रिय भगवान का मनोहर रूप सामने आ जाता और वह पुलकित हो उठता है। भीतर का 'चित्त' जब बाहर 'सत्' का साक्षात्कार कर पाता है तब 'आनंद' का आविर्भाव होता है और 'सदानंद' की अनुभूति होती है।

यह है उस सगुण भक्तिमार्ग का पक्ष जो भगवान के अवतार को लेकर चलता है और जिसका पूर्ण विकास तुलसी की रामभक्ति में पाया जाता है। 'विनयपत्रिका' में गोस्वामी जी ने लोक में फैले अधर्म, अनाचार, अत्याचार आदि का भीषण चित्र खींचकर भगवान से अपना सत् स्वरूप, धर्म संस्थापक स्वरूप व्यक्त करने की प्रार्थना की है। उन्हें दृढ़ विश्वास है कि धर्मस्वरूप भगवान की कला का कभी न कभी दर्शन होगा। अत: वे यह भावना करके पुलकित हो जाते हैं कि सत्स्वरूप का लोकव्यक्त प्रकाश हो गया, रामराज्य प्रतिष्ठित हो गया और चारों ओर फिर मंगल छा गया–

रामराज भयो काज सगुन सुभ, राजा राम जगत विजई है
समरथ बड़ो सुजान सुसाहब, सुकृत सेन हारत जितई है

जो भक्तिमार्ग श्रद्धा के अवयव को छोड़कर केवल प्रेम को ही लेकर चलेगा, धर्म से उसका लगाव न रह जायगा। वह एक प्रकार से अधूरा रहेगा। श्रृंगारोपासना, माधुर्य भाव आदि की ओर उसका झुकाव होता जायगा और धीरे धीरे उसमें 'गुह्य, रहस्य' आदि का भी समावेश होगा। परिणाम यह होगा कि भक्ति के बहाने विलासिता और इंद्रियासक्ति की स्थापना होगी। कृष्णभक्ति शाखा कृष्ण भगवान के धर्मस्वरूप को लोकरक्षक और लोकरंजक स्वरूप को छोड़कर केवल मधुर स्वरूप और प्रेमलक्षणा भक्ति की सामग्री लेकर चली। इससे धर्म सौंदर्य के आकर्षण से वह दूर पड़ गई। तुलसीदास जी ने भक्ति को अपने पूर्ण रूप में, श्रद्धा प्रेम समन्वित रूप में, सबके सामने रखा और धर्म या सदाचार को उसका नित्यलक्षण निर्धारित किया।

अत्यंत खेद की बात है कि इधर कुछ दिनों से एक दल इस रामभक्ति को भी श्रृंगारी भावनाओं में लपेटकर विकृत करने में जुट गया है। तुलसीदास जी के प्रसंग में हम दिखा आए हैं कि कृष्णभक्त सूरदास जी की श्रृंगारी रचना का कुछ अनुकरण गोस्वामी जी की 'गीतावली' के उत्तरकांड में दिखाई पड़ता है पर वह केवल आनंदोत्सव तक रह गया है। इधर आकर कृष्णभक्ति शाखा का प्रभाव बहुत बढ़ा। विषयवासना की ओर मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति के कारण कुछ दिनों से रामभक्ति मार्ग के भीतर भी श्रृंगारी भावना का अनर्गल प्रवेश हो रहा है। इस श्रृंगारी भावना के प्रवर्तक थे रामचरितमानस के प्रसिद्ध टीकाकार जानकीघाट (अयोध्या) के रामचरणदास जी, जिन्होंने पति पत्नी भाव की उपासना चलाई। इन्होंने अपनी शाखा का नाम 'स्वसुखी शाखा' रखा। स्त्रीवेष धारण करके पति शाल साहब' (यह खिताब राम को दिया गया है) से मिलने के लिए सोलह श्रृंगार करना, सीता की भावना सपत्नी रूप में करना आदि इस शाखा के लक्षण हुए। रामचरणदास जी ने अपने मत की पुष्टि के लिए अनेक नवीन कल्पित ग्रंथ प्राचीन बताकर अपनी शाखा में फैलाए, जैसे लोमशसंहिता, हनुमत्संहिता, अमर रामायण, भुशुंडि रामायण, महारामायण (5 अध्याय), कोशलखंड, रामनवरत्न, महारासोत्सव सटीक (संवत् 1904 में प्रिंटिंग प्रेस, लखनऊ में छपा)।

'कोशलखंड' में राम की रासलीला, विहार आदि के अश्लील वृत्त कल्पित किए गए हैं और कहा गया है कि रासलीला तो वास्तव में राम ने की

थी। रामावतार में 99 रास वे कर चुके थे। एक ही शेष था जिसके लिए उन्हें फिर कृष्ण रूप में अवतार लेना पड़ा। इस प्रकार विलास क्रीड़ा में कृष्ण से कहीं अधिक राम को बढ़ाने की होड़ लगाई गई। गोलोक में जो नित्य रासलीला होती रहती है उससे कहीं बढ़कर साकेत में हुआ करती है। वहाँ की नर्तकियों की नामावली में रंभा, उर्वशी आदि के साथ-साथ राधा और चंद्रावली भी गिना दी गई हैं।

रामचरणदास की इस श्रृंगारी उपासना में चिरान छपरा के जीवाराम जी ने थोड़ा हेरफेर किया। उन्होंने पति पत्नी भावना के स्थान पर 'सखीभाव' रखा और अपनी शाखा का नाम 'तत्सुखी' शाखा रखा। इसी 'सखीभाव' की उपासना का खूब प्रचार लक्ष्मण किला (अयोध्या) वाले युगलानन्यशरण ने किया। रीवाँ के महाराज रघुराजसिंह इन्हें बहुत मानते थे और इन्हीं की सम्मति से उन्होंने चित्रकूट में 'प्रमोदवन' आदि कई स्थान बनवाए। चित्रकूट की भावना वृंदावन के रूप में की गई और वहाँ के कुंज भी ब्रज के से क्रीड़ाकुंज माने गए। इस रसिक पंथ का आजकल अयोध्या में बहुत जोर है और वहाँ के बहुत से मंदिरों में अब राम की 'तिरछी चितवन' और 'बाँकी अदा' के गीत गाए जाने लगे हैं। इस पंथ के लोगों का उत्सव प्रति वर्ष चैत्र कृष्ण नवमी को वहाँ होता है। ये लोग सीताराम को 'युगलसरकार' कहा करते हैं और अपना आचार्य 'कृपानिवास' नामक एक कल्पित व्यक्ति को बतलाते हैं जिसके नाम पर एक 'कृपानिवास पदावली' संवत् 1901 में छपी (प्रिंटिंग प्रेस लखनऊ)। इसमें अनेक अश्लील पद हैं, जैसे

1. नीबी करषत बरजति प्यारी।
   रसलंपट संपुट कर जोरत, पद परसत पुनि लै बलिहारी (पृ. 138)
2. पिय हँसि रस रस कंचुकि खोलैं।
   चमकि निवारति पानि लाड़िली, मुरक मुरक मुख बोलैं।

ऐसी ही एक और पुस्तक 'श्रीरामावतार भजन तरंगिणी' इन लोगों की ओर से निकली है, जिसका एक भजन देखिए

हमरे पिय ठाढ़े सरजू तीर।
छोड़ि लाज मैं जाय मिली जहँ खड़े लखन के वीर
मृदु मुसकाय पकरि कर मेरो खैंचि लियो तब चीर
झाऊ वृक्ष की झाड़ी भीतर करन लगे रति धीर

भगवान राम के दिव्य पुनीत चरित्र के कितने घोर पतन की कल्पना इन लोगों के द्वारा हुई है। यह दिखाने के लिए इतना बहुत है। लोकपावन आदर्श का

ऐसा ही बीभत्स विपर्यय देखकर चित्त क्षुब्ध हो जाता है। रामभक्ति शाखा के साहित्य का अनुसंधान करने वालों को सावधान करने के लिए ही इस 'रसिक शाखा' का यह थोड़ा सा विवरण दे दिया गया है। 'गुह्य', 'रहस्य', 'माधुर्य भाव' इत्यादि के समावेश से किसी भक्तिमार्ग की यहीं दशा होती है। गोस्वामी जी ने शुद्ध, सात्विक और खुले रूप में जिस रामभक्ति का प्रकाश फैलाया था, वह इस प्रकार विकृत की जा रही है।

3

भक्ति काल

भक्ति काल क्या है में भक्ति काल अपना एक अहम और महत्वपूर्ण स्थान रखता है। आदिकाल के बाद आये इस युग को पूर्व मध्यकाल भी कहा जाता है। जिसकी समयावधि संवत् 1343ई से संवत् 1643ई तक की मानी जाती है। यह हिंदी साहित्य (साहित्यिक दो प्रकार के हैं-धार्मिक साहित्य और लौकिक साहित्य) का श्रेष्ठ युग है। जिसको जॉर्ज ग्रियर्सन ने स्वर्णकाल, 'यामसुन्दर दास ने स्वर्णयुग, आचार्य राम चंद्र शुक्ल ने भक्ति काल एवं हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लोक जागरण कहा। सम्पूर्ण साहित्य के श्रेष्ठ कवि और उत्तम रचनाएं इसी युग में प्राप्त होती हैं।

दक्षिण में आलवार बंधु नाम से कई प्रख्यात भक्त हुए हैं। इनमें से कई तथाकथित नीची जातियों के भी थे। वे बहुत पढे-लिखे नहीं थे, परंतु अनुभवी थे। आलवारों के पश्चात दक्षिण में आचार्यों की एक परंपरा चली जिसमें रामानुजाचार्य प्रमुख थे।

रामानुजाचार्य की परंपरा में रामानंद हुए। उनका व्यक्तित्त्व असाधारण था। वे उस समय के सबसे बड़े आचार्य थे। उन्होंने भक्ति के क्षेत्र में ऊंच-नीच का भेद तोड़ दिया। सभी जातियों के अधिकारी व्यक्तियों को आपने शिष्य बनाया। उस समय का सूत्र हो गया–

जाति-पांति पूछे नहिं कोई।
हरि को भजै सो हरि का होई।।

रामानंद ने विष्णु के अवतार राम की उपासना पर बल दिया। रामानंद ने और उनकी शिष्य-मंडली ने दक्षिण की भक्तिगंगा का उत्तर में प्रवाह किया। समस्त उत्तर-भारत इस पुण्य-प्रवाह में बहने लगा। भारत भर में उस समय पहुंचे हुए संत और महात्मा भक्तों का आविर्भाव हुआ।

महाप्रभु वल्लभाचार्य ने पुष्टि-मार्ग की स्थापना की और विष्णु के कृष्णावतार की उपासना करने का प्रचार किया। उनके द्वारा जिस लीला-गान का उपदेश हुआ उसने देशभर को प्रभावित किया। अष्टछाप के सुप्रसिद्ध कवियों ने उनके उपदेशों को मधुर कविता में प्रतिबिंबित किया।

इसके उपरांत माध्व तथा निंबार्क संप्रदायों का भी जन-समाज पर प्रभाव पड़ा है। साधना-क्षेत्र में दो अन्य संप्रदाय भी उस समय विद्यमान थे। नाथों के योग-मार्ग से प्रभावित संत संप्रदाय चला जिसमें प्रमुख व्यक्तित्त्व संत कबीरदास का है। मुसलमान कवियों का सूफीवाद हिंदुओं के विशिष्टाद्वैतवाद से बहुत भिन्न नहीं है। कुछ भावुक मुसलमान कवियों द्वारा सूफीवाद से रंगी हुई उत्तम रचनाएं लिखी गई।

संक्षेप में भक्ति-युग की चार प्रमुख काव्य-धाराएं मिलती हैं–

सगुण भक्ति

रामाश्रयी शाखा

कृष्णाश्रयी शाखा

निर्गुण भक्ति

ज्ञानाश्रयी शाखा

प्रेमाश्रयी शाखा

भक्ति काल

हिंदी साहित्य का भक्तिकाल1375 वि0 से 1700 वि0 तक माना जाता है। यह युग भक्तिकाल के नाम से प्रख्यात है। यह हिंदी साहित्य का श्रेष्ठ युग है। समस्त हिंदी साहित्य के श्रेष्ठ कवि और उत्तम रचनाएं इस युग में प्राप्त होती हैं।

रामानुजाचार्य की परंपरा में रामानंद हुए। उनका व्यक्तित्त्व असाधारण था। वे उस समय के सबसे बड़े आचार्य थे। उन्होंने भक्ति के क्षेत्र में ऊंच-नीच का भेद तोड़ दिया। सभी जातियों के अधिकारी व्यक्तियों को आपने शिष्य बनाया। उस समय का सूत्र हो गया, जाति-पांतिपूछेनहिंकोई। हरि को भजै सो हरि का होई।।

<nowiki>इसके उपरांत माध्व तथा निंबार्क संप्रदायों का भी जन-समाज पर प्रभाव पड़ा है। साधना-क्षेत्र में दो अन्य संप्रदाय भी उस समय विद्यमान थे। नाथों के योग-मार्ग से प्रभावित संत संप्रदाय चला जिसमें प्रमुख व्यक्तित्त्व संत कबीरदास का है। मुसलमान कवियों का सूफीवाद हिंदुओं के विशिष्टाद्वैतवाद से बहुत भिन्न नहीं है। कुछ भावुक मुसलमान कवियों द्वारा सूफीवाद से रंगी हुई उत्तम रचनाएं लिखी गईं। संक्षेप में भक्ति-युग की चार प्रमुख काव्य-धाराएं मिलती हैं– ज्ञानाश्रयी शाखा, प्रेमाश्रयी शाखा, कृष्णाश्रयी शाखा और रामाश्रयी शाखा, प्रथम दोनों धाराएं निर्गुण मत के अंतर्गत आती हैं, शेष दोनों सगुण मत के अंतर्गत आती हैं।

संत कवि

निर्गुण ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रमुख संत कवियों का परिचय कबीर, कमाल, रैदास या रविदास, धर्मदास, गुरू नानक, दादूदयाल, सुंदरदास, रज्जब, मलूकदास, अक्षर अनन्य, जंभनाथ, सिंगा जी, हरिदास निरंजनी।

परिचय

तेरहवीं सदी तक धर्म के क्षेत्र में बड़ी अस्तव्यस्तता आ गई। जनता में सिद्धों और योगियों आदि द्वारा प्रचलित अंधविश्वास फैल रहे थे, शास्त्रज्ञान संपन्न वर्ग में भी रूढ़ियों और आडंबर की प्रधानता हो चली थी। मायावाद के प्रभाव से लोकविमुखता और निष्क्रियता के भाव समाज में पनपने लगे थे। ऐसे समय में भक्तिआंदोलन के रूप में ऐसा भारतव्यापी विशाल सांस्कृतिक आंदोलन उठा जिसने समाज में उत्कर्षविधायक सामाजिक और वैयक्तिक मूल्यों की प्रतिष्ठा की।

भक्ति आंदोलन का आरंभ दक्षिण के आलवार संतों द्वारा दसवीं सदी के लगभग हुआ। वहाँ शंकराचार्य के अद्वैतमत और मायावाद के विरोध में चार वैष्णव संप्रदाय खड़े हुए। इन चारों संप्रदायों ने उत्तर भारत में विष्णु के अवतारों का प्रचार-प्रसार किया। इनमें से एक के प्रवर्तक रामानुजाचार्य थे, जिनकी शिष्य परंपरा में आनेवाले रामानंद ने (पंद्रहवीं सदी) उत्तर भारत में रामभक्ति का प्रचार किया। रामानंद के राम ब्रह्म के स्थानापन्न थे जो राक्षसों का विनाश और अपनी लीला का विस्तार करने के लिए संसार में अवतीर्ण होते हैं। भक्ति के क्षेत्र में रामानंद ने ऊँच-नीच का भेदभाव मिटाने पर विशेष बल दिया। राम के सगुण

और निर्गुण दो रूपों को माननेवाले दो भक्तों–कबीर और तुलसी को इन्होंने प्रभावित किया। विष्णुस्वामी के शुद्धाद्वैत मत का आधार लेकर इसी समय बल्लभाचार्य ने अपना पुष्टिमार्ग चलाया। बारहवीं से सोलहवीं सदी तक पूरे देश में पुराणसम्मत कृष्णचरित् के आधार पर कई संप्रदाय प्रतिष्ठित हुए, जिनमें सबसे ज्यादा प्रभावशाली वल्लभ का पुष्टिमार्ग था। उन्होंने शांकर मत के विरुद्ध ब्रह्म के सगुण रूप को ही वास्तविक कहा। उनके मत से यह संसार मिथ्या या माया का प्रसार नहीं है बल्कि ब्रह्म का ही प्रसार है, अतः सत्य है। उन्होंने कृष्ण को ब्रह्म का अवतार माना और उसकी प्राप्ति के लिए भक्त का पूर्ण आत्मसमर्पण आवश्यक बतलाया। भगवान के अनुग्रह या पुष्टि के द्वारा ही भक्ति सुलभ हो सकती है। इस संप्रदाय में उपासना के लिए गोपीजनवल्लभ, लीलापुरुषोत्तम कृष्ण का मधुर रूप स्वीकृत हुआ। इस प्रकार उत्तर भारत में विष्णु के राम और कृष्ण अवतारों की प्रतिष्ठा हुई।

यद्यपि भक्ति का स्रोत दक्षिण से आया तथापि उत्तर भारत की नई परिस्थितियों में उसने एक नया रूप भी ग्रहण किया। मुसलमानों के इस देश में बस जाने पर एक ऐसे भक्तिमार्ग की आवश्यकता थी, जो हिंदू और मुसलमान दोनों को ग्राह्य हो। इसके अतिरिक्त निम्न वर्ग के लिए भी अधिक मान्य मत वहीं हो सकता था जो उन्हीं के वर्ग के पुरुष द्वारा प्रवर्तित हो। महाराष्ट्र के संत नामदेव ने 14वीं शताब्दी में इसी प्रकार के भक्तिमत का सामान्य जनता में प्रचार किया जिसमें भगवान के सगुण और निर्गुण दोनों रूप गृहीत थे। कबीर के संतमत के ये पूर्वपुरुष हैं। दूसरी ओर सूफी कवियों ने हिंदुओं की लोककथाओं का आधार लेकर ईश्वर के प्रेममय रूप का प्रचार किया।

इस प्रकार इन विभिन्न मतों का आधार लेकर हिंदी में निर्गुण और सगुण के नाम से भक्तिकाव्य की दो शाखाएँ साथ–साथ चलीं। निर्गुणमत के दो उपविभाग हुए–ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी। पहले के प्रतिनिधि कबीर और दूसरे के जायसी हैं। सगुणमत भी दो उपधाराओं में प्रवाहित हुआ–रामभक्ति और कृष्णभक्ति। पहले के प्रतिनिधि तुलसी हैं और दूसरे के सूरदास।

भक्तिकाव्य की इन विभिन्न प्रणलियों की अपनी अलग–अलग विशेषताएँ हैं पर कुछ आधारभूत बातों का सन्निवेश सब में है। प्रेम की सामान्य भूमिका सभी ने स्वीकार की। भक्तिभाव के स्तर पर मनुष्यमात्र की समानता सबको मान्य है। प्रेम और करुणा से युक्त अवतार की कल्पना तो सगुण भक्तों का आधार ही है पर निर्गुणोपासक कबीर भी अपने राम को प्रिय, पिता और स्वामी

आदि के रूप में स्मरण करते हैं। ज्ञान की तुलना में सभी भक्तों ने भक्तिभाव को गौरव दिया है। सभी भक्त कवियों ने लोकभाषा का माध्यम स्वीकार किया है।

ज्ञानश्रयी शाखा के प्रमुख कवि कबीर पर तात्कालिक विभिन्न धार्मिक प्रवृत्तियों और दार्शनिक मतों का सम्मिलित प्रभाव है। उनकी रचनाओं में धर्मसुधारक और समाजसुधारक का रूप विशेष प्रखर है। उन्होंने आचरण की शुद्धता पर बल दिया। बाह्याडंबर, रूढ़ियों और अंधविश्वासों पर उन्होंने तीव्र कशाघात किया। मनुष्य की क्षमता का उद्घोष कर उन्होंने निम्नश्रेणी की जनता में आत्मगौरव का भाव जगाया। इस शाखा के अन्य कवि रैदास, दादू हैं।

अपनी व्यक्तिगत धार्मिक अनुभूति और सामाजिक आलोचना द्वारा कबीर आदि संतों ने जनता को विचार के स्तर पर प्रभावित किया था। सूफी संतों ने अपने प्रेमाख्यानों द्वारा लोकमानस को भावना के स्तर पर प्रभावित करने का प्रयत्न किया। ज्ञानमार्गी संत कवियों की वाणी मुक्तकबद्ध है, प्रेममार्गी कवियों की प्रेमभावना लोकप्रचलित आख्यानों का आधार लेकर प्रबंधकाव्य के रूप में ख्यियित हुई है। सूफी ईश्वर को अनंत प्रेम और सौंदर्य का भंडार मानते हैं। उनके अनुसार ईश्वर को जीव प्रेम के मार्ग से ही उपलब्ध कर सकता है। साधना के मार्ग में आनेवाली बाधाओं को वह गुरू या पीर की सहायता से साहसपूर्वक पार करके अपने परमप्रिय का साक्षात्कार करता है। सूफियों ने चाहे अपने मत के प्रचार के लिए अपने कथाकाव्य की रचना की हो पर साहित्यिक दृष्टि से उनका मूल्य इसलिए है कि उसमें प्रेम और उससे प्रेरित अन्य संवेगों की व्यंजना सहजबोध्य लौकिक भूमि पर हुई है। उनके द्वारा व्यंजित प्रेम ईश्वरोन्मुख है पर सामान्यत: यह प्रेम लौकिक भूमि पर ही संक्रमण करता है। परमप्रिय के सौंदर्य, प्रेमक्रीड़ा और प्रेमी के विरहोद्वेग आदि का वर्णन उन्होंने इतनी तन्मयता से किया है और उनके काव्य का मानवीय आधार इतना पुष्ट है कि आध्यात्मिक प्रतीकों और रूपकों के बावजूद उनकी रचनाएँ प्रेमसमर्पित कथाकाव्य की श्रेष्ठ कृतियाँ बन गई हैं। उनके काव्य का पूरा वातावरण लोकजीवन का और गार्हस्थिक है। प्रेमाख्यानकों की शैली फारसी के मसनवी काव्य जैसी है।

इस धारा के सर्वप्रमुख कवि जायसी हैं जिनका 'पदमावत' अपनी मार्मिक प्रेमव्यंजना, कथारस और सहज कलाविन्यास के कारण विशेष प्रशंसित हुआ है। इनकी अन्य रचनाओं में 'अखरावट' और 'आखिरी कलाम' आदि हैं, जिनमें

सूफी संप्रदायसंगत बातें हैं1 इस धारा के अन्य कवि हैं कुतबन, मंझन, उसमान, शेख, नबी और नूरमुहम्मद आदि।

ज्ञानमार्गी शाखा के कवियों में विचार की प्रधानता है तो सूफियों की रचनाओं में प्रेम का एकांतिक रूप व्यक्त हुआ है। सगुण धारा के कवियों ने विचारात्मक शुष्कता और प्रेम की एकांगिता दूरकर जीवन के सहज उल्लासमय और व्यापक रूप की प्रतिष्ठा की। कृष्णभक्तिशाखा के कवियों ने आनंदस्वरूप लीलापुरुषोत्तम कृष्ण के मधुर रूप की प्रतिष्ठा कर जीवन के प्रति गहन राग को स्फूर्त किया। इन कवियों में सूरसागर के रचयिता महाकवि सूरदास श्रेष्ठतम हैं जिन्होंने कृष्ण के मधुर व्यक्तित्त्व का अनेक मार्मिक रूपों में साक्षात्कार किया। ये प्रेम और सौंदर्य के निसर्गसिद्ध गायक हैं। कृष्ण के बालरूप की जैसी विमोहक, सजीव और बहुविध कल्पना इन्होंने की है वह अपना सानी नहीं रखती। कृष्ण और गोपियों के स्वच्छंद प्रेमप्रसंगों द्वारा सूर ने मानवीय राग का बड़ा ही निश्छल और सहज रूप उद्‌घाटित किया है। यह प्रेम अपने सहज परिवेश में सहयोगी भाववृत्तियों से संपृक्त होकर विशेष अर्थवान हो गया है। कृष्ण के प्रति उनका संबंध मुख्यत: सख्यभाव का है। आराध्य के प्रति उनका सहज समर्पण भावना की गहरी से गहरी भूमिकाओं को स्पर्श करनेवाला है। सूरदास वल्लभाचार्य के शिष्य थे। वल्लभ के पुत्र बिट्‌ठलनाथ ने कृष्णलीलागान के लिए अष्टछाप के नाम से आठ कवियों का निर्वाचन किया था। सूरदास इस मंडल के सर्वोत्कृष्ट कवि हैं। अन्य विशिष्ट कवि नंददास और परमानंददास हैं। नंददास की कलाचेतना अपेक्षाकृत विशेष मुखर है।

मध्ययुग में कृष्णभक्ति का व्यापक प्रचार हुआ और वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग के अतिरिक्त अन्य भी कई संप्रदाय स्थापित हुए, जिन्होंने कृष्णकाव्य को प्रभावित किया। हितहरिवंश (राधावल्लभी संप्र.), हरिदास (टट्‌टी संप्र.), गदाधर भट्‌ट और सूरदास मदनमोहन (गौड़ीय संप्र.) आदि अनेक कवियों ने विभिन्न मतों के अनुसार कृष्णप्रेम की मार्मिक कल्पनाएँ कीं। मीरा की भक्ति दांपत्यभाव की थी जो अपने स्वत: स्फूर्त कोमल और करुण प्रेमसंगीत से आंदोतिल करती हैं। नरोत्तमदास, रसखान, सेनापति आदि इस धारा के अन्य अनेक प्रतिभाशाली कवि हुए जिन्होंने हिंदी काव्य को समृद्ध किया। यह सारा कृष्णकाव्य मुक्तक या कथाश्रित मुक्तक है। संगीतात्मकता इसका एक विशिष्ट गुण है।

कृष्णकाव्य ने भगवान के मधुर रूप का उद्‌घाटन किया पर उसमें जीवन की अनेकरूपता नहीं थी, जीवन की विविधता और विस्तार की मार्मिक योजना रामकाव्य में हुई। कृष्णभक्तिकाव्य में जीवन के माधुर्य पक्ष का स्फूर्तिप्रद संगीत था, रामकाव्य में जीवन का नीतिपक्ष और समाजबोध अधिक मुखरित हुआ। एक ने स्वच्छंद रागतत्त्व को महत्व दिया तो दूसरे ने मर्यादित लोकचेतना पर विशेष बल दिया। एक ने भगवान की लोकरंजनकारी सौंदर्यप्रतिमा का संगठन किया तो दूसरे ने उसके शक्ति, शील और सौंदर्यमय लोकमंगलकारी रूप को प्रकाशित किया। रामकाव्य का सर्वोत्कृष्ट वैभव 'रामचरितमानस' के रचयिता तुलसीदास के काव्य में प्रकट हुआ जो विद्याविद् ग्रियर्सन की दृष्टि में बुद्धदेव के बाद के सबसे बड़े जननायक थे। पर काव्य की दृष्टि से तुलसी का महत्व भगवान के एक ऐसे रूप की परिकल्पना में है, जो मानवीय सामर्थ्य और औदात्य की उच्चतम भूमि पर अधिष्ठित है। तुलसी के काव्य की एक बड़ी विशेषता उनकी बहुमुखी समन्वयभावना है, जो धर्म, समाज और साहित्य सभी क्षेत्रों में सक्रिय है। उनका काव्य लोकोन्मुख है। उसमें जीवन की विस्तीर्णता के साथ गहराई भी है। उनका महाकाव्य रामचरितमानस राम के संपूर्ण जीवन के माध्यम से व्यक्ति और लोकजीवन के विभिन्न पक्षों का उद्‌घाटन करता है। उसमें भगवान राम के लोकमंगलकारी रूप की प्रतिष्ठा है। उनका साहित्य सामाजिक और वैयक्तिक कर्तव्य के उच्च आदर्शों में आस्था दृढ़ करने वाला है। तुलसी की 'विनयपत्रिका' में आराध्य के प्रति, जो कवि के आदर्शों का सजीव प्रतिरूप है, उनका निरंतर और निश्छल समर्पणभाव, काव्यात्मक आत्माभिव्यक्ति का उत्कृष्ट दृष्टांत है। काव्याभिव्यक्ति के विभिन्न रूपों पर उनका समान अधिकार है। अपने समय में प्रचलित सभी काव्यशैलियों का उन्होंने सफल प्रयोग किया। प्रबंध और मुक्तक की साहित्यिक शैलियों के अतिरिक्त लोकप्रचलित अवधी और ब्रजभाषा दोनों के व्यवहार में वे समान रूप से समर्थ हैं। तुलसी के अतिरिक्त रामकाव्य के अन्य रचयिताओं में अग्रदास, नाभादास, प्राणचंद चौहान और हृदयराम आदि उल्लेख्य हैं।

आज की दृष्टि से इस संपूर्ण भक्तिकाव्य का महत्व उसक धार्मिकता से अधिक लोकजीवनगत मानवीय अनुभूतियों और भावों के कारण है। इसी विचार से भक्तिकाल को हिंदी काव्य का स्वर्ण युग कहा जा सकता है।

कृष्णाश्रयी शाखा

इस गुण की इस शाखा का सर्वाधिक प्रचार हुआ है। विभिन्न संप्रदायों के अंतर्गत उच्च कोटि के कवि हुए हैं। इनमें वल्लभाचार्य के पुष्टि-संप्रदाय के अंतर्गत अष्टछाप के सूरदास कुम्भनदास रसखान जैसे महान कवि हुए हैं। वात्सल्य एवंश्रृंगार के सर्वोत्तम भक्त-कवि सूरदास के पदों का परवर्ती हिंदी साहित्य पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ा है। इस शाखा के कवियों ने प्रायः मुक्तक काव्य ही लिखा है। भगवान श्रीकृष्ण का बाल एवं किशोर रूप ही इन कवियों को आकर्षित कर पाया है इसलिए इनके काव्यों में श्रीकृष्ण के ऐश्वर्य की अपेक्षा माधुर्य का ही प्राधान्य रहा है। प्रायः सब कवि गायक थे इसलिए कविता और संगीत का अद्भुत सुंदर समन्वय इन कवियों की रचनाओं में मिलता है। गीति-काव्य की जो परंपरा जयदेव और विद्यापति द्वारा पल्लवित हुई थी उसका चरम-विकास इन कवियों द्वारा हुआ है। नर-नारी की साधारण प्रेम-लीलाओं को राधा-कृष्ण की अलौकिक प्रेमलीला द्वारा व्यंजित करके उन्होंने जन-मानस को रसाप्लावित कर दिया। आनंद की एक लहर देश भर में दौड गई। इस शाखा के प्रमुख कवि थे सूरदास, नंददास, मीरा बाई, हितहरिवंश, हरिदास, रसखान, नरोत्तमदास वगैरह। रहीम भी इसी समय हुए।

कृष्ण-काव्य-धारा की विशेषताएँ

कृष्ण-काव्य-धारा के मुख्य प्रवर्तक हैं-श्री वल्लभाचार्य। उन्होंने निम्बार्क, मध्व और विष्णुस्वामी के आदर्शों को सामने रखकर श्रीकृष्ण का प्रचार किया। श्री वल्लभाचार्य द्वारा प्रचारित पुष्टिमार्ग में दीक्षित होकर सूरदास आदि अष्टछाप के कवियों ने कृष्ण-भक्ति-साहित्य की रचना की। वल्लभाचार्य ने पुष्टिमार्ग का प्रचार-प्रसार किया। जिसका अर्थ है-भगवान श्रीकृष्ण की भक्ति से उनकी कृपा और अनुग्रह की प्राप्ति करना।

कृष्ण-काव्य-धारा की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. श्रीकृष्ण-साहित्य का मुख्य विषय कृष्ण की लीलाओं का गान करना है। वल्लभाचार्य के सिद्धांतो से प्रभावित होकर इस शाखा के कवियों ने कृष्ण की बाल-लीलाओं का ही अधिक वर्णन किया है। सूरदास इसमें प्रमुख है।
2. इस शाखा में वात्सल्य एवं माधुर्य भाव का ही प्राधान्य है। वात्सल्य भाव के अंतर्गत कृष्ण की बाल-लीलाओं, चेष्टाओं तथा माँ यशोदा के हृदय

की झाँकी मिलती है। माधुर्य भाव के अंतर्गत गोपी-लीला मुख्य है। सूरदास के बारे में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है-वात्सल्य के क्षेत्र में जितना अधिक उद्घाटन सूर ने अपनी बंद आँखों से किया, इतना किसी ओर कवि ने नहीं। इन क्षेत्रों का तो वे कोना-कोना झाँक आये।

3. इस धारा के कवियों ने भगवान कृष्ण की उपासना माधुर्य एवं सख्य भाव से की है। इसीलिए इसमें मर्यादा का चित्रण नहीं मिलता।
4. श्रीकृष्ण काव्य में मुक्त रचनाएँ ही अधिक पाई जाती हैं। काव्य-रचना के अधिकांशतः उन्होंने पद ही चुने हैं।
5. इस काव्य में गीति-काव्य की मनोहारिणी छटा है। इसका कारण है-कृष्ण-काव्य की संगीतात्मक्ता। कृष्ण-काव्य में राग-रागिनियों का सुंदर उपयोग हुआ है।
6. श्रीकृष्ण काव्य में विषय की एकता होने के कारण भावों में अधिकतर एकरूपता पाई जाती है।
7. श्रीकृष्ण को भगवान मानकर पदों की विनयावली द्वारा पूजा जाने के कारण इसमें भावुकता की तीव्रता अधिक पाई जाती है।
8. इस काव्य-धारा में उपमा, रूपक तथा उत्प्रेक्षा अलंकारों का प्रयोग किया गया है।
9. कृष्ण-काव्य-धारा की भाषा ब्रज है। ब्रजभाषा की कोमलकांत पदावली का प्रयोग इसमें हुआ है। यह मधुर और सरस है।
10. इस काव्य में रसमयी उक्तियों के लिए तथा साकार ईश्वर के प्रतिपादन के लिए भ्रमरगीत लिखने की परंपरा प्राप्त होती है।
11. श्रीकृष्ण-काव्य स्वतंत्र प्रेम-प्रधान काव्य है। इन्होंने प्रेमलक्षणा भक्ति को अपनाया है। इसलिए इसमें मर्यादा की अवहेलना की गई है।
12. कृष्ण-काव्य व्यंग्यात्मक है। इसमें उपालंभ की प्रधानता है। सूर का भ्रमरगीत इसका सुंदर उदाहरण है।
13. श्रीकृष्ण काव्य में लोक-जीवन के प्रति उपेक्षा की भावना पाई जाती है। इसका मुख्य कारण है-कृष्ण के लोकरंजक रूप की प्रधानता।
14. श्री कृष्ण-काव्य-धारा में ज्ञान और कर्म के स्थान पर भक्ति को प्रधानता दी गई है। इसमें आत्म-चिंतन की अपेक्षा आत्म-समर्पण का महत्व है।
15. प्रकृति-वर्णन भी इस धारा में मिलता है। ग्राम्य-प्रकृति के सुंदर चित्र इसमें हैं।

रामाश्रयी शाखा

कृष्णभक्ति शाखा के अंतर्गत लीला–पुरुषोत्तम का गान रहा तो रामभक्ति शाखा के प्रमुख कवि तुलसीदास ने मर्यादा–पुरुषोत्तम का ध्यान करना चाहा। इसलिए आपने रामचंद्र को आराध्य माना और 'रामचरित मानस' द्वारा राम–कथा को घर–घर में पहुंचा दिया। तुलसीदास हिंदी साहित्य के श्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। समन्वयवादी तुलसीदास में लोकनायक के सब गुण मौजूद थे। आपकी पावन और मधुर वाणी ने जनता के तमाम स्तरों को राममय कर दिया। उस समय प्रचलित तमाम भाषाओं और छंदों में आपने रामकथा लिख दी। जन–समाज के उत्थान में आपने सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य किया है। इस शाखा में अन्य कोई कवि तुलसीदास के समान उल्लेखनीय नहीं है तथापि अग्रदास, नाभादास तथा प्राण चन्द चौहान भी इस श्रेणी में आते हैं।

रामभक्ति शाखा की प्रवृत्तियाँ रामकाव्य धारा का प्रवर्तन वैष्णव संप्रदाय के स्वामी रामानंद से स्वीकार किया जा सकता है। यद्यपि रामकाव्य का आधार संस्कृत साहित्य में उपलब्ध राम–काव्य और नाटक रहें हैं। इस काव्य धारा के अवलोकन से इसकी निम्न विशेषताएँ दिखाई पड़ती हैं–

राम का स्वरूप – रामानुजाचार्य की शिष्य परम्परा में श्री रामानंद के अनुयायी सभी रामभक्त कवि विष्णु के अवतार दशरथ–पुत्र राम के उपासक हैं। अवतारवाद में विश्वास है। उनके राम परब्रह्म स्वरूप हैं। उनमें शील, शक्ति और सौंदर्य का समन्वय है। सौंदर्य में वे त्रिभुवन को लजावन हारे हैं। शक्ति से वे दुष्टों का दमन और भक्तों की रक्षा करते हैं तथा गुणों से संसार को आचार की शिक्षा देते हैं। वे मर्यादापुरुषोत्तम और लोकरक्षक हैं। भक्ति का स्वरूप – इनकी भक्ति में सेवक–सेव्य भाव है। वे दास्य भाव से राम की आराधना करते हैं। वे स्वयं को क्षुद्रातिक्षुद्र तथा भगवान को महान बतलाते हैं। तुलसीदास ने लिखा है– सेवक–सेव्य भाव बिन भव न तरिय उरगारि। राम–काव्य में ज्ञान, कर्म और भक्ति की पृथक–पृथक महत्ता स्पष्ट करते हुए भक्ति को उत्कृष्ट बताया गया है। तुलसी दास ने भक्ति और ज्ञान में अभेद माना है– भगतहिं ज्ञानहिं नहिं कुछ भेदा। यद्यपि वे ज्ञान को कठिन मार्ग तथा भक्ति को सरल और सहज मार्ग स्वीकार करते हैं। इसके अतिरिक्त तुलसी की भक्ति का रूप वैधी रहा है, वह वेदशास्त्र की मर्यादा के अनुकूल है। लोक–मंगल की भावना – रामभक्ति साहित्य में राम के लोक–रक्षक रूप की स्थापना हुई है। तुलसी के राम मर्यादापुरुषोत्तम तथा आदर्शों के संस्थापक हैं। इस काव्य धारा में आदर्श पात्रों की

सर्जना हुई है। राम आदर्श पुत्र और आदर्श राजा हैं, सीता आदर्श पत्नी हैं तो भरत और लक्ष्मण आदर्श भाई हैं। कौशल्या आदर्श माता हैं, हनुमान आदर्श सेवक हैं। इस प्रकार रामचरितमानस में तुलसी ने आदर्श गृहस्थ, आदर्श समाज और आदर्श राज्य की कल्पना की है। आदर्श की प्रतिष्ठा से ही तुलसी लोकनायक कवि बन गए हैं और उनका काव्य लोकमंगल की भावना से ओतप्रोत है। समन्वय भावना– तुलसी का मानस समन्वय की विराट चेष्टा है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में–उनका सारा काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है। लोक और शास्त्र का समन्वय, गार्हस्थ्य और वैराग्य का समन्वय, भक्ति और ज्ञान का समन्वय, भाषा और संस्कृत का समन्वय, निर्गुण और सगुण का समन्वय, पांडित्य और अपांडित्य का समन्वय रामचरितमानस में शुरू से आखिर तक समन्वय का काव्य है। हम कह सकते हैं कि तुलसी आदि रामभक्त कवियों ने समाज, भक्ति और साहित्य सभी क्षेत्रों में समन्वयवाद का प्रचार किया है।

राम भक्त कवियों की भारतीय संस्कृति में पूर्ण आस्था रही। पौराणिकता इनका आधार है और वर्णाश्रम व्यवस्था के पोषक हैं। लोकहित के साथ-साथ इनकी भक्ति स्वांतः सुखाय थी। सामाजिक तत्त्व की प्रधानता रही। काव्य शैलियाँ – रामकाव्य में काव्य की प्रायः सभी शैलियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। तुलसीदास ने अपने युग की प्रायः सभी काव्य-शैलियों को अपनाया है। वीरगाथाकाल की छप्पय पद्धति, विद्यापति और सूर की गीतिपद्धति, गंग आदि भाट कवियों की कवित्त-सवैया पद्धति, जायसी की दोहा पद्धति, सभी का सफलतापूर्वक प्रयोग इनकी रचनाओं में मिलता है। रामायण महानाटक (प्राणचंद चौहान) और हनुमननाटक (हृदयराम) में संवाद पद्धति और केशव की रामचंद्रिका में रीति-पद्धति का अनुसरण है। रस – रामकाव्य में नव रसों का प्रयोग है। राम का जीवन इतना विस्तृत व विविध है कि उसमें प्रायः सभी रसों की अभिव्यक्ति सहज ही हो जाती है। तुलसी के मानस एवं केशव की रामचंद्रिका में सभी रस देखे जा सकते हैं। रामभक्ति के रसिक संप्रदाय के काव्य में श्रृंगार रस को प्रमुखता मिली है।

मुख्य रस यद्यपि शांत रस ही रहा। भाषा – रामकाव्य में मुख्यतः अवधी भाषा प्रयुक्त हुई है। किंतु ब्रजभाषा भी इस काव्य का श्रृंगार बनी है। इन दोनों भाषाओं के प्रवाह में अन्य भाषाओं के भी शब्द आ गए हैं। बुंदेली, भोजपुरी, फारसी तथा अरबी शब्दों के प्रयोग यत्र-तत्र मिलते हैं। रामचरितमानस की अवधी प्रेमकाव्य की अवधी भाषा की अपेक्षा अधिक साहित्यिक है। छंद – रामकाव्य की रचना अधिकतर दोहा-चौपाई में हुई है। दोहा चौपाई प्रबंधात्मक

काव्यों के लिए उत्कृष्ट छंद हैं। इसके अतिरिक्त कुण्डलिया, छप्पय, कवित्त, सोरठा, तोमर,त्रिभंगी आदि छंदों का प्रयोग हुआ है।

अलंकार – रामभक्त कवि विद्वान पंडित हैं। इन्होंने अलंकारों की उपेक्षा नहीं की। तुलसी के काव्य में अलंकारों का सहज और स्वाभाविक प्रयोग मिलता है। उत्प्रेक्षा, रूपक और उपमा का प्रयोग मानस में अधिक है।

ज्ञानाश्रयी मार्गी

इस शाखा के भक्त–कवि निर्गुणवादी थे और राम की उपासना करते थे। वे गुरू को बहुत सम्मान देते थे तथा जाति–पाँति के भेदों को अस्वीकार करते थे। वैयक्तिक साधना पर वे बल देते थे। मिथ्या आडंबरों और रूढियों का वे विरोध करते थे। लगभग सब संत अपढ़ थे परंतु अनुभव की दृष्टि से समृद्ध थे। प्राय: सब सत्संगी थे और उनकी भाषा में कई बोलियों का मिश्रण पाया जाता है इसलिए इस भाषा को 'सधुक्कड़ी' कहा गया है। साधारण जनता पर इन संतों की वाणी का जबरदस्त प्रभाव पड़ा है। इन संतों में प्रमुख कबीरदास थे। अन्य मुख्य संत–कवियों के नाम हैं–नानक, रैदास, दादूदयाल, सुंदरदास तथा मलूकदास।

प्रोफेसर महावीर सरन जैन ने निर्गुण भक्ति के स्वरूप के बारे में प्रश्न उठाए हैं तथा प्रतिपादित किया है कि संतों की निर्गुण भक्ति का अपना स्वरूप है जिसको वेदांत दर्शन के सन्दर्भ में व्याख्यायित नहीं किया जा सकता। उनके शब्द हैं। भक्ति या उपासना के लिए गुणों की सत्ता आवश्यक है। ब्रह्म के सगुण स्वरूप को आधार बनाकर तो भक्ति उपासना की जा सकती है किन्तु जो निर्गुण एवं निराकार है उसकी भक्ति किस प्रकार सम्भव है? निर्गुण के गुणों का आख्यान किस प्रकार किया जा सकता है ? गुणातीत में गुणों का प्रवाह किस प्रकार माना जा सकता है? जो निरालम्ब है, उसको आलम्बन किस प्रकार बनाया जा सकता है। जो अरूप है, उसके रूप की कल्पना किस प्रकार सम्भव है। जो रागातीत है, उसके प्रति रागों का अर्पण किस प्रकार किया जा सकता है? रूपातीत से मिलने की उत्कंठा का क्या औचित्य हो सकता है। जो नाम से भी अतीत है, उसके नाम का जप किस प्रकार किया जा सकता है।

शास्त्रीय दृष्टि से उपर्युक्त सभी प्रश्न 'निर्गुण–भक्ति' के स्वरूप को ताल ठोंककर चुनौती देते हुए प्रतीत होते हैं। कबीर आदि संतों की दार्शनिक विवेचना करते समय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने यह मान्यता स्थापित की है कि उन्होंने निराकार ईश्वर के लिए भारतीय वेदांत का पल्ला पकड़ा है। इस सम्बन्ध में जब

हम शांकर अद्वैतवाद एवं संतों की निर्गुण भक्ति के तुलनात्मक पक्षों पर विचार करते हैं तो उपर्युक्त मान्यता की सीमायें स्पष्ट हो जाती हैं।

(क) शांकर अद्वैतवाद में भक्ति को साधन के रूप में स्वीकार किया गया है, किन्तु उसे साध्य नहीं माना गया है। संतों ने (सूफियों ने भी) भक्ति को साध्य माना है।

(ख) शांकर अद्वैतवाद में मुक्ति के प्रत्यक्ष साधन के रूप में 'ज्ञान' को ग्रहण किया गया है। वहाँ मुक्ति के लिए भक्ति का ग्रहण अपरिहार्य नहीं है। वहाँ भक्ति के महत्व की सीमा प्रतिपादित है। वहाँ भक्ति का महत्व केवल इस दृष्टि से है कि वह अन्तःकरण के मालिन्य का प्रक्षालन करने में समर्थ सिद्ध होती है। भक्ति आत्म-साक्षात्कार नहीं करा सकती, वह केवल आत्म साक्षात्कार के लिए उचित भूमिका का निर्माण कर सकती है। संतों ने अपना चरम लक्ष्य आत्म साक्षात्कार या भगवद्-दर्शन माना है तथा भक्ति के ग्रहण को अपरिहार्य रूप में स्वीकार किया है क्योंकि संतों की दृष्टि में भक्ति ही आत्म-साक्षात्कार या भगवद्दर्शन कराती है।

प्रेमाश्रयी शाखा

मुसलमान सूफी कवियों की इस समय की काव्य-धारा को प्रेममार्गी माना गया है क्योंकि प्रेम से ईश्वर प्राप्त होते हैं ऐसी उनकी मान्यता थी। ईश्वर की तरह प्रेम भी सर्वव्यापी तत्त्व है और ईश्वर का जीव के साथ प्रेम का ही संबंध हो सकता है, यह उनकी रचनाओं का मूल तत्त्व है। उन्होंने प्रेमगाथाएं लिखी हैं। ये प्रेमगाथाएं फारसी की मसनवियों की शैली पर रची गई हैं। इन गाथाओं की भाषा अवधी है और इनमें दोहा-चौपाई छंदों का प्रयोग हुआ है। मुसलमान होते हुए भी उन्होंने हिंदू-जीवन से संबंधित कथाएं लिखी हैं। खंडन-मंडन में न पड़कर इन फकीर कवियों ने भौतिक प्रेम के माध्यम से ईश्वरीय प्रेम का वर्णन किया है। ईश्वर को माशूक माना गया है और प्रायः प्रत्येक गाथा में कोई राजकुमार किसी राजकुमारी को प्राप्त करने के लिए नानाविध कष्टों का सामना करता है, विविध कसौटियों से पार होता है और तब जाकर माशूक को प्राप्त कर सकता है। इन कवियों में मलिक मुहम्मद जायसी प्रमुख हैं। आपका 'पद्मावत' महाकाव्य इस शैली की सर्वश्रेष्ठ रचना है। अन्य कवियों में प्रमुख हैं-मंझन, कुतुबन और उसमान।

4

भक्तिकाल के कवि

भक्तिकाल में कृष्णभक्ति शाखा के अंतर्गत आने वाले प्रमुख कवि हैं–कबीरदास, संत शिरोमणि रविदास, तुलसीदास, सूरदास, नंददास, कृष्णदास, परमानंद दास, कुंभनदास, चतुर्भुजदास, छीतस्वामी, गोविन्दस्वामी, हितहरिवंश, गदाधर भट्ट, मीराबाई, स्वामी हरिदास, सूरदास मदनमोहन, श्रीभट्ट, व्यास जी, रसखान, ध्रुवदास तथा चैतन्य महाप्रभु।

सूरदास

हिन्दी साहित्य के श्रेष्ठ कृष्णभक्त कवि सूरदास का जन्म 1483 ई. के आसपास हुआ था। इनकी मृत्यु अनुमानतः 1563 ई. के आसपास हुई। इनके बारे में 'भक्तमाल' और 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में थोड़ी–बहुत जानकारी मिल जाती है। 'आईने अकबरी' और 'मुंशियात अब्बुलफजल' में भी किसी संत सूरदास का उल्लेख है, किन्तु वे बनारक के कोई और सूरदास प्रतीत होते हैं। अनुश्रुति यह अवश्य है कि अकबर बादशाह सूरदास का यश सुनकर उनसे मिलने आए थे। 'भक्तमाल' में इनकी भक्ति, कविता एवं गुणों की प्रशंसा है तथा इनकी अंधता का उल्लेख है। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' के अनुसार वे आगरा और मथुरा के बीच साधु या स्वामी के रूप में रहते थे। वे वल्लभाचार्य के दर्शन को गए और उनसे लीलागान का उपदेश पाकर कृष्ण–चरित विषयक पदों की रचना करने लगे। कालांतर में श्रीनाथ जी के मंदिर का निर्माण होने पर महाप्रभु

वल्लभाचार्य ने इन्हें यहाँ कीर्तन का कार्य सौंपा. सूरदास के विषय में कहा जाता है कि वे जन्मांध थे। उन्होंने अपने को 'जन्म को आँधर' कहा भी है। किन्तु इसके शब्दार्थ पर अधिक नहीं जाना चाहिए। सूर के काव्य में प्रकृतियाँ और जीवन का जो सूक्ष्म सौन्दर्य चित्रित है उससे यह नहीं लगता कि वे जन्मांध थे। उनके विषय में ऐसी कहानी भी मिलती है कि तीव्र अंतर्द्वन्द्व के किसी क्षण में उन्होंने अपनी आँखें फोड़ ली थीं। उचित यहीं मालूम पड़ता है कि वे जन्मांध नहीं थे। कालांतर में अपनी आँखों की ज्योति खो बैठे थे। सूरदास अब अंधों को कहते हैं। यह परम्परा सूर के अंधे होने से चली है। सूर का आशय 'शूर' से है। शूर और सती मध्यकालीन भक्त साधकों के आदर्श थे।

कृतियाँ

1. सूरसागर
2. सूरसारावली
3. साहित्य लहरी।

संत शिरोमणि रविदास

रैदास नाम से विख्यात संत रविदास का जन्म सन् 1388 (इनका जन्म कुछ विद्वान 1398 में हुआ भी बताते हैं) को बनारस में हुआ था। रैदास कबीर के समकालीन हैं। रैदास की ख्याति से प्रभावित होकर सिकंदर लोदी ने इन्हें दिल्ली आने का निमंत्रण भेजा था। मध्ययुगीन साधकों में रैदास का विशिष्ट स्थान है। कबीर की तरह रैदास भी संत कोटि के प्रमुख कवियों में विशिष्ट स्थान रखते हैं। कबीर ने 'संतन में रविदास' कहकर इन्हें मान्यता दी है।

मूर्तिपूजा, तीर्थयात्रा जैसे दिखावों में रैदास का बिल्कुल भी विश्वास न था। वह व्यक्ति की आंतरिक भावनाओं और आपसी भाईचारे को ही सच्चा धर्म मानते थे। रैदास ने अपनी काव्य-रचनाओं में सरल, व्यावहारिक ब्रजभाषा का प्रयोग किया है, जिसमें अवधी, राजस्थानी, खड़ी बोली और उर्दू-फारसी के शब्दों का भी मिश्रण है। रैदास को उपमा और रूपक अलंकार विशेष प्रिय रहे हैं। सीधे-सादे पदों में संत कवि ने हृदय के भाव बड़ी सफाई से प्रकट किए हैं। इनका आत्मनिवेदन, दैन्य भाव और सहज भक्ति पाठक के हृदय को उद्वेलित करते हैं। रैदास के चालीस पद सिखों के पवित्र धर्मग्रंथ 'गुरूग्रंथ साहब' में भी सम्मिलित हैं। कहते हैं मीरा के गुरू रैदास ही थे।

रविदास जी के पद

अब कैसे छूटे राम रट लागी। प्रभु जी, तुम चंदन हम पानी, जाकी अँग-अँग बास समानी प्रभु जी, तुम घन बन हम मोरा, जैसे चितवत चंद चकोरा प्रभु जी, तुम दीपक हम बाती, जाकी जोति बरै दिन राती प्रभु जी, तुम मोती, हम धागा जैसे सोनहिं मिलत सोहागा प्रभु जी, तुम स्वामी हम दासा, ऐसी भक्ति करै 'रैदासा'।

रैदास के दोहे (काव्य)

जाति-जाति में जाति हैं, जो केतन के पात। रैदास मनुष ना जुड़ सके जब तक जाति न जात।।

रैदास कनक और कंगन माहि जिमि अंतर कछु नाहिं। तैसे ही अंतर नहीं हिन्दुअन तुरकन माहि।।

हिंदू तुरक नहीं कछु भेदा सभी मह एक रक्त और मासा। दोऊ एकऊ दूजा नाहीं, पेख्यो सोइ रैदासा।।

कह रैदास तेरी भगति दूरि है, भाग बड़े सो पावै। तजि अभिमान मेटि आपा पर, पिपिलक हवै चुनि खावै।।

कृस्न, करीम, राम, हरि, राघव, जब लग एक न पेखा। वेद कतेब कुरान, पुरानन, सहज एक नहिं देखा।।

ध्रुवदास

ये श्री हितहरिवंश के शिष्य स्वप्न में हुए थे। इसके अतिरिक्त उनका कुछ जीवनवृत्त प्राप्त नहीं हुआ। वे अधिकतर वृंदावन में ही रहा करते थे। उनकी रचना बहुत ही विस्तृत है और इन्होंने पदों के अतिरिक्त दोह, चौपाई, कवित्त, सवैये आदि अनेक छंदों में भक्ति और प्रेमतत्त्वों का वर्णन किया है।

कृतियाँ-

1. वृंदावनसत
2. सिंगारसत
3. रसरत्नावली
4. नेहमंजरी
5. रहस्यमंजरी

रसखान

ये दिल्ली के एक पठान सरदार थे। ये लौकिक प्रेम से कृष्ण प्रेम की ओर उन्मुख हुए। ये गोस्वामी विट्ठलनाथ के बड़े कृपापात्र शिष्य थे। रसखान ने कृष्ण का लीलागान गेयपदों में नहीं, सवैयों में किया है। रसखान को सवैया छंद सिद्ध था। जितने सहज, सरस, प्रवाहमय सवैये रसखान के हैं, उतने शायद ही किसी अन्य कवि के हों। रसखान का कोई ऐसा सवैया नहीं मिलता जो उच्च स्तर का न हो। उनके सवैये की मार्मिकता का बहुत बड़ा आधार दृश्यों और बाह्यांतर स्थितियों की योजना में है। वहीं योजना रसखान के सवैयों के ध्वनि-प्रवाह में है। ब्रजभाषा का ऐसा सहज प्रवाह अन्यत्र बहुत कम मिलता है। रसखान सूफियों का हृदय लेकर कृष्ण की लीला पर काव्य रचते हैं। उनमें उल्लास, मादकता और उत्कटता तीनों का संयोग है। ब्रज भूमि के प्रति जो मोह रसखान की कविताओं में दिखाई पड़ता है, वह उनकी विशेषता है।

कृतियाँ

1. प्रेमवाटिका
2. सुजान रसखान

व्यास जी

इनका पूरा नाम हरीराम व्यास था और वे ओरछा के रहनेवाले थे। ओरछा नरेश मधुकर शाह के ये राजगुरू थे। पहले ये गौड़ सम्प्रदाय के वैष्णव थे पीछे हितहरिवंशजी के शिष्य होकर राधाबल्लभी हो गए। इनका समय सन् 1563 ई. के आसपास है। इनकी रचना परिमाण में भी बहुत विस्तृत है और विषय भेद के विचार से भी अधिकांश कृष्णभक्तों की अपेक्षा व्यापक है। ये श्रीकृष्ण की बाललीला औरशृंगारलीला में लीन रहने पर भी बीच में संसार पर दृष्टि डाला करते थे। इन्होंने तुलसीदास के समान खलों, पाखंडियों आदि का भी स्मरण किया और रसखान के अतिरिक्त तत्त्वनिरूपण में भी ये प्रवृत्त हुए हैं।

कृतियाँ

1. रासपंचाध्यायी

स्वामी हरिदास

ये महात्मा वृंदावन में निंबार्क मतांतर्गत टट्टी संप्रदाय, जिसे सुसू संप्रदाय भी कहते है, के संस्थापक थे और अकबर के समय में एक सिद्ध भक्त और संगीत–कला–कोविद माने जाते थे। कविताकाल सन् 1543 से 1560 ई. ठहरता है। प्रसिद्ध गायनाचार्य तानसेन इनका गुरूवत् सम्मान करते थे। यह प्रसिद्ध है कि अकबर बादशाह साधु के वेश में तानसेन के साथ इनका गाना सुनने के लिए गया था। कहते हैं कि तानसेन इनके सामने गाने लगे और उन्होंने जानबूझकर गाने में कुछ भूल कर दी। इसपर स्वामी हरिदास ने उसी गाना को शुद्ध करके गाया। इस युक्ति से अकबर को इनका गाना सुनने का सौभाग्य प्राप्त हो गया। पीछे अकबर ने बहुत कुछ पूजा चढ़ानी चाही पर इन्होंने स्वीकृन न की। इनका जन्म समय कुछ ज्ञात नहीं है।

कृतियाँ

1. स्वामी हरिदास जी के पद
2. हरिदास जी की बानी

मीराबाई

ये मेड़तिया के राठौड़ रत्नसिंह की पुत्री, राव दूदाजी की पौत्री और जोधपुर के बसानेवाले प्रसिद्ध राव जोधा की प्रपौत्री थीं। इनका जन्म सन् 1498 ई. में चोकड़ी नाम के एक गाँव में हुआ था और विवाह उदयपुर के महाराणा कुमार भोजराज के साथ हुआ था। ये आरंभ से ही कृष्ण भक्ति में लीन रहा करती थीं। विवाह के उपरांत थोड़े दिनों में इनके पति का परलोकवास हो गया। ये प्राय: मंदिर में जाकर उपस्थित भक्तों और संतों के बीच श्रीकृष्ण भगवान की मूर्ति के सामने आनंदमग्न होकर नाचती और गाती थीं। कहते हैं कि इनके इस राजकुलविरूद्ध आचरण से इनके स्वजन लोकनिंदा के भय से रूष्ट रहा करते थे। यहाँ तक कहा जाता है कि इन्हें कई बार विष देने का प्रयत्न किया गया, पर विष का कोई प्रभाव इन पर न हुआ। घरवालों के व्यवहार से खिन्न होकर ये द्वारका और वृंदावन के मंदिरों में घूम–घूमकर भजन सुनाया करती थीं। ऐसा प्रसिद्ध है कि घरवालों से तंग आकर इन्होंने गोस्वामी तुलसीदास को यह पद लिखकर भेजा था– स्वस्ति श्री तुलसी कुल भूषन दूषन हरन गोसाईं। बारहिं बार प्रनाम करहुँ, अब हरहु सोक समुदाई ।। घर के स्वजन हमारे जेते सबन्ह उपाधि

बढ़ाई ।। साधु संग अरू भजन करत मोहिं देत कलेस महाई ।। मेरे मात पिता के सम हौ, हरिभक्तन्ह सुखदाई ।। हमको कहा उचित करिबो है, सो लिखिए समझाई ।। इस पर गोस्वामी जी ने 'विनयपत्रिका' का यह पद लिखकर भेजा था – जाके प्रिय न राम बैदेही । सो नर तजिय कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही ।। नाते सबै राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं । अंजन कहा आँखि जौ फूटै, बहुतक कहौं कहाँ लौं ।। मीराबाई की मृत्यु द्वारका में सन् 1546 ई. में हो चुकी थी। अतः यह जनश्रुति किसी की कल्पना के आधार पर ही चल पड़ी। मीराबाई का नाम प्रधान भक्तों में है और इनका गुणगान नाभाजी, ध्रुवदास, व्यास जी, मलूकदास आदि सब भक्तों ने किया है।

कृतियाँ

1. नरसी जी का मायरा
2. गीतगोविंद टीका
3. राग गोविंद
4. राग सोरठा के पद।

गदाधर भट्ट

ये दक्षिणी ब्राह्मण थे। इनके जन्म का समय ठीक से पता नहीं, पर यह बात प्रसिद्ध है कि ये श्री चैतन्य महाप्रभु को भागवत सुनाया करते थे। इनका समर्थन भक्तमाल की इन पंक्तियों से भी होता है– भागवत सुधा बरखै बदन, काहू को नाहिंन दुखद। गुणनिकर गदाधर भट्ट अति सबहिन को लागै सुखद ।। संस्कृत के चूडांत पंडित होने के कारण शब्दों पर इनका बहुत विस्तृत अधिकार था। इनका पदविन्यास बहुत ही सुंदर है।

हितहरिवंश

राधावल्लभी सम्प्रदाय के प्रवर्तक गोसाईं हितहरिवंश का जन्म सन् 1502 ई. में मथुरा से 4 मील दक्षिण बादगाँव में हुआ था। राधावल्लभी सम्प्रदाय के पंडित गोपालप्रसाद शर्मा ने इनका जन्म सन् 1473 ई. माना है। इनके पिता को नाम केशवदास मिश्र और माता का नाम तारावती था। कहते हैं कि हितहरिवंश पहले माध्वानुयायी गोपाल भट्ट के शिष्य थे। पीछे इन्हें स्वप्न में राधिकाजी ने मंत्र दिया और इन्होंने अपना एक अलग संप्रदाय चलाया। अतः हित सम्प्रदाय को

माध्व संप्रदाय के अंतर्गत मान सकते हैं। हितहरिवंश के चार पुत्र और एक कन्या हुई। गोसाईं जी ने सन् 1525 ई. में श्री राधावल्लभ जी की मूर्ति वृंदावन में स्थापित की और वहीं विरक्त भाव से रहने लगे। ये संस्कृत के अच्छे विद्वान और भाषा काव्य के अच्छे मर्मज्ञ थे। ब्रजभाषा की रचना इनकी यद्यपि बहुत विस्तृत नहीं है तथापि बड़ी सरस और हृदयग्राहिणी है।

कृतियाँ–

1. राधासुधानिधि
2. हित चौरासी।

गोविन्दस्वामी

ये अंतरी के रहनेवाले सनाढ्य ब्राह्मण थे जो विरक्त की भाँति आकर महावन में रहने लगे थे। पीछे गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के शिष्य हुए जिन्होंने इनके रचे पदों से प्रसन्न होकर इन्हें अष्टछाप में लिया। ये गोवर्धन पर्वत पर रहते थे और उसके पास ही इन्होंने कदंबों का एक अच्छा उपवन लगाया था जो अब तक 'गोविन्दस्वमी की कदंबखडी' कहलाता है। इनका रचनाकाल सन् 1543 और 1568 ई. के भीतर ही माना जा सकता है। वे कवि होने के अतिरिक्त बड़े पक्के गवैये थे। तानसेन कभी–कभी इनका गाना सुनने के लिए आया करते थे।

छीतस्वामी

विट्ठलनाथ जी के शिष्य और अष्टछाप के अंतर्गत थे। पहले ये मथुरा के सुसम्पन्न पंडा थे और राजा बीरबल जैसे लोग इनके जजमान थे। पंडा होने के कारण ये पहले बड़े अक्खड़ और उद्दंड थे, पीछे गोस्वामी विट्ठलनाथ जी से दीक्षा लेकर परम शांत भक्त हो गए और श्रीकृष्ण का गुणानुवाद करने लगे। इनकी रचनाओं का समय सन् 1555 ई. के इधर मान सकते हैं। इनके पदों मेंश्रृंगार के अतिरिक्त ब्रजभूमि के प्रति प्रेमव्यंजना भी अच्छी पाई जाती है। 'हे विधना तोसों अँचरा पसारि माँगौ जनम जनम दीजो याही ब्रज बसिबो' पद इन्हीं का है।

चतुर्भुजदास

ये कुंभनदास जी के पुत्र और गोसाईं विट्ठलनाथ जी के शिष्य थे। ये भी अष्टछाप के कवियों में हैं। इनकी भाषा चलती और सुव्यवस्थित है। इनके बनाए तीन ग्रंथ मिले हैं।

कृतियाँ

1. द्वादशयश,
2. भक्तिप्रताप,
3. हितजू को मंगल।

कुंभनदास

ये भी अष्टछाप के एक कवि थे और परमानंद जी के ही समकालीन थे। ये पूरे विरक्त और धन, मान, मर्यादा की इच्छा से कोसों दूर थे। एक बार अकबर बादशाह के बुलाने पर इन्हें फतहपुर सीकरी जाना पड़ा जहाँ इनका बड़ा सम्मान हुआ। पर इसका इन्हें बराबर खेद ही रहा, जैसा कि इस पद से व्यंजित होता है– संतन को कहा सीकरी सो काम ? आवत जात पनहियाँ टूटी, बिसरि गयो हरि नाम जिनको मुख देखे दुख उपजत, तिनको करिबे परी सलाम कुंभनदास लाल गिरिधर बिनु और सबै बेकाम. इनका कोई ग्रंथ न तो प्रसिद्ध है और न अब तक मिला है।

परमानंद

यह वल्लभाचार्य जी के शिष्य और अष्टछाप में थे। सन् 1551 ई. के आसपास वर्तमान थे। इनका निवास स्थान कन्नौज था। इसी से ये कान्यकुब्ज अनुमान किए जाते हैं। अत्यंत तन्मयता के साथ बड़ा ही सरल कविता करते थे। कहते हैं कि इनके किसी एक पद को सुनकर आचार्यजी कई दिनों तक बदन की सुध भूले रहे। इनके फुटकर पद कृष्णभक्तों के मुँह से प्रायः सुनने को आते थे।

कृतियाँ –

1. परमानंदसागर

कृष्णदास

जन्मना शूद्र होते हुए भी वल्लभाचार्य के कृपा–पात्र थे और मंदिर के प्रधान हो गए थे। 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' के अनुसार एक बार गोसाईं विट्ठलनाथजी से किसी बात पर अप्रसन्न होकर इन्होंने उनकी ड्योढ़ी बंद कर दी। इस पर गोसाईं के कृपापात्र महाराज बीरबल ने इन्हें कैद कर लिया। पीछे

गोसाईं जी इस बात से बड़े दुखी हुए और उनको कारागार से मुक्त कराके प्रधान के पद पर फिर ज्यों का त्यों प्रतिष्ठित कर दिया। इन्होंने भी और सब कृष्ण भक्तों के समान राधाकृष्ण के प्रेम को लेकरश्रृंगार रस के ही पद गाए हैं। 'जुगलमान चरित' नामक इनका एक छोटा सा ग्रंथ मिलता है। इसके अतिरिक्त इनके बनाए दो ग्रंथ और कहे जाते हैं-भ्रमरगीत और प्रेमतत्त्व निरूपण। इनका कविताकाल सन् 1550 के आगे पीछे माना जाता है।

कृतियाँ–

1. जुगलमान चरित
2. भ्रमरगीत
3. प्रेमतत्त्व निरूपण।

श्रीभट्ट

ये निंबार्क सम्प्रदाय के प्रसिद्ध विद्वान केशव काश्मीरी के प्रधान शिष्य थे। इनका जन्म सन् 1538 ई. में अनुमान किया जाता है। इनकी कविता सीधी–सादी और चलती भाषा में है। पद भी प्रायः छोटे–छोटे हैं। ऐसा प्रसिद्ध है कि जब ये तन्मय होकर अपने पद गाने लगते थे तब कभी–कभी उस पद के ध्यानानुरूप इन्हें भगवान की झलक प्रत्यक्ष मिल जाती थी।

कृतियाँ-

1. युगल शतक
2. आदि बानी

सूरदास मदनमोहन

ये अकबर के समय में संडीले के अमीन थे। ये जो कुछ पास में आता प्रायः साधुओं की सेवा में लगा दिया करते थे। कहते हैं कि एक बार संडीले तहसील की मालगुजारी के कई लाख रूपये सरकारी खजाने में आए थे। इन्होंने सब का सब साधुओं को खिलापिला दिया और शाही खजाने में कंकड़–पत्थरों से भरे संदूक भेज दिए जिनके भीतर कागज के चिट यह लिख कर रख दिए– तेरह लाख सँडीले आए, सब साधुन मिलि गटके। सूरदास मदनमोहन आधी रातहिं सटके और आधी रात को उठकर कहीं भाग गए। बादशाह ने इनका

अपराध क्षमा करके इन्हें फिर बुलाया, पर ये विरक्त होकर वृंदावन में रहने लगे। इनकी कविता इतनी सरस होती थी कि इनके बनाए बहुत से पद सूरसागर में मिल गए। इनकी कोई पुस्तक प्रसिद्ध नहीं। इनका रचनाकाल सन् 1533 ई. और 1543 ई. के बीच अनुमान किया जाता है।

नंददास

नंददास 16 वीं शती के अंतिम चरण में विद्यमान थे। इनके विषय में 'भक्तमाल' में लिखा है– 'चन्द्रहास–अग्रज सुहृद परम प्रेम में पगे' इससे इतना ही सूचित होता है कि इनके भाई का नाम चंद्रहास था। 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' के अनुसार ये तुलसीदास के भाई थे, किन्तु अब यह बात प्रामाणिक नहीं मानी जाती। उसी वार्ता में यह भी लिखा है कि द्वारका जाते हुए नंददास सिंधुनद ग्राम में एक रूपवती खत्रानी पर आसक्त हो गए। ये उस स्त्री के घर में चारों ओर चक्कर लगाया करते थे। घरवाले हैरान होकर कुछ दिनों के लिए गोकुल चले गए। वहाँ भी वे जा पहुँचे। अंत में वहीं पर गोसाई विट्ठलनाथ जी के सदुपदेश से इनका मोह छूटा और ये अनन्य भक्त हो गए। इस कथा में ऐतिहासिक तथ्य केवल इतना ही है कि इन्होंने गोसाई विट्ठलनाथ जी से दीक्षा ली। इनके काव्य के विषय में यह उक्ति प्रसिद्ध है– 'और कवि गढ़िया, नंददास जड़िया' इससे प्रकट होता है कि इनके काव्य का कला–पक्ष महत्त्वपूर्ण है। इनकी रचना बड़ी सरस और मधुर है। इनकी सबसे प्रसिद्ध पुस्तक 'रासपंचाध्यायी' है, जो रोला छंदों में लिखी गई है। इसमें जैसा कि नाम से ही प्रकट है, कृष्ण की रासलीला का अनुप्रासादियुक्त साहित्यिक भाषा में विस्तार के साथ वर्णन है।

कृतियाँ

पद्य रचना
रासपंचाध्यायी
भागवत दशम स्कंध
रूक्मिणीमंगल
सिद्धांत पंचाध्यायी
रूपमंजरी
मानमंजरी
विरहमंजरी

नामचिंतामणिमाला
अनेकार्थनाममाला
दानलीला
मानलीला
अनेकार्थमंजरी
ज्ञानमंजरी
श्यामसगाई
भ्रमरगीत
सुदामाचरित्र
गद्यरचना
हितोपदेश
नासिकेतपुराण

चैतन्य महाप्रभु

चैतन्य महाप्रभु भक्तिकाल के प्रमुख कवियों में से एक हैं। इन्होंने वैष्णवों के गौड़ीय संप्रदाय की आधारशिला रखी। भजन गायकी की एक नयी शैली को जन्म दिया तथा राजनैतिक अस्थिरता के दिनों में हिंदू मुस्लिम एकता की सद्भावना को बल दिया, जाति-पांत, ऊंच-नीच की भावना को दूर करने की शिक्षा दी तथा विलुप्त वृंदावन को फिर से बसाया और अपने जीवन का अंतिम भाग वहीं व्यतीत किया।

चैतन्य महाप्रभु का जन्म सन् 1486 की फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा को पश्चिम बंगाल के नवद्वीप (नादिया) नामक उस गांव में हुआ, जिसे अब मायापुर कहा जाता है। यपि बाल्यावस्था में इनका नाम विश्वंभर था, परंतु सभी इन्हें निमाई कहकर पुकारते थे। गौरवर्ण का होने के कारण लोग इन्हें गौरांग, गौर हरि, गौर सुंदर आदि भी कहते थे। चैतन्य महाप्रभु के द्वारा गौड़ीय वैष्णव संप्रदाय की आधारशिला रखी गई। उनके द्वारा प्रारंभ किए गए महामंत्र नाम संकीर्तन का अत्यंत व्यापक व सकारात्मक प्रभाव आज पश्चिमी जगत तक में है। इनके पिता का नाम जगन्नाथ मिश्र व मां का नाम शचि देवी था। निमाई बचपन से ही विलक्षण प्रतिभा संपन्न थे। साथ ही, अत्यंत सरल, सुंदर व भावुक भी थे। इनके द्वारा की गई लीलाओं को देखकर हर कोई हतप्रभ हो जाता था। बहुत कम उम्र में ही निमाई न्याय व व्याकरण में पारंगत हो गए थे। इन्होंने कुछ समय तक

नादिया में विघालय स्थापित करके अध्यापन कार्य भी किया। निमाई बाल्यावस्था से ही भगवद्चिंतन में लीन रहकर राम व कृष्ण का स्तुति गान करने लगे थे। 15-16 वर्ष की अवस्था में इनका विवाह लक्ष्मीप्रिया के साथ हुआ। सन् 1505 में सर्प दंश से पत्नी की मृत्यु हो गई। वंश चलाने की विवशता के कारण इनका दूसरा विवाह नवद्वीप के राजपंडित सनातन की पुत्री विष्णुप्रिया के साथ हुआ। जब ये किशोरावस्था में थे, तभी इनके पिता का निधन हो गया। सन् 1509 में जब ये अपने पिता का श्राद्ध करने गया गए, तब वहां इनकी मुलाकात ईश्वरपुरी नामक संत से हुई। उन्होंने निमाई से कृष्ण-कृष्ण रटने को कहा। तभी से इनका सारा जीवन बदल गया और ये हर समय भगवान श्रीकृष्ण की भक्ति में लीन रहने लगे।

भगवान श्रीकृष्ण के प्रति इनकी अनन्य निष्ठा व विश्वास के कारण इनके असंख्य अनुयायी हो गए। सर्वप्रथम नित्यानंद प्रभु व अद्वैताचार्य महाराज इनके शिष्य बने। इन दोनों ने निमाई के भक्ति आंदोलन को तीव्र गति प्रदान की। निमाई ने अपने इन दोनों शिष्यों के सहयोग से ढोलक, मृदंग, झाँझ, मंजीरे आदि वाद्य यंत्र बजाकर व उच्च स्वर में नाच-गाकर हरि नाम संकीर्तन करना प्रारंभ किया। 'हरे-कृष्ण, हरे-कृष्ण, कृष्ण-कृष्ण, हरे-हरे। हरे-राम, हरे-राम, राम-राम, हरे-हरे' नामक अठारह शब्दीय कीर्तन महामंत्र निमाई की ही देन है। जब ये कीर्तन करते थे, तो लगता था मानो ईश्वर का आह्वान कर रहे हैं। सन् 1510 में संत प्रवर श्री पाद केशव भारती से संन्यास की दीक्षा लेने के बाद निमाई का नाम कृष्ण चैतन्य देव हो गया। बाद में ये चैतन्य महाप्रभु के नाम से प्रख्यात हुए। चैतन्य महाप्रभु संन्यास लेने के बाद नीलांचल चले गए। इसके बाद दक्षिण भारत के श्री रंग क्षेत्र व सेतु बंध आदि स्थानों पर भी रहे। इन्होंने देश के कोने-कोने में जाकर हरिनाम की महत्ता का प्रचार किया। सन् 1515 में वृंदावन आए। यहां इन्होंने इमली तला और अक्रूर घाट पर निवास किया। वृंदावन में रहकर इन्होंने प्राचीन श्रीधाम वृंदावन की महत्ता प्रतिपादित कर लोगों की सुप्त भक्ति भावना को जागृत किया। यहां से फिर ये प्रयाग चले गए। इन्होंने काशी, हरिद्वार, शृंगेरी (कर्नाटक), कामकोटि पीठ (तमिलनाडु), द्वारिका, मथुरा आदि स्थानों पर रहकर भगवद्नाम संकीर्तन का प्रचार-प्रसार किया।

चैतन्य महाप्रभु ने अपने जीवन के अंतिम वर्ष जगन्नाथ पुरी में रहकर बिताए। यहीं पर सन् 1533 में 47 वर्ष की अल्पायु में रथयात्रा के दिन उनका देहांत हो गया। चैतन्य महाप्रभु ने लोगों की असीम लोकप्रियता और स्नेह प्राप्त

किया कहते हैं कि उनकी अद्भुत भगवद्भक्ति देखकर जगन्नाथ पुरी के राजा तक उनके श्रीचरणों में नत हो जाते थे। बंगाल के एक शासक के मंत्री रूपगोस्वामी तो मंत्री पद त्यागकर चैतन्य महाप्रभु के शरणागत हो गए थे। उन्होंने कुष्ठ रोगियों व दलितों आदि को अपने गले लगाकर उनकी अनन्य सेवा की। वे सदैव हिंदू-मुस्लिम एकता का संदेश देते रहे। साथ ही, उन्होंने लोगों को पारस्परिक सद्भावना जागृत करने की प्रेरणा दी। वस्तुतः उन्होंने जातिगत भेदभाव से ऊपर उठकर समाज को मानवता के सूत्र में पिरोया और भक्ति का अमृत पिलाया। वे गौडीय संप्रदाय के प्रथम आचार्य माने जाते हैं।

चैतन्य महाप्रभु के द्वारा कई ग्रंथ भी रचे गए। उन्होंने संस्कृत भाषा में भी तमाम रचनाएं कीं। उनका मार्ग प्रेम व भक्ति का था। वे नारद जी की भक्ति से अत्यंत प्रभावित थे, क्योंकि नारद जी सदैव 'नारायण-नारायण' जपते रहते थे। उन्होंने विश्व मानव को एक सूत्र में पिरोते हुए यह समझाया कि ईश्वर एक है। उन्होंने लोगों को यह मुक्ति सूत्र भी दिया-

'कृष्ण केशव, कृष्ण केशव, कृष्ण केशव, पाहियाम। राम राघव, राम राघव, राम राघव, रक्षयाम।'

हिंदू धर्म में नाम जप को ही वैष्णव धर्म माना गया है और भगवान श्रीकृष्ण को प्रधानता दी गई है। चैतन्य ने इन्हीं की7 उपासना की और नवद्वीप से अपने छह प्रमुख अनुयायियों (षड गोस्वामियों), गोपाल भट्ट गोस्वामी, रघुनाथ भट्ट गोस्वामी, सनातन गोस्वामी, रूप गोस्वामी, जीव गोस्वामी, रघुनाथ दास गोस्वामी को वृंदावन भेजकर वहां गोविंददेव मंदिर, गोपीनाथ मंदिर, मदन मोहन मंदिर, राधा रमण मंदिर, राधा दामोदर मंदिर, राधा श्यामसुंदर मंदिर और गोकुलानंद मंदिर नामक सप्त देवालयों की आधारशिला रखवाई।

लोग चैतन्य को भगवान श्री कृष्ण का अवतार मानते हैं।

5

तुलसीदास

गोस्वामी तुलसीदास (1511–1623) हिंदी साहित्य के महान कवि थे। इनका जन्म सोरों शूकरक्षेत्र, वर्तमान में कासगंज (एटा) उत्तर प्रदेश में हुआ था। कुछ विद्वान् इनका जन्म राजापुर जिला बाँदा(वर्तमान में चित्रकूट) में हुआ मानते हैं। कुछ विद्वान तुलसीदास का जन्म गोण्डा जिला के सुकरखेत को भी मानते है। इन्हें आदि काव्य रामायण के रचयिता महर्षि वाल्मीकि का अवतार भी माना जाता है। श्रीरामचरितमानस का कथानक रामायण से लिया गया है। रामचरितमानस लोक ग्रन्थ है और इसे उत्तर भारत में बड़े भक्तिभाव से पढ़ा जाता है। इसके बाद विनय पत्रिका उनका एक अन्य महत्त्वपूर्ण काव्य है। महाकाव्य श्रीरामचरितमानस को विश्व के 100 सर्वश्रेष्ठ लोकप्रिय काव्यों में 46वाँ स्थान दिया गया।

जन्म

अधिकांश विद्वान तुलसीदास का जन्म स्थान राजापुर को मानने के पक्ष में हैं। यद्यपि कुछ इसे सोरों शूकरक्षेत्र भी मानते हैं। राजापुर उत्तर प्रदेश के चित्रकूट जिला के अंतर्गत स्थित एक गाँव है। वहाँ आत्माराम दुबे नाम के एक प्रतिष्ठित संध्या नंददास भक्तिकाल में पुष्टिमार्गीय अष्टछाप के कवि नंददास जी का जन्म जनपद–कासगंज के सोरों शूकरक्षेत्र अन्तर्वेदी रामपुर (वर्त्तमान–श्यामपुर) गाँव निवासी भारद्वाज गोत्रीय सनाढ्य ब्राह्मण पं0 सच्चिदानंद शुक्ल के पुत्र पं0 जीवाराम शुक्ल की पत्नी चंपा के गर्भ से सम्वत्–1572 विक्रमी में हुआ था।

पं0 सच्चिदानंद के दो पुत्र थे, पं0 आत्माराम शुक्ल और पं0 जीवाराम शुक्ल। पं0 आत्माराम शुक्ल एवं हुलसी के पुत्र का नाम महाकवि गोस्वामी तुलसीदास था, जिन्होंने श्रीरामचरितमानस महाग्रंथ की रचना की थी। नंददास जी के छोटे भाई का नाम चँदहास था। नंददास जी, तुलसीदास जी के सगे चचेरे भाई थे। नंददास जी के पुत्र का नाम कृष्णदास था। नंददास ने कई रचनाएँ–रसमंजरी, अनेकार्थमंजरी, भागवत्–दशम स्कंध, श्याम सगाई, गोवर्द्धन लीला, सुदामा चरित, विरहमंजरी, रूप मंजरी, रुक्मिणी मंगल, रासपंचाध्यायी, भँवर गीत, सिद्धांत पंचाध्यायी, नंददास पदावली हैं। पं. आत्याराम शुक्ल नाम के ब्राह्मण रहते थे। उनकी धर्मपत्नी का नाम हुलसी था। संवत् 1511 के श्रावण मास के शुक्लपक्ष की सप्तमी तिथि के दिन अभुक्त मूल नक्षत्र में इन्हीं दम्पति के यहाँ तुलसीदास का जन्म हुआ। प्रचलित जनश्रुति के अनुसार शिशु बारह महीने तक माँ के गर्भ में रहने के कारण अत्यधिक हृष्ट पुष्ट था और उसके मुख में दाँत दिखायी दे रहे थे। जन्म लेने के साथ ही उसने राम नाम का उच्चारण किया जिससे उसका नाम रामबोला पड़ गया। उनके जन्म के दूसरे ही दिन माँ का निधन हो गया। पिता ने किसी और अनिष्ट से बचने के लिये बालक को चुनियाँ नाम की एक दासी को सौंप दिया और स्वयं विरक्त हो गये। जब रामबोला साढे पाँच वर्ष का हुआ तो चुनियाँ भी नहीं रही। वह गली–गली भटकता हुआ अनाथों की तरह जीवन जीने को विवश हो गया।

बचपन

भगवान शंकरजी की प्रेरणा से रामशैल पर रहनेवाले श्री अनन्तानन्द जी के प्रिय शिष्य श्रीनरहर्यानन्द जी (नरहरि बाबा) ने इस रामबोला के नाम से बहुचर्चित हो चुके इस बालक को ढूँढ निकाला और विधिवत उसका नाम तुलसीराम रखा। तदुपरान्त वे उसे अयोध्या (उत्तर प्रदेश) ले गये और वहाँ संवत् 1561 माघ शुक्ला पंचमी (शुक्रवार) को उसका यज्ञोपवीत–संस्कार सम्पन्न कराया। संस्कार के समय भी बिना सिखाये ही बालक रामबोला ने गायत्री–मन्त्र का स्पष्ठ उच्चारण किया, जिसे देखकर सब लोग चकित हो गये। इसके बाद नरहरि बाबा ने वैष्णवों के पाँच संस्कार करके बालक को राम–मन्त्र की दीक्षा दी और अयोध्या में ही रहकर उसे विद्याध्ययन कराया। बालक रामबोला की बुद्धि बड़ी प्रखर थी। वह एक ही बार में गुरू–मुख से जो सुन लेता, उसे वह कंठस्थ हो जाता। वहाँ से कुछ काल के बाद गुरू–शिष्य दोनों शूकरक्षेत्र (सोरों)

पहुँचे। वहाँ नरहरि बाबा ने बालक को राम-कथा सुनायी किन्तु वह उसे भली-भाँति समझ न आयी।

ज्येष्ठ शुक्ल त्रयोदशी, गुरूवार, संवत् 1583 को 29 वर्ष की आयु में राजापुर से थोडी ही दूर यमुना के उस पार स्थित एक गाँव की अति सुन्दरी भारद्वाज गोत्र की कन्या रत्नावली के साथ उनका विवाह हुआ। चूँकि गौना नहीं हुआ था अत: कुछ समय के लिये वे काशी चले गये और वहाँ शेषसनातन जी के पास रहकर वेद-वेदांग के अध्ययन में जुट गये। वहाँ रहते हुए अचानक एक दिन उन्हें अपनी पत्नी की याद आयी और वे व्याकुल होने लगे। जब नहीं रहा गया तो गुरूजी से आज्ञा लेकर वे अपनी जन्मभूमि राजापुर लौट आये। पत्नी रत्नावली चूँकि मायके में ही थी क्योंकि तब तक उनका गौना नहीं हुआ था अत: तुलसीराम ने भयंकर अँधेरी रात में उफनती यमुना नदी तैरकर पार की और सीधे अपनी पत्नी के शयन-कक्ष में जा पहुँचे। रत्नावली इतनी रात गये अपने पति को अकेले आया देख कर आश्चर्यचकित हो गयी। उसने लोक-लाज के भय से जब उन्हें चुपचाप वापस जाने को कहा तो वे उससे उसी समय घर चलने का आग्रह करने लगे। उनकी इस अप्रत्याशित जिद से खीझकर रत्नावली ने स्वरचित एक दोहे के माध्यम से जो शिक्षा उन्हें दी उसने ही तुलसीराम को तुलसीदास बना दिया। रत्नावली ने जो दोहा कहा था वह इस प्रकार है–

अस्थि चर्म मय देह यह, ता सों ऐसी प्रीति !
नेकु जो होती राम से, तो काहे भव-भीत ?

यह दोहा सुनते ही उन्होंने उसी समय पत्नी को वहीं उसके पिता के घर छोड़ दिया और वापस अपने गाँव राजापुर लौट गये। राजापुर में अपने घर जाकर जब उन्हें यह पता चला कि उनकी अनुपस्थिति में उनके पिता भी नहीं रहे और पूरा घर नष्ट हो चुका है तो उन्हें और भी अधिक कष्ट हुआ। उन्होंने विधि-विधानपूर्वक अपने पिता जी का श्राद्ध किया और गाँव में ही रहकर लोगों को भगवान राम की कथा सुनाने लगे।

भगवान श्री राम जी से भेंट

कुछ काल राजापुर रहने के बाद वे पुन: काशी चले गये और वहाँ की जनता को राम-कथा सुनाने लगे। कथा के दौरान उन्हें एक दिन मनुष्य के वेष में एक प्रेत मिला, जिसने उन्हें हनुमान जी का पता बतलाया। हनुमान जी से मिलकर तुलसीदास ने उनसे श्रीरघुनाथजी का दर्शन कराने की प्रार्थना की।

हनुमान्जी ने कहा–'तुम्हें चित्रकूट में रघुनाथजी दर्शन होंगें।' इस पर तुलसीदास जी चित्रकूट की ओर चल पड़े।

चित्रकूट पहुँच कर उन्होंने रामघाट पर अपना आसन जमाया। एक दिन वे प्रदक्षिणा करने निकले ही थे कि यकायक मार्ग में उन्हें श्रीराम के दर्शन हुए। उन्होंने देखा कि दो बड़े ही सुन्दर राजकुमार घोड़ों पर सवार होकर धनुष–बाण लिये जा रहे हैं। तुलसीदास उन्हें देखकर आकर्षित तो हुए, परन्तु उन्हें पहचान न सके। तभी पीछे से हनुमान जी ने आकर जब उन्हें सारा भेद बताया तो वे पश्चाताप करने लगे। इस पर हनुमान जी ने उन्हें सात्वना दी और कहा प्रातःकाल फिर दर्शन होंगे।

संवत् 1607 की मौनी अमावस्या को बुधवार के दिन उनके सामने भगवान श्री राम जी पुनः प्रकट हुए। उन्होंने बालक रूप में आकर तुलसीदास से कहा–'बाबा! हमें चन्दन चाहिये क्या आप हमें चन्दन दे सकते हैं?' हनुमान घ्जी ने सोचा, कहीं वे इस बार भी धोखा न खा जायें, इसलिये उन्होंने तोते का रूप धारण करके यह दोहा कहा–

चित्रकूट के घाट पर, भइ सन्तन की भीर।
तुलसिदास चन्दन घिसें, तिलक देत रघुबीर।।

तुलसीदास भगवान श्री राम जी की उस अद्‌भुत छवि को निहार कर अपने शरीर की सुध–बुध ही भूल गये। अन्ततोगत्वा भगवान ने स्वयं अपने हाथ से चन्दन लेकर अपने तथा तुलसीदास जी के मस्तक पर लगाया और अन्तर्ध्यान हो गये।

संस्कृत में पद्य-रचना

संवत् 1628 में वह हनुमान जी की आज्ञा लेकर अयोध्या की ओर चल पड़े। उन दिनों प्रयाग में माघ मेला लगा हुआ था। वे वहाँ कुछ दिन के लिये ठहर गये। पर्व के छः दिन बाद एक वटवृक्ष के नीचे उन्हें भारद्वाज और याज्ञवल्क्य मुनि के दर्शन हुए। वहाँ उस समय वहीं कथा हो रही थी, जो उन्होंने सूकरक्षेत्र में अपने गुरू से सुनी थी। माघ मेला समाप्त होते ही तुलसीदास जी प्रयाग से पुनः वापस काशी आ गये और वहाँ के प्रहलादघाट पर एक ब्राह्मण के घर निवास किया। वहीं रहते हुए उनके अन्दर कवित्व–शक्ति का प्रस्फुरण हुआ और वे संस्कृत में पद्य–रचना करने लगे। परन्तु दिन में वे जितने पद्य रचते, रात्रि में वे सब लुप्त हो जाते। यह घटना रोज घटती। आठवें दिन तुलसीदास जी

को स्वप्न हुआ। भगवान शंकर ने उन्हें आदेश दिया कि तुम अपनी भाषा में काव्य रचना करो। तुलसीदास जी की नींद उचट गयी। वे उठकर बैठ गये। उसी समय भगवान शिव और पार्वती उनके सामने प्रकट हुए। तुलसीदास जी ने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। इस पर प्रसन्न होकर शिव जी ने कहा-'तुम अयोध्या में जाकर रहो और हिन्दी में काव्य-रचना करो। मेरे आशीर्वाद से तुम्हारी कविता सामवेद के समान फलवती होगी।' इतना कहकर गौरीशंकर अन्तर्धान हो गये। तुलसीदास जी उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर काशी से सीधे अयोध्या चले गये।

रामचरितमानस की रचना

संवत् 1631 का प्रारम्भ हुआ। दैवयोग से उस वर्ष रामनवमी के दिन वैसा ही योग आया जैसा त्रेतायुग में राम-जन्म के दिन था। उस दिन प्रातःकाल तुलसीदास जी ने श्रीरामचरितमानस की रचना प्रारम्भ की। दो वर्ष, सात महीने और छब्बीस दिन में यह अद्भुत ग्रन्थ सम्पन्न हुआ। संवत् 1633 के मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष में राम-विवाह के दिन सातों काण्ड पूर्ण हो गये।

तुलसीदास पर भारत सरकार द्वारा जारी डाक टिकट

इसके बाद भगवान की आज्ञा से तुलसीदास जी काशी चले आये। वहाँ उन्होंने भगवान विश्वनाथ और माता अन्नपूर्णा को श्रीरामचरितमानस सुनाया। रात को पुस्तक विश्वनाथ-मन्दिर में रख दी गयी। प्रातःकाल जब मन्दिर के पट खोले गये तो पुस्तक पर लिखा हुआ पाया गया-सत्यं शिवं सुन्दरम् जिसके नीचे भगवान शंकर की सही (पुष्टि) थी। उस समय वहाँ उपस्थित लोगों ने 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' की आवाज भी कानों से सुनी।

इधर काशी के पण्डितों को जब यह बात पता चली तो उनके मन में ईर्ष्या उत्पन्न हुई। वे दल बनाकर तुलसीदास जी की निन्दा और उस पुस्तक को नष्ट करने का प्रयत्न करने लगे। उन्होंने पुस्तक चुराने के लिये दो चोर भी भेजे। चोरों ने जाकर देखा कि तुलसीदास जी की कुटी के आसपास दो युवक धनुषबाण लिये पहरा दे रहे हैं। दोनों युवक बड़े ही सुन्दर क्रमशः श्याम और गौर वर्ण के थे। उनके दर्शन करते ही चोरों की बुद्धि शुद्ध हो गयी। उन्होंने उसी समय से चोरी करना छोड़ दिया और भगवान के भजन में लग गये। तुलसीदास जी ने अपने लिये भगवान को कष्ट हुआ जान कुटी का सारा समान लुटा दिया और पुस्तक अपने मित्र टोडरमल (अकबर के नौरत्नों में एक) के यहाँ रखवा दी।

इसके बाद उन्होंने अपनी विलक्षण स्मरण शक्ति से एक दूसरी प्रति लिखी। उसी के आधार पर दूसरी प्रतिलिपियाँ तैयार की गयीं और पुस्तक का प्रचार दिनों-दिन बढ़ने लगा।

इधर काशी के पण्डितों ने और कोई उपाय न देख श्री मधुसूदन सरस्वती नाम के महापण्डित को उस पुस्तक को देखकर अपनी सम्मति देने की प्रार्थना की। मधुसूदन सरस्वती जी ने उसे देखकर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और उस पर अपनी ओर से यह टिप्पणी लिख दी-

आनन्दकानने ह्यास्मिंजंगमस्तुलसीतरुः।
कवितामंजरी भाति रामभ्रमरभूषिता॥

इसका हिन्दी में अर्थ इस प्रकार है-'काशी के आनन्द-वन में तुलसीदास साक्षात तुलसी का पौधा है। उसकी काव्य-मंजरी बड़ी ही मनोहर है, जिस पर श्रीराम रूपी भँवरा सदा मँडराता रहता है।'

पण्डितों को उनकी इस टिप्पणी पर भी संतोष नहीं हुआ। तब पुस्तक की परीक्षा का एक अन्य उपाय सोचा गया। काशी के विश्वनाथ-मन्दिर में भगवान विश्वनाथ के सामने सबसे ऊपर वेद, उनके नीचे शास्त्र, शास्त्रों के नीचे पुराण और सबके नीचे रामचरितमानस रख दिया गया। प्रातःकाल जब मन्दिर खोला गया तो लोगों ने देखा कि श्रीरामचरितमानस वेदों के ऊपर रखा हुआ है। अब तो सभी पण्डित बड़े लज्जित हुए। उन्होंने तुलसीदास जी से क्षमा माँगी और भक्ति-भाव से उनका चरणोदक लिया।

मृत्यु

तुलसीदास जी जब काशी के विख्यात् घाट असीघाट पर रहने लगे तो एक रात कलियुग मूर्त रूप धारण कर उनके पास आया और उन्हें पीड़ा पहुँचाने लगा। तुलसीदास जी ने उसी समय हनुमान जी का ध्यान किया। हनुमान जी ने साक्षात् प्रकट होकर उन्हें प्रार्थना के पद रचने को कहा, इसके पश्चात् उन्होंने अपनी अन्तिम कृति विनय-पत्रिका लिखी और उसे भगवान के चरणों में समर्पित कर दिया। श्रीराम जी ने उस पर स्वयं अपने हस्ताक्षर कर दिये और तुलसीदास जी को निर्भय कर दिया।

संवत् 1680 में श्रावण कृष्ण तृतीया शनिवार को तुलसीदास जी ने 'राम-राम' कहते हुए अपना शरीर परित्याग किया।

तुलसी-स्तवन

तुलसीदास जी की हस्तलिपि अत्यधिक सुन्दर थी लगता है जैसे उस युग में उन्होंने कैलोग्राफी की कला आती थी। उनके जन्म-स्थान राजापुर के एक मन्दिर में श्रीरामचरितमानस के अयोध्याकाण्ड की एक प्रति सुरक्षित रखी हुई है। उसी प्रति के साथ रखे हुए एक कवि मदनलाल वर्मा 'क्रान्त' की हस्तलिपि में तुलसी के व्यक्तित्त्व व कृतित्त्व को रेखांकित करते हुए निम्नलिखित दो छन्द भी उल्लेखनीय हैं जिन्हें हिन्दी अकादमी दिल्ली की पत्रिका इन्द्रप्रस्थ भारती ने सर्वप्रथम प्रकाशित किया था। इनमें पहला छन्द सिंहावलोकन है जिसकी विशेषता यह है कि प्रत्येक चरण जिस शब्द से समाप्त होता है उससे आगे का उसी से प्रारम्भ होता है। प्रथम व अन्तिम शब्द भी एक ही रहता है। काव्यशास्त्र में इसे अद्भुत छन्द कहा गया है। यहीं छन्द एक अन्य पत्रिका साहित्यपरिक्रमा के तुलसी जयन्ती विशेषांक में भी प्रकाशित हुए थे वहीं से उद्धृत किये गये हैं–

तुलसी ने मानस लिखा था जब जाति-पाँति-सम्प्रदाय-ताप से धरम-धरा झुलसी।
झुलसी धरा के तृण-संकुल पे मानस की पावसी-फुहार से हरीतिमा-सी हुलसी।
हुलसी हिये में हरि-नाम की कथा अनन्त सन्त के समागम से फूली-फली कुल-सी।
कुल-सी लसी जो प्रीति राम के चरित्र में तो राम-रस जग को चखाय गये तुलसी।

आत्मा थी राम की पिता में सो प्रताप-पुन्ज आप रूप गर्भ में समाय गये तुलसी।
जन्मते ही राम-नाम मुख से उचारि निज नाम रामबोला रखवाय गये तुलसी।
रत्नावली-सी अर्द्धांगिनी सों सीख पाय राम सों प्रगाढ प्रीति पाय गये तुलसी।
मानस में राम के चरित्र की कथा सुनाय राम-रस जग को चखाय गये तुलसी।

तुलसीदास की रचनाएँ

अपने 126 वर्ष के दीर्घ जीवन-काल में तुलसीदास ने कालक्रमानुसार निम्नलिखित कालजयी ग्रन्थों की रचनाएँ कीं–

रामललानहछू, वैराग्यसंदीपनी, रामाज्ञाप्रश्न, जानकी-मंगल, रामचरितमानस, सतसई, पार्वती-मंगल, गीतावली, विनय-पत्रिका, कृष्ण-गीतावली, बरवै रामायण, दोहावली और कवितावली।

इनमें से रामचरितमानस, विनय-पत्रिका, कवितावली, गीतावली जैसी कृतियों के विषय में किसी कवि की यह आर्षवाणी सटीक प्रतीत होती है– पश्य देवस्य काव्यं, न मृणोति न जीर्यति। अर्थात देवपुरुषों का काव्य देखिये जो न मरता न पुराना होता है।

लगभग चार सौ वर्ष पूर्व तुलसीदास जी ने अपनी कृतियों की रचना की थी। आधुनिक प्रकाशन-सुविधाओं से रहित उस काल में भी तुलसीदास का काव्य जन-जन तक पहुँच चुका था। यह उनके कवि रूप में लोकप्रिय होने का प्रत्यक्ष प्रमाण है। मानस जैसे वृहद् ग्रन्थ को कण्ठस्थ करके सामान्य पढ़े-लिखे लोग भी अपनी शुचिता एवं ज्ञान के लिए प्रसिद्ध होने लगे थे।

रामचरितमानस तुलसीदास जी का सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रन्थ रहा है। उन्होंने अपनी रचनाओं के सम्बन्ध में कहीं कोई उल्लेख नहीं किया है, इसलिए प्रामाणिक रचनाओं के सम्बन्ध में अन्तःसाक्ष्य का अभाव दिखायी देता है। नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ इस प्रकार हैं–

रामचरितमानस
रामललानहछू
वैराग्य-संदीपनी
बरवै रामायण
पार्वती-मंगल
जानकी-मंगल
रामाज्ञाप्रश्न
दोहावली
कवितावली
गीतावली
श्रीकृष्ण-गीतावली
विनय-पत्रिका
सतसई
छंदावली रामायण
कुंडलिया रामायण

राम शलाका
संकट मोचन
करखा रामायण
रोला रामायण
झूलना
छप्पय रामायण
कवित्त रामायण
कलिधर्माधर्म निरूपण
हनुमान चालीसा

'एनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एंड एथिक्स' में ग्रियर्सन ने भी उपरोक्त प्रथम बारह ग्रन्थों का उल्लेख किया है।

कुछ ग्रंथों का संक्षिप्त विवरण

रामललानहछू

यह संस्कार गीत है। इस गीत में कतिपय उल्लेख राम-विवाह की कथा से भिन्न हैं।

गोद लिहैं कौशल्या बैठि रामहिं वर हो।
सोभित दूलह राम सीस, पर आंचर हो।।

वैराग्य संदीपनी

वैराग्य संदीपनी को माताप्रसाद गुप्त ने अप्रामाणिक माना है, पर आचार्य चंद्रवली पांडे इसे प्रामाणिक और तुलसी की आरंभिक रचना मानते हैं। कुछ और प्राचीन प्रतियों के उपलब्ध होने से ठोस प्रमाण मिल सकते हैं। संत महिमा वर्णन का पहला सोरठा पेश है–

को बरनै मुख एक, तुलसी महिमा संत।
जिन्हके विमल विवेक, सेष महेस न कहि सकत।।

बरवै रामायण

विद्वानों ने इसे तुलसी की रचना घोषित किया है। शैली की दृष्टि से यह तुलसीदास की प्रामाणिक रचना है। इसकी खंडित प्रति ही ग्रंथावली में संपादित है।

पार्वती-मंगल

यह तुलसी की प्रामाणिक रचना प्रतीत होती है। इसकी काव्यात्मक प्रौढ़ता तुलसी सिद्धांत के अनुकूल है। कविता सरल, सुबोध रोचक और सरस है। ''जगत मातु पितु संभु भवानी'' की श्रृंगारिक चेष्टाओं का तनिक भी पुट नहीं है। लोक रीति इतनी यथास्थिति से चित्रित हुई है कि यह संस्कृत के शिव काव्य से कम प्रभावित है और तुलसी की मति की भक्त्यात्मक भूमिका पर विरचित कथा काव्य है। व्यवहारों की सुष्ठुता, प्रेम की अनन्यता और वैवाहिक कार्यक्रम की सरसता को बड़ी सावधानी से कवि ने अंकित किया है। तुलसीदास अपनी इस रचना से अत्यन्त संतुष्ट थे, इसीलिए इस अनासक्त भक्त ने केवल एक बार अपनी मति की सराहना की है–

प्रेम पाट पटडोरि गौरि-हर-गुन मनि।
मंगल हार रचेउ कवि मति मृगलोचनि॥

जानकी-मंगल

विद्वानों ने इसे तुलसीदास की प्रामाणिक रचनाओं में स्थान दिया है। पर इसमें भी क्षेपक है।

पंथ मिले भृगुनाथ हाथ फरसा लिए।
डाँटहि आँखि देखाइ कोप दारुन किए॥
राम कीन्ह परितोष रोस रिस परिहरि।
चले सौंपि सारंग सुफल लोचन करि॥
रघुबर भुजबल देख उछाह बरातिन्ह।
मुदित राउ लखि सन्मुख विधि सब भाँतिन्ह॥

तुलसी के मानस के पूर्व वाल्मीकीय रामायण की कथा ही लोक प्रचलित थी। काशी के पंडितों से मानस को लेकर तुलसीदास का मतभेद और मानस की प्रति पर विश्वनाथ का हस्ताक्षर संबंधी जनश्रुति प्रसिद्ध है।

रामाज्ञा प्रश्न

यह ज्योतिष शास्त्रीय पद्धति का ग्रंथ है। दोहों, सप्तकों और सर्गों में विभक्त यह ग्रंथ रामकथा के विविध मंगल एवं अमंगलमय प्रसंगों की मिश्रित रचना है। काव्य की दृष्टि से इस ग्रंथ का महत्त्व नगण्य है। सभी इसे तुलसीकृत

मानते हैं। इसमें कथा-श्रृंखला का अभाव है और वाल्मीकीय रामायण के प्रसंगों का अनुवाद अनेक दोहों में है।

दोहावली

दोहावली में अधिकांश दोहे मानस के हैं। कवि ने चातक के व्याज से दोहों की एक लंबी श्रृंखला लिखकर भक्ति और प्रेम की व्याख्या की है। दोहावली दोहा संकलन है। मानस के भी कुछ कथा निरपेक्ष दोहों को इसमें स्थान है। संभव है कुछ दोहे इसमें भी प्रक्षिप्त हों, पर रचना की अप्रामाणिकता असंदिग्ध है।

कवितावली

कवितावली तुलसीदास की रचना है, पर सभा संस्करण अथवा अन्य संस्करणों में प्रकाशित यह रचना पूरी नहीं प्रतीत होती है। कवितावली एक प्रबंध रचना है। कथानक में अप्रासंगिकता एवं शिथिलता तुलसी की कला का कलंक कहा जायेगा।

गीतावली

गीतावली में गीतों का आधार विविध कांड का रामचरित ही रहा है। यह ग्रंथ रामचरितमानस की तरह व्यापक जनसम्पर्क में कम गया प्रतीत होता है। इसलिए इन गीतों में परिवर्तन-परिवर्द्धन दृष्टिगत नहीं होता है। गीतावली में गीतों के कथा-संदर्भ तुलसी की मति के अनुरूप हैं। इस दृष्टि से गीतावली का एक गीत लिया जा सकता है–

कैकेयी जौ लौं जियत रही।
तौ लौं बात मातु सों मुह भरि भरत न भूलि कही।।
मानी राम अधिक जननी ते जननिहु गँसन गही।
सीय लखन रिपुदवन राम-रुख लखि सबकी निबही।।
लोक-बेद-मरजाद दोष गुन गति चित चखन चही।
तुलसी भरत समुझि सुनि राखी राम सनेह सही।।

इसमें भरत और राम के शील का उत्कर्ष तुलसीदास ने व्यक्त किया है। गीतावली के उत्तरकांड में मानस की कथा से अधिक विस्तार है। इसमें सीता का वाल्मीकि आश्रम में भेजा जाना वर्णित है। इस परित्याग का औचित्य निर्देश इन पंक्तियों में मिलता है–

भोग पुनि पितु-आयु को, सोउ किए बनै बनाउ।
परिहरे बिनु जानकी नहीं और अनघ उपाउ॥
पालिबे असिधार-ब्रत प्रिय प्रेम-पाल सुभाउ।
होइ हित केहि भांति, नित सुविचारु नहिं चित चाउ॥

श्रीकृष्ण गीतावली

श्रीकृष्ण गीतावली भी गोस्वामीजी की रचना है। श्रीकृष्ण-कथा के कतिपय प्रकरण गीतों के विषय हैं।

हनुमानबाहुक

यह गोस्वामी जी की हनुमत-भक्ति संबंधी रचना है। पर यह एक स्वतंत्र रचना है। इसके सभी अंश प्रामाणिक प्रतीत होते हैं।

तुलसीदास को राम प्यारे थे, राम की कथा प्यारी थी, राम का रूप प्यारा था और राम का स्वरूप प्यारा था। उनकी बुद्धि, राग, कल्पना और भावुकता पर राम की मर्यादा और लीला का आधिपत्य था। उनक आंखों में राम की छवि बसती थी। सब कुछ राम की पावन लीला में व्यक्त हुआ है, जो रामकाव्य की परम्परा की उच्चतम उपलब्धि है। निर्दिष्ट ग्रंथों में इसका एक रस प्रतिबिंब है।

तुलसीदास की रचनाएँ

अपने दीर्घ जीवन-काल में तुलसीदास ने कालक्रमानुसार निम्नलिखित कालजयी ग्रन्थों की रचनाएं कीं-रामललानहछू, वैराग्यसंदीपनी, रामाज्ञाप्रश्न, जानकी-मंगल, रामचरितमानस, सतसई, पार्वती-मंगल, गीतावली, विनय-पत्रिका, कृष्ण-गीतावली, बरवै रामायण, दोहावली और कवितावली (बाहुक सहित)। इनमें से रामचरितमानस, विनयपत्रिका, कवितावली, गीतावली जैसी कृतियों के विषय में यह आर्षवाणी सही घटित होती है– ''पश्य देवस्य काव्यं, न ममार न जीर्यति।''

तुलसीदास के जीवन की ऐतिहासिक घटनाएं

तुलसीदास के जीवन की कुछ घटनाएं एवं तिथियां भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। कवि के जीवन-वृत्त और महिमामय व्यक्तित्त्व पर उनसे प्रकाश पड़ता है।

यज्ञोपवीत

मूल गोसाईं चरित के अनुसार तुलसीदास का यज्ञोपवीत माघ शुक्ला पंचमी सं0 1561 में हुआ–

पन्द्रह सै इकसठ माघसुदी। तिथि पंचमि औ भृगुवार उदी।
सरजू तट विप्रन जग्य किए। द्विज बालक कहं उपबीत किए॥

कवि के माता–पिता की मृत्यु कवि के बाल्यकाल में ही हो गई थी।

विवाह

जनश्रुतियों एवं रामायणियों के विश्वास के अनुसार तुलसीदास विरक्त होने के पूर्व भी कथा–वाचन करते थे। युवक कथावाचक की विलक्षण प्रतिभा और दिव्य भगवद्भक्ति से प्रभावित होकर रत्नावली के पिता पं0 दीन बंधु पाठक ने एक दिन, कथा के अन्त में, श्रोताओं के विदा हो जाने पर, अपनी बारह वर्षीया कन्या उसके चरणों में सौंप दी। मूल गोसाईं चरित के अनुसार रत्नावली के साथ युवक तुलसी का यह वैवाहिक सूत्र सं0 1583 की ज्येष्ठ शुक्ला त्रयोदशी, दिन गुरूवार को जुड़ा था–

पंद्रह सै पार तिरासी विषै।
सुभ जेठ सुदी गुरू तेरसि पै।
अधिराति लगै जु फिरै भंवरी।
दुलहा दुलही की परी पंवरी॥

आराध्य–दर्शन

भक्त शिरोमणि तुलसीदास को अपने आराध्य के दर्शन भी हुए थे। उनके जीवन के वे सर्वोत्तम और महत्तम क्षण रहे होंगे। लोक–श्रुतियों के अनुसार तुलसीदास को आराध्य के दर्शन चित्रकूट में हुए थे। आराध्य युगल राम–लक्ष्मण को उन्होंने तिलक भी लगाया था–

चित्रकूट के घाट पै, भई संतन के भीर।
तुलसीदास चंदन घिसै, तिलक देत रघुबीर॥

मूल गोसाईं चरित के अनुसार कवि के जीवन की वह पवित्रतम तिथि माघ अमावस्या (बुधवार), सं0 1607 को बताया गया है।

सुखद अमावस मौनिया, बुध सोरह सै सात।
जा बैठे तिसु घाट पै, विरही होतहि प्रात॥

गोस्वामी तुलसीदास के महिमान्वित व्यक्तित्त्व और गरिमान्वित साधना को ज्योतित करने वाली एक और घटना का उल्लेख मूल गोसाईं चरित में किया गया है। तुलसीदास नंददास से मिलने बृंदावन पहुंचे। नंददास उन्हें कृष्ण मंदिर में ले गए। तुलसीदास अपने आराध्य के अनन्य भक्त थे। तुलसीदास राम और कृष्ण की तात्त्विक एकता स्वीकार करते हुए भी राम-रूप श्यामघन पर मोहित होने वाले चातक थे। अत: घनश्याम कृष्ण के समक्ष नतमस्तक कैसे होते। उनका भाव-विभोर कवि का कण्ठ मुखर हो उठा-

कहा कहौं छवि आज की, भले बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक तब नवै, जब धनुष बान लो हाथ॥

इतिहास साक्षी दे या नहीं दे, किन्तु लोक-श्रुति साक्षी देती है कि कृष्ण की मूर्ति राम की मूर्ति में बदल गई थी।

रत्नावली का महाप्रस्थान

रत्नावली का बैकुंठगमन 'मूल गोसाईं चरित' के अनुसार सं. 1589 में हुआ। किंतु राजापुर की सामग्रियों से उसके दीर्घ जीवन का समर्थन होता है।

मीराबाई का पत्र

महात्मा बेनी माधव दास ने मूल गोसाईं चरित में मीराबाई और तुलसीदास के पत्राचार का उल्लेख किया है। अपने परिवार वालों से तंग आकर मीराबाई ने तुलसीदास को पत्र लिखा। मीराबाई पत्र के द्वारा तुलसीदास से दीक्षा ग्रहण करनी चाही थी। मीरा के पत्र के उत्तर में विनयपत्रिका का निम्नांकित पद की रचना की गई।

जाके प्रिय न राम वैदेही
तजिए ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही।
सो छोड़िये
तज्यो पिता प्रहलाद, विभीषन बंधु, भरत महतारी।
बलिगुरू तज्यो कंत ब्रजबनितन्हि, भये मुद मंगलकारी।
नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहां लौं।
अंजन कहां आंखि जेहि फूटै, बहुतक कहौं कहां लौं।
तुलसी सो सब भांति परमहित पूज्य प्रान ते प्यारो।

जासों हाय सनेह राम-पद, एतोमतो हमारो॥
तुलसीदास ने मीराबाई को भक्ति-पथ के बाधकों के परित्याग का परामर्श दिया था।

केशवदास से संबद्ध घटना

मूल गोसाई चरित के अनुसार केशवदास गोस्वामी तुलसीदास से मिलने काशी आए थे। उचित सम्मान न पा सकने के कारण वे लौट गए।

अकबर के दरबार में बंदी बनाया जाना

तुलसीदास की ख्याति से अभिभूत होकर अकबर ने तुलसीदास को अपने दरबार में बुलाया और कोई चमत्कार प्रदर्शित करने को कहा। यह प्रदर्शन-प्रियता तुलसीदास की प्रकृति और प्रवृत्ति के प्रतिकूल थी, अतः ऐसा करने से उन्होंने इनकार कर दिया। इस पर अकबर ने उन्हें बंदी बना लिया। तदुपरांत राजधानी और राजमहल में बंदरों का अभूतपूर्व एवं अद्‌भुत उपद्रव शुरू हो गया। अकबर को बताया गया कि यह हनुमान जी का क्रोध है। अकबर को विवश होकर तुलसीदास को मुक्त कर देना पड़ा।

जहांगीर को तुलसी-दर्शन

जिस समय वे अनेक विरोधों का सामना कर सफलताओं और उपलब्धियों के सर्वोच्च शिखर का स्पर्श कर रहे थे, उसी समय दर्शनार्थ जहांगीर के आने का उल्लेख किया गया मिलता है।

दांपत्य जीवन

सुखद दांपत्य जीवन का आधार अर्थ प्राचुर्य नहीं, पति-पत्नि का पारस्परिक प्रेम, विश्वास और सहयोग होता है। तुलसीदास का दांपत्य जीवन आर्थिक विपन्नता के बावजूद संतुष्ट और सुखी था। भक्तमाल के प्रियादास की टीका से पता चलता है कि जीवन के वसंत काल में तुलसी पत्नी के प्रेम में सराबोर थे। पत्नी का वियोग उनके लिए असह्य था। उनकी पत्नी-निष्ठा दिव्यता को उल्लंघित कर वासना और आसक्ति की ओर उन्मुख हो गई थी।

रत्नावली के मायके चले जाने पर शव के सहारे नदी को पार करना और सर्प के सहारे दीवाल को लांघकर अपने पत्नी के निकट पहुंचना। पत्नी की

फटकार ने भोगी को जोगी, आसक्त को अनासक्त, गृहस्थ को सन्यासी और भांग को भी तुलसीदल बना दिया। वासना और आसक्ति के चरम सीमा पर आते ही उन्हें दूसरा लोक दिखाई पड़ने लगा। इसी लोक में उन्हें मानस और विनयपत्रिका जैसी उत्कृष्टतम रचनाओं की प्रेरणा और सिसृक्षा मिली।

वैराग्य की प्रेरणा

तुलसीदास के वैराग्य ग्रहण करने के दो कारण हो सकते हैं। प्रथम, अतिशय आसक्ति और वासना की प्रतिक्रिया और दूसरा, आर्थिक विपन्नता। पत्नी की फटकार ने उनके मन के समस्त विकारों को दूर कर दिया। दूसरे कारण विनयपत्रिका के निम्नांकित पदांशों से प्रतीत होता है कि आर्थिक संकटों से परेशान तुलसीदास को देखकर सन्तों ने भगवान राम की शरण में जाने का परामर्श दिया–

दुखित देखि संतन कह्यो, सोचौ जनि मन मोहूं
तो से पसु पातकी परिहरे न सरन गए रघुबर ओर निबाहूं।।
तुलसी तिहारो भये भयो सुखी प्रीति-प्रतीति विनाहू।
नाम की महिमा, सीलनाथ को, मेरो भलो बिलोकि, अबतें।।

रत्नावली ने भी कहा था कि इस अस्थि-चर्ममय देह में जैसी प्रीति है, ऐसी ही प्रीति अगर भगवान राम में होती तो भव-भीति मिट जाती। इसीलिए वैराग्य की मूल प्रेरणा भगवदाराधन ही है।

तुलसी का निवास-स्थान

विरक्त हो जाने के उपरांत तुलसीदास ने काशी को अपना मूल निवास-स्थान बनाया। वाराणसी के तुलसीघाट, घाट पर स्थित तुलसीदास द्वारा स्थापित अखाड़ा, मानस और विनयपत्रिका के प्रणयन-कक्ष, तुलसीदास द्वारा प्रयुक्त होने वाली नाव के शेषांग, मानस की 1704 ई0 की पांडुलिपि, तुलसीदास की चरण-पादुकाएं आदि से पता चलता है कि तुलसीदास के जीवन का सर्वाधिक समय यहीं बीता। काशी के बाद कदाचित् सबसे अधिक दिनों तक अपने आराध्य की जन्मभूमि अयोध्या में रहे। मानस के कुछ अंश का अयोध्या में रचा जाना इस तथ्य का पुष्कल प्रमाण है।

तीर्थाटन के क्रम में वे प्रयाग, चित्रकूट, हरिद्वार आदि भी गए। बालकांड के ''दधि चिउरा उपहार अपारा। भरि-भरि कांवर चले कहारा'' तथा ''सूखत

धान परा जनु पानी'' से उनका मिथिला-प्रवास भी सिद्ध होता है। धान की खेती के लिए भी मिथिला ही प्राचीन काल से प्रसिद्ध रही है। धान और पानी का संबंध-ज्ञान बिना मिथिला में रहे तुलसीदास कदाचित् व्यक्त नहीं करते। इससे भी साबित होता है कि वे मिथिला में रहे।

विरोध और सम्मान

जनश्रुतियों और अनेक ग्रंथों से पता चलता है कि तुलसीदास को काशी के कुछ अनुदार पंडितों के प्रबल विरोध का सामना करना पड़ा था। उन पंडितों ने रामचरितमानस की पांडुलिपि को नष्ट करने और हमारे कवि के जीवन पर संकट ढालने के भी प्रयास किए थे। जनश्रुतियों से यह भी पता चलता है कि रामचरितमानस की विमलता और उदात्तता के लिए विश्वनाथ जी के मन्दिर में उसकी पांडुलिपि रखी गई थी और भगवान विश्वनाथ का समर्थन मानस को मिला था। अन्ततः, विरोधियों को तुलसी के सामने नतमस्तक होना पड़ा था। विरोधों का शमन होते ही कवि का सम्मान दिव्य-गंध की तरह बढ़ने और फैलने लगा। कवि के बढ़ते हुए सम्मान का साक्ष्य कवितावली की निम्नांकित पंक्तियां भी देती हैं–

जाति के सुजाति के कुजाति के पेटागिबस
खाए टूक सबके विदित बात दुनी सो।
मानस वचनकाय किए पाप सति भाय
राम को कहाय दास दगाबाज पुनी सो।
राम नाम को प्रभाउ पाउ महिमा प्रताप
तुलसी से जग मानियत महामुनी सो।
अति ही अभागो अनुरागत न राम पद
मूढ़ एतो बढ़ो अचरज देखि सुनी सो।।(कवितावली, उत्तर, 72)

तुलसी अपने जीवन-काल में ही वाल्मीकि के अवतार माने जाने लगे थे–

त्रेता काव्य निबंध करिव सत कोटि रमायन।
इक अच्छर उच्चरे ब्रह्महत्यादि परायन।।
पुनि भक्तन सुख देन बहुरि लीला विस्तारी।
राम चरण रस मत्त रहत अहनिसि व्रतधारी।
संसार अपार के पार को सगुन रूप नौका लिए।
कलि कुटिल जीव निस्तार हित बालमीकि तुलसी भए।।
(भक्तमाल, छप्पय 129)

पं0 रामनरेश त्रिपाठी ने काशी के सुप्रसिद्ध विद्वान और दार्शनिक श्री मधुसूदन सरस्वती को तुलसीदास का समसामयिक बताया है। उनके साथ उनके वादविवाद का उल्लेख किया है और मानस तथा तुलसी की प्रशंसा में लिखा उनका शोक भी उद्घृत किया है। उस 'लोक से भी तुलसीदास की प्रशस्ति का पता मालूम होता है।

आनन्दकाननेह्यस्मिन् जंगमस्तुलसीतरुः
कविता मंजरी यस्य, राम-भ्रमर भूषिता।

जीवन की सांध्य वेला

तुलसीदास को जीवन की सांध्य वेला में अतिशय शारीरिक कष्ट हुआ था। तुलसीदास बाहु की पीड़ा से व्यथित हो उठे तो असहाय बालक की भांति आराध्य को पुकारने लगे थे।

घेरि लियो रोगनि कुजोगनि कुलोगनि ज्यौं,
बासर जलद घन घटा धुकि धाई है।
बरसत बारि पोर जारिये जवासे जस,
रोष बिनु दोष, धूम-मूलमलिनाई है।।
करुनानिधान हनुमान महा बलबान,
हेरि हैसि हांकि फूंकि फौजें तै उड़ाई है।
खाए हुतो तुलसी कुरोग राढ़ राकसनि,
केसरी किसोर राखे बीर बरिआई है।
(हनुमान बाहुक, 35)

निम्नांकित पद से तीव्र पीड़ारूभूति और उसके कारण शरीर की दुर्दशा का पता चलता हैं-

पायेंपीर पेटपीर बांहपीर मुंहपीर
जर्जर सकल सरी पीर मई है।
देव भूत पितर करम खल काल ग्रह,
मोहि पर दवरि दमानक सी दई है।।
हौं तो बिन मोल के बिकानो बलि बारे हीं तें,
ओट राम नाम की ललाट लिखि लई है।
कुंभज के निकट बिकल बूड़े गोखुरनि,
हाय राम रा ऐरती हाल कहुं भई है।।

दोहावली के तीन दोहों में बाहु-पीड़ा की अनुभूति-

तुलसी तनु सर सुखजलज, भुजरुज गज बर जोर।
दलत दयानिधि देखिए, कपिकेसरी किसोर॥
भुज तरु कोटर रोग अहि, बरबस कियो प्रबेस।
बिहगराज बाहन तुरत, काढिअ मिटे कलेस॥
बाहु विटप सुख विहंग थलु, लगी कुपीर कुआगि।
राम कृपा जल सींचिए, बेगि दीन हित लागि॥

आजीवन काशी में भगवान विश्वनाथ का राम कथा का सुधापान कराते-कराते असी गंग के तीर पर सं0 1680 की श्रावण शुक्ला सप्तमी के दिन तुलसीदास पांच भौतिक शरीर का परित्याग कर शाश्वत यश:शरीर में प्रवेश कर गए।

कवितावली-तुलसीदास

कवितावली गोस्वामी तुलसीदास की प्रमुख रचनाओं में है। सोलहवीं शताब्दी में रची गयी कवितावली में श्री रामचन्द्र के इतिहास का वर्णन कवित्त, चौपाई, सवैया आदि छंदों में की गई है। रामचरितमानस के जैसे ही कवितावली में भी सात काण्ड हैं। ये छन्द ब्रजभाषा में लिखे गये हैं और इनकी रचना प्राय: उसी परिपाटी पर की गयी है जिस परिपाटी पर रीति काल का अधिकतर रीति-मुक्त काव्य लिखा गया।

रचना काल

16वीं शताब्दी में रची गयी कवितावली में श्री रामचन्द्र जी के इतिहास का वर्णन कवित्त, चौपाई, सवैया आदि छंदों में की गई है। 'कवितावली' के अधिकतर छंद केशव की 'कविप्रिया' तथा 'रसिकप्रिया' के रचना-काल के आस पास और बाद के हैं। जो छन्द उत्तरकाण्ड में आते हैं उनमें भी तुलसीदास के कवि-जीवन के उत्तरार्ध की ही घटनाओं का उल्लेख हुआ है। कुछ छन्द तो कवि के जीवन के निरे अंत के ज्ञात होते हैं। इसलिए 'कवितावली' के छन्दों का रचना-काल संख्या 1655 से 1680 तक ज्ञात होता है।

साहित्यिक विशेषताएँ

कवितावली की छंद रचना

इन छन्दों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—

एक तो वे जो रामकथा के सम्बन्ध के हैं और दूसरे वे जो अन्य विविध विषयों के हैं।

समस्त छन्द सात खण्डों में विभक्त हैं। प्रथम प्रकार के छन्द रचना के लंका–काण्ड तक आते हैं और द्वितीय प्रकार के छन्द उत्तरकाण्ड में रख दिये गये हैं।

कथा

कथा–सम्बन्धी छन्द 'गीतावली' के पदों की भाँति–वरन् उससे भी अधिक स्फुट ढग से लिखे गये हैं। अरण्य–कांड का एक ही छन्द है जिसमें हरिण के पीछे राम के जाने मात्र का उल्लेख है। किष्किन्धा काण्ड की कथा का एक ही छन्द नहीं है– जो एक छन्द किष्किन्धा काण्ड के शीर्षक के नीचे दिया भी गया है, वह वास्तव में सुन्दर काण्ड की कथा का है, क्योंकि उसमें हनुमान के समुद्र लाँघने के सिन्धु–तीर के एक भूधर पर उचक कर चढ़ने का उल्लेख हुआ है। रचना में उत्तरकाण्ड का कथा–विषयक कोई छन्द नहीं है। इसके उत्तरकाण्ड में प्रारम्भ में राम के गुण–गान के कुछ छन्द हैं और तदनंतर कुछ स्फुट विषयों के छन्दों के आने के बाढ़ आत्म–निवेदन विषयक छन्द आते हैं। इन आत्म–निवेदन विषयक छन्दों में कवि ने प्रायः अपने जीवन के विभिन्न भागों पर दृष्टिपात किया है, जो उसके जीवनवृत के तथ्यों को स्थिर करने में अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुए हैं। इनके अतिरिक्त कुछ छन्दों में कवि ने सीधे–सीधे भी अपने और समाज के अनेक तथ्यों पर प्रकाश डाला है। उत्तर काण्ड के ये समस्त छन्द अप्रतिम महत्त्व के हैं।

कवितावली का काव्य-शिल्प

'कवितावली' का काव्य–शिल्प मुक्तक काव्य का है। उक्तियों की विलक्षणता, अनुप्रासों की छटा, लयपूर्ण शब्दों की स्थापना कथा भाग के छन्दों में दर्शनीय है। आगे रीति काल में यह काव्य शैली बहुत लोकप्रिय हुई और इस प्रकार तुलसीदास इस काव्य शैली के प्रथम कवियों में से ज्ञात होते हैं फिर भी उनकी 'कवितावली' के छन्दों में पूरी प्रौढ़ता दिखाई पड़ती है। कुछ छन्द तो मुक्तक शिल्प की दृष्टि से इतने सुन्दर बन पड़े हैं कि उनसे सुन्दर छन्द पूरे रीति साहित्य में भी कदाचित ही मिल सकेंगे, यथा बालकाण्ड के प्रथम सात छन्द। इसका कारण कदाचित यह है कि इसके अधिकतर छन्द तुलसीदास के कवि

जीवन के उत्तरार्ध के हैं। इसकी कथा पूर्ण रूप से 'रामचरित मानस' का अनुसरण करती है, यह तथ्य भी इसी अनुमान की पुष्टि करता है।

कवितावली का रचना-काल

हिन्दी रीति धारा का प्रारम्भ केशव की 'कविप्रिया' तथा 'रसिकप्रिया' से माना जा सकता है। हो सकता है कि 'कवितावली' के अधिकतर छन्द इनके रचना-काल के आस-पास और बाद के हों। आत्मोल्लेख के जो छन्द उत्तरकाण्ड में आते हैं उनमें भी तुलसीदास के कवि-जीवन के उत्तरार्ध की ही घटनाओं का उल्लेख हुआ है। कुछ छन्द तो कवि के जीवन के निरे अंत के ज्ञात होते हैं। इसलिए 'कवितावली' के छन्दों का रचना-काल संख्या 1655 से 1680 तक ज्ञात होता है।

कवितावली का संकलन

'कवितावली' का संकलन कब हुआ होगा, यह विचारणीय है, क्योंकि रचना तिथि का उल्लेख नहीं हुआ है। इसकी जो भी प्रतियाँ अभी तक मिली हैं, उनके छन्दों तथा छन्द-क्रम में अंतिम कुछ छन्दों को छोड़कर कोई अंतर नहीं मिलता है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि इसका संकलन कवि ने अपने जीवन काल में ही कर दिया था। उसके देहावसान के बाद जो कवित्त, सवैये और भी प्राप्त हुए उन्हें रचना के अंत में जिस प्रकार वे प्राप्त होते गये, लोगों ने जोड़ लियाय इसीलिए अंत के कुछ छन्दों के विषय में प्रतियों में यह अंतर मिलता है।

दोहावली-तुलसीदास

दोहावली तुलसीदास के दोहों का एक संग्रह ग्रंथ है। इसके मुद्रित पाठ में 573 दोहे हैं। इन दोहों में से अनेक दोहे गोस्वामी तुलसीदास के अन्य ग्रंथों में भी मिलते हैं और उनसे लिये गये है। उदाहरणार्थ बहुत से 'रामचरित मानस' और 'रामज्ञा प्रश्न' से लिये गये हैं। वे उन्हीं रचनाओं से 'दोहावली' में लिये गये हैं, यह तथ्य इससे प्रमाणित है कि वे प्राय: निश्चित प्रसंगों के हैं और अपने प्रसंगों से निकाल लिए जाने पर वे छिन्न-मूल से ज्ञात होते है।

स्फुट दोहे

'दोहावली' की विभिन्न प्रतियों में उसके कई पाठ भी मिलते हैं। इन पाठों का मिलान नहीं किया गया है, किंतु इनमें परस्पर अंतर बहुत है। उदाहरणार्थ संख्या 1797 की एक प्रति में, जो प्राप्त प्रतियों में सबसे प्राचीन है। केवल 478 दोहे हैं और इनमें भी 6 ऐसे हैं, जो मुद्रित पाठ में नहीं मिलते। बहुत कुछ यहीं दशा रचना की और प्रतियों की भी है। इससे यह ज्ञात होता है कि इसका सम्पादन कवि अपने जीवन काल में नहीं कर सका था। सम्भवतः उसके विविध विषयों के कुछ स्फुट दोहे ही थे, जिन्हें अलग-अलग ढ़ग से अलग-अलग व्यक्तियों ने संकलित कर लिया।

सतसई

इन्हीं दोहों के साथ नव-कल्पित दोहों को मिलाकर एक 'सतसई' भी तैयार की गयी, यहीं कारण है कि 'दोहावली' और 'सतसई' के बहुत दोहे एक ही हैं।

विषय

'दोहावली' किसी एक विषय की रचना नहीं है। इसमें अनेकानेक विषयों के स्फुट दोहे संकलित हुए हैं। इनमें से 'जातक' की अनन्य निष्ठा पर कहे गये छन्द सबसे अधिक मनोहर हैं। कुछ छन्द कवि के जीवन की अनेक घटनाओं से सम्बन्धित हैं। इनका महत्त्व कवि के प्रामाणिक जीवन वृत्त के निर्माण में बहुत अधिक है। 'कवितावली' के छन्दों के बाद 'दोहावली' के इन दोहों से ही कवि के जीवन-वृत निर्माण में हमें उल्लेखनीय सहायता मिलती है।

समय

'दोहावली' के ये दोहे भी 'कवितावली' के उपर्युक्त छन्दों की भाँति कवि के जीवन के अंतिम भाग से सम्बन्ध रखते हैं। फलतः यह असम्भव नहीं कि 'दोहावली' के छन्दों की रचना भी 'कवितावली' के छन्दों की भाँति तुलसीदास के कवि-जीवन के उत्तरार्ध की हो, किंतु यह बात उतने निश्चय के साथ 'कवितावली' के छन्दों के विषय में कहीं गयी है।

गीतावली-तुलसीदास

गीतावली तुलसीदास की एक प्रमुख रचना है। इसमें गीतों में भगवान श्रीराम की कथा कहीं गयी है अथवा यों कहना चाहिए कि राम-कथा सम्बन्धी जो गीत गोस्वामी तुलसीदास ने समय-समय पर रचे, वे इस ग्रन्थ में संग्रहित हुए हैं। सम्पूर्ण रचना सात खण्डों में विभक्त है। काण्डों में कथा का विभाजन प्रायः उसी प्रकार हुआ है, जिस प्रकार 'रामचरितमानस' में हुआ है। किन्तु न इसमें कथा की कोई प्रस्तावना या भूमिका है और न ही 'मानस' की भाँति इसमें उत्तरकाण्ड में अध्यात्मविवेचन। बीच-बीच में भी 'मानस' की भाँति आध्यात्मिक विषयों का उपदेश करने का कोई प्रयास नहीं किया गया है। सम्पूर्ण पदावली राम-कथा तथा रामचरित से सम्बन्धित है। मुद्रित संग्रह में 328 पद हैं।

पूर्ववर्ती रूप

'गीतावली' का एक पूर्ववर्ती रूप भी प्राप्त हुआ है, जो इससे छोटा था। उसका नाम 'पदावली रामायण' था। इसकी केवल एक प्रति प्राप्त हुई है और वह भी अत्यन्त खण्डित है। इसमें सुन्दर और उत्तरकाण्डों के ही कुछ अंश बचे हैं और उत्तरकाण्ड का भी अन्तिम अंश न होने के कारण पुष्पिका नहीं रह गयी है। इसलिए प्रति की ठीक तिथि ज्ञात नहीं है। यह संग्रह वर्तमान से छोटा रहा होगा। यह इससे प्रकट है कि प्राप्त अंशों में वर्तमान संग्रह के अनेक पद बीच-बीच में नहीं हैं। यदि यह कहा जाय कि यह वर्तमान का कोई चयन होगा, तो यह ठीक नहीं है, क्योंकि कभी-कभी छन्दों का क्रम भिन्न मिलता है। इसके अतिरिक्त इसके साथ की ही एक प्रति 'विनयपत्रिका' की प्राप्त हुई है, जिसका प्रति में ही 'राम गीतावली' नाम दिया हुआ है। वह भी 'विनयपत्रिका' का वर्तमान से छोटा पाठ देती है। इसलिए यह प्रकट है कि 'पदावली रामायण' का वह पाठ, जो प्रस्तुत एक मात्र प्रति में मिलता है, 'गीतावली' का ही कोई पूर्व रूप रहा होगा।

आलोचक कथन

'गीतावली' में कुछ पद ऐसे भी हैं, जो 'सूरसागर' में मिलते हैं। प्रायः यह कहा जाता है कि ये पद उसमें 'सूरसागर' से गये होंगे। सूरदास, तुलसीदास से कुछ ज्येष्ठ थे, इसलिए कुछ आलोचक तो यह भी कहने में नहीं हिचकते कि

इन्हें तुलसीदास ने ही 'गीतावली' में रख लिया होगा और जो इस सीमा तक नहीं जाना चाहते, वे कहते हैं कि तुलसीदास के भक्तों ने उनकी रचना को और पूर्ण बनाने के लिए यह किया होगा। किन्तु एक बात इस सम्बन्ध में विचारणीय है। 'गीतावली' की प्रतियाँ कई दर्जन संख्या में प्राप्त हुई है और वे सभी आकार-प्रकार में सर्वथा एक सी हैं और उन सबों में ये छन्द पाये जाते हैं।

सूरसागर की प्रतियाँ

'सूरसागर' की जितनी प्रतियाँ मिलती हैं, उनमें आकार-प्रकार भेद अधिक हैं। कुछ में केवल कुछ सौ पद हैं तो कुछ में कुछ हजार पद हैं। उनमें क्रम आदि में भी परस्पर काफी वैभिन्न्य है और फिर 'सूरसागर' की सभी प्रतियों में ये पद पाये जाते हैं, या नहीं, यह अभी तक देखा नहीं गया है। 'सूरसागर' के मुद्रित पाठ में अन्य अनेक ज्ञात कवियों-भक्तों के पद भी सम्मिलित मिलते हैं। ऐसी दशा में वास्तविकता तो उलटे यह ज्ञान पड़ती है कि ये पद तुलसीदास की ही 'गीतावली' के थे, जो अन्य कवियों-भक्तों की पदावली की भाँति 'सूरसागर' में सूरदास के प्रेमियों के द्वारा सम्मिलित कर लिये गये।

अंतर

तुलसीदास ने कुल लगभग सात सौ पदों की रचना की है और गीति शिल्प में वे किसी से पीछे नहीं हैं। ऐसी दशा में वे तीन पद 'गीतावली' में और तीन-चार पद 'कृष्ण गीतावली' में सूरदास या किसी अन्य कवि से लेकर क्यों रखते? इसमें जो राम कथा आती है, वह प्राय: 'रामचरितमानस' के समान ही है, केवल कुछ विस्तारों में अन्तर है, जो 'रामचरितमानस' के पूर्व रचे ग्रन्थों में ही मिलते हैं, और कुछ ऐसे हैं, जो कवि की किसी भी अन्य कृति में नहीं मिलते हैं।

प्रथम प्रकार के अन्तर निम्नलिखित हैं-

परशुराम-राम मिलन मिथिला की स्वयंवर भूमि में न होकर बारात की वापसी में होता है और उसमें विवाद परशुराम-राम में ही होता है, लक्ष्मण से नहीं।

राम के राज्यारोहण के अनन्तर 'स्थान, यति, खग' के न्याय, ब्राह्मण बालक के जीवन-दान, सीता के निर्वासन और लव-कुश जन्म की कथाएँ आती हैं। इसी विस्तार में 'रामाज्ञा प्रश्न' भी है।

दूसरे प्रकार के अन्तर निम्नलिखित है–

स्वयंवर भूमि में जब विश्वामित्र राम को धनुष तोड़ने के लिए आज्ञा देते हैं, जनक राम के कृतकार्य होने के विषय में सन्देह प्रकट करते हैं। इस प्रकार विश्वामित्र जनक के योग–वैराग्य की सराहना करते हुए कहते हैं कि ऐसा वे राम के स्नेह के वश में होने के कारण समझते हैं और राम भी जनक के योग वैराग्य की उस सराहना का समर्थन करते हैं, जब इन सबके अनन्तर जनक की शंका का निवारण हो जाता है, 'गीतावली' में तब राम धनुष तोड़ने के लिए आगे बढ़ते हैं।

विश्वामित्र के साथ गये हुए राम–लक्ष्मण के विषय में माताएँ चिन्तित होती हैं।

वनवास की अवधि में कौशल्या अनेक बार राम–विरह में व्यथित होती हैं।

राम जटायु के प्रति पितृ–स्नेह और शबरी के प्रति मातृ–स्नेह व्यक्त करते हैं।

रावण के द्वारा सीता के हरण की सूचना राम को देव–गण देते हैं।

हनुमान जब सीता को राम की मुद्रिका देते हैं और सीता हनुमान से राम का कुशल पूछती हैं और मुद्रिका देती है।

रावण से अपमानित होकर विभीषण सीधे राम की शरण में नहीं जाता है।

युद्ध स्थल में लक्ष्मण के आहत होने का समाचार पाकर सुमित्रा हनुमान से अपने दूसरे पुत्र शत्रुघ्न को भी राम के राज्याभिषेक के अनन्तर दोलोत्सव, दीपमालिकोत्सव तथा बसन्तोत्सव आदि होते हैं, जिसमें अयोध्या का समस्त नर–नारी समाज निस्संकोच भाव से सम्मिलित होता है।

'मानस' शगीतावली' की तुलना में आकार–प्रकार से चौगुना है और प्रबन्ध काव्य हैं। फिर भी ये कथा विस्तार से ज्ञात होता है कि 'गीतावली' के कुछ अंश 'मानस' के पूर्व की रचना अवश्य होंगे और इसी प्रकार उपर्युक्त दूसरे प्रकार के कथा–विस्तारों से ज्ञात होता है कि उसके अंश 'रामचरितमानस' के बाद की रचना होंगे। 'रामचरितमानस' के समान तो 'गीतावली' का अधिकांश है ही, जिसका यहाँ पर कोई प्रमाण देना अनावश्यक होगा। इस प्रकार 'गीतावली' के पदों की रचना एक बहुत विस्तृत अवधि में हुई होगी।

विशिष्ट स्थान

'गीतावली' का तुलसीदास की रचनाओं में एक विशिष्ट स्थान है, जिस पर अभी तक यथेष्ट ध्यान नहीं दिया गया है। अनेक बातों में यह 'रामचरितमानस' के समान होते हुए भी गीतों के साँचे उसी की राम-कथा को ढाल देने का प्रयास मात्र नहीं है। यह एक प्रकार से 'मानस' का पूरक है। 'मानस' में जीवन के कोमल और मधुर-पक्षों को जैसे जान-बूझकर दबाया गया होय 'मानस' में कौशल्या राम को वन भेजकर केवल एक बार व्यथित दीख पड़ती है, वह है भरत के आगमन पर, किन्तु फिर पुत्र शोकातुरा कौसल्या के दर्शन नहीं होते। 'गीतावली' में तो अनेक बार वह राम विरह में धैर्य खोती चित्रित होती है, उसमें तो वह राम विरह में उन्माद-ग्रस्त हो चुकी हैं-

कबहु प्रथम ज्यों जाइ जगावति कहि प्रिय बचन सबारे।
उठहु तात बलि मातृ बदन पर अनुज सखा सब द्वारे।
कबहुँ कहति यों बड़ी बार भई जाहु भूप पहं भैया।
बन्धु बोलि जेंइय जो भावै गई निछावरी मैयौ

आदि पदों में कौसल्या का जो चित्र अंकित किया गया है, वह 'मानस' में नहीं किया गया है और कदाचित जान-बूझकर नहीं किया गया है।

सीता के साथ राम की जिस 'माधुरी-विलास-हाल' का चित्रण चित्रकूट की दिनचर्या में 'गीतावली' में हुआ है अथवा उसके उत्तरकाण्ड में भोर में 'प्रिय प्रेम रस पागे' अलसाये हुए राम का जो चित्रण हुआ है, और विभिन्न प्रसंगों में अयोध्या के नारी-समाज द्वारा राम के जिस सौन्दर्य-पान का वर्णन किया गया है, उनका एक भी समतुल्य 'मानस' में नहीं है।

'मानस' की रचना तुलसीदास ने सम्पूर्ण समाज के लिए की थी। 'सुर सरि सम सब कहै हित होई' यह भावना उनकी रचना के सीमाओं का कहीं भी अतिक्रमण नहीं होने दिया, जबकि 'गीतावली' के अधिकतर पदों की रचना उन्होंने सम्भवतः केवल भक्त और रसिक समुदाय के लिए की। इसलिए इसमें हमें 'मानस' के तुलसीदास की अपेक्षा एक अधिक वास्तविक और हाड़-मांस के तुलसीदास के दर्शन होते हैं।

जानकी मंगल-तुलसीदास

जानकी मंगल में गोस्वामी तुलसीदास जी ने आद्याशक्ति भगवती श्री जानकी जी तथा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम के मंगलमय विवाहोत्सव का बहुत ही

मधुर शब्दों में वर्णन किया है। जनकपुर में स्वयंवर की तैयारी से आरम्भ करके विश्वामित्र के अयोध्या जाकर श्रीराम-लक्ष्मण को यज्ञ-रक्षा के लिए अपने साथ ले आने, यज्ञ-रक्षा के अनन्तर धनुष-यज्ञ दिखाने के बहाने उन्हें जनकपुर ले जाने, रंग-भूमि में पधारकर श्रीराम के धनुष तोड़ने तथा सीता जी का उन्हें वरमाला पहनाने, लग्न-पत्रिका तथा तिलक की सामग्री लेकर जनक पुरोधा महर्षि शतानन्द जी के अयोध्या जाने, महाराज के दशरथ के बारात लेकर जनकपुर जाने, विवाह-संस्कार सम्पन्न होने के अनन्तर बारात के विदा होने, मार्ग में परशुराम जी से भेंट होने तथा अन्त में अयोध्या पहुँचने पर वहाँ आनन्द मनाये जाने आदि प्रसंगों का संक्षेप में बड़ा ही सरस एवं सजीव वर्णन किया गया है, जो प्रायः रामचरितमानस से मिलता-जुलता ही है। कहीं-कहीं तो रामचरितमानस के शब्द ही ज्यों-के-त्यों दुहराये गये हैं।

श्री जानकी मंगल

मंगलाचरण

गुरू गनपति गिरिजापति गौरि गिरापति।
सारद सेष सुकबि श्रुति संत सरल मति।।1।।
हाथ जोरि करि बिनय सबहि सिर नावौं।
सिय रघुबीर बिबाहु जथामति गावौं।।2।।

स्वयंवर की तैयारी

सुभ दिन रच्यौ स्वयंबर मंगलदायक।
सुनत श्रवन हिय बसहिं सीय रघुनायक।।3।।
देस सुहावन पावन बेद बखानिय।
भूमि तिलक सम तिरहुति त्रिभुवन जानिय।।4।।
तहँ बस नगर जनकपुर परम उजागर।
सीय लच्छि जहँ प्रगटी सब सुख सागर।।5।।
जनक नाम तेहिं नगर बसै नरनायक।
सब गुन अवधि न दूसरे पटतर लायक।।6।।
भयउ न होइहि है न जनक सम नरवइ।
सीय सुता भइ जासु सकल मंगलमइ।।7।।
नृप लखि कुँअरि सयानि बोलि गुर परिजन।
करि मत रच्यौ स्वयंबर सिव धनु धरि पन।।8।।

पनु धरेउ सिव धनु रचि स्वयंबर अति रुचिर रचना बनी।
जनु प्रगटि चतुरानन देखाई चतुरता सब आपनी।।
पुनि देस देस सँदेस पठयउ भूप सुनि सुख पावहीं।
सब साजि साजि समाज राजा जनक नगरहिं आवहीं।।1।।
रूप सील बय बंस विरुद बल दल भले।
मनहुँ पुरंदर निकर उतरि अवनिहिं चले।।9।।
दानव देव निसाचर किंनर अहिगन।
सुनि धरि-धरि नृप बेष चले प्रमुदित मन।।10।।
एक चलहिं एक बीच एक पुर पैठहिं।
एक धरहिं धनु धाय नाइ सिरु बैठहिं।।11।।
रंग भूमि पुर कौतुक एक निहारहिं।
ललकि सुभाहिं नयन मन फेरि न पावहिं।।12।।

6

नाभादास

भक्तिकाल के कवियों में स्वामी अग्रदास के शिष्य नाभादास का विशिष्ट स्थान है। अंतस्साक्ष्य के अभाव में इनकी जन्म तथा मृत्यु की तिथियाँ अनिश्चित हैं। मिश्रबंधु, डॉ. श्यामसुंदरदास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, डॉ. दीनदयालु गुप्त, आचार्य क्षितिमोहन सेन आदि ने इस संबंध में जो तिथियाँ निर्धारित की हैं उनमें पर्याप्त अंतर है। इनके प्रसिद्ध ग्रंथ 'भक्तमाल' की टीका प्रियादास जी ने संवत् 1769 में, सौ वर्ष बाद, लिखी थी। इस आधार पर नाभादास का समय 17वीं शताब्दी के मध्य और उत्तरार्ध के बीच माना जाता है।

नाभादास के जन्मस्थान, माता-पिता, जाति आदि के संबंध में भी प्रमाणों के अभाव में अधिकारपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। 'भक्तनामावली' के संपादक श्री राधाकृष्णदास ने किंवदंती के आधार पर लिखा है कि नाभादास जन्मांध थे और बाल्यावस्था में ही इनके पिता की मृत्यु हो गई। उस समय देश में अकाल की स्थिति थी, अतः माता इनका पालनपोषण न कर सकीं और इन्हें वन में छोड़कर चली गईं। संयोगवश श्री कील्ह और अग्रदास जी उसी वन में होकर जा रहे थे, उन्होंने बालक को देखा और उठा ले आए। बाद में उन्हीं महात्माओं के प्रभाव से नाभादास ने आँखों की ज्योति प्राप्त की और अग्रदास जी ने इन्हें दीक्षित किया।

परंपरा के अनुसार नाभादास डोम अथवा महाराष्ट्रीय ब्राह्मण जाति के थे। टीकाकार प्रियादास ने इन्हें हनुमानवंशीय महाराष्ट्रीय ब्राह्मण माना है। टीकाकार

रूपकला जी ने इन्हें डोम जाति का मानते हुए लिखा है कि डोम नीच जाति नहीं थी, वरन कलावंत, ढाढी, भाट, डोम आदि गानविद्याप्रवीण जातियों के ही नाम हैं। मिश्रबंधुओं ने भी इन्हें हनुमानवंशी मानते हुए लिखा है कि मारवाड़ी में हनुमान शब्द 'डोम' के लिए प्रयुक्त होता है।

कृतियाँ

नाभादास की तीन कृतियाँ उपलब्ध हैं–'भक्तमाल', 'अष्टयाम', 'रामभक्ति संबंधी स्फुट पद'। 'भक्तमाल' में लगभग दो सौ भक्तों का चरित्रगान है। 'अष्टयाम' ब्रजभाषा गद्य और पद्य दोनों में पृथक्–पृथक् उपलब्ध है। राम संबधी स्फुट पदों का उल्लेख खोज रिपोर्टों में मिलता है।

भक्तमाल

इन तीनों कृतियों में नाभादास की कीर्ति का मूल आधार 'भक्तमाल' ही है। इसकी प्राचीनतम प्रति का निर्माण अभी तक नहीं हो सका और न इस ग्रंथ का वैज्ञानिक संपादन ही हुआ है। अतः मूल रूप में इसका क्या आकार था, यह नहीं कहा जा सकता। कुछ विद्वानों के अनुसार इसमें माला के मनकों के समान 108 छंद थे। परंतु संवत् 1770 की प्रति में इसकी छंदसंख्या 194 है। प्रियादास की प्रसिद्ध टीका में 214 पद्य दिए गए हैं और आचार्य शुक्ल इसमें 316 छंद मानते हैं। मूल आकार जो भी रहा हो, 'भक्तमाल' में नाभादास ने छप्पय छंद में अपने पूर्ववर्ती अथवा समसामयिक लगभग दो सौ भक्तों का चरितगान किया है। कवि ने इन भक्तों के जन्म मरण की तिथियों अथवा अन्य स्थमल तथ्यों की गणना में विशेष रुचि व्यक्त नहीं की। भक्तों के जीवन की अलौकिक घटनाओं का वर्णन कर जनता के हृदय में उनके जीवनादर्शों के प्रति आस्था उत्पन्न करना ही कवि का मूल लक्ष्य रहा है। चरितवर्णन में नाभादास ने प्रायः तीन स्त्रोतों से सामग्री संकलन की है– किंवदंतियाँ, धार्मिक ग्रंथ तथा समकालीन भक्तों के संबंध में उनका अपना ज्ञान। नाभादास ने यहाँ किसी प्रकार का पक्षपात नहीं कियाय निर्गुण अथवा सगुण विचारधारा के सभी भक्तों के प्रति मन में समान श्रद्धा है। यह अवश्य है कि, मलूकदास धरमदास, दादूदयाल, नानक, आदि भक्तों के संबंध में 'भक्तमाल' में कुछ नहीं कहा गया। किंतु इसका भी कारण रागद्वेष की भावना नहीं है। कदाचित् नाभादास के संमुख भक्तों की कोई निश्चित सूची नहीं थी, अथवा हो सकता है कि इन संतों के नामों का कवि को स्मरण न आया हो।

'भक्तमाल' की रचना ब्रजभाषा में हुई है। इसकी भाषा शैली प्रौढ़ एवं परिमार्जित है। चरित वर्णन में कवि ने समास शैली का ही अवलंबन किया है। इस प्रकार के विषयनिरूपण में प्राय: विस्तार की संभावना रहती है, किंतु नाभादास ने भाषा पर अपूर्व अधिकार का परिचय दिया है और प्राय: एक ही छंद में भक्त विशेष के प्रमुख गुणों का वर्णन कर दिया है। समास का प्रयोग होने पर भी 'भक्तमाल' की भाषा में प्रसादगुण का अभाव नहीं हुआ। संक्षिप्त और सीधी अभिव्यक्ति के कारण उसके छंदों की अनेक पंक्तियाँ सूक्ति बन गई हैं।

भक्तों और भक्तकवियों के जीवनचरित को सुरक्षित रखने में 'भक्तमाल' का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है। प्रियादास, वैष्णवदास, लालदास, बालकराम, रूपकला, मलूकदास, आदि अनेक विद्वानों ने इस ग्रंथ पर विविध टीकाएँ प्रस्तुत कर प्रस्तुत ग्रंथ की महिमा को स्वीकार किया है। टीकाकारों के अतिरिक्त आगे चलकर अनेक कवियों ने भी इसी आधार पर विभिन्न भक्तमालों और परचइयों की रचना कर एक नवीन परंपरा को जन्म दिया।

धर्मपरायण समाज में 'भक्तमाल' 'रामचरित' के समान ही लोकप्रिय रहा है। हिंदी में जीवनी साहित्य का यह पहला ग्रंथ है।

नाभादास अग्रदास जी के शिष्य, बड़े भक्त और साधुसेवी थे। संवत् 1657 के लगभग वर्तमान थे और गोस्वामी तुलसीदास जी की मृत्यु के बहुत पीछे तक जीवित रहे। इनका प्रसिद्ध ग्रंथ 'भक्तमाल' संवत् 1642 के पीछे बना और संवत् 1769 में 'प्रियादास' जी ने उसकी टीका लिखी।

तुलसीदास और नाभादास

नाभा जी को कुछ लोग 'डोम', कुछ 'क्षत्रिय' बताते हैं। ऐसा प्रसिद्ध है कि वे एक बार गोस्वामी तुलसीदास जी से मिलने काशी गए। पर उस समय गोस्वामी जी ध्यान में थे, इससे न मिल सके। नाभा जी उसी दिन वृंदावन चले गए। ध्यान भंग होने पर गोस्वामी जी को बड़ा खेद हुआ और वे तुरंत नाभा जी से मिलने वृंदावन चल दिए। नाभा जी के यहाँ वैष्णवों का भंडारा था जिसमें गोस्वामी जी बिना बुलाए जा पहुँचे। गोस्वामी जी यह समझकर कि नाभा जी ने मुझे अभिमानी न समझा हो, सबसे दूर एक किनारे बुरी जगह बैठ गए। नाभा जी ने जान बूझकर उनकी ओर ध्यान न दिया। परसने के समय कोई पात्र न मिलता था जिसमें गोस्वामी जी को खीर दी जाती। यह देखकर गोस्वामी जी एक साधु का जूता उठा लाए और बोले, 'इससे सुंदर पात्र मेरे लिए और क्या होगा?'

इस पर नाभा जी ने उठकर उन्हें गले लगा लिया और गद्‌गद हो गए। ऐसा कहा जाता है कि तुलसी संबंधी अपने प्रसिद्ध छप्पय के अंत में पहले नाभा जी ने कुछ चिढ़कर यह चरण रखा था कलि कुटिल जीव तुलसी भए, वाल्मीकि अवतार धारि। यह वृत्तांत कहाँ तक ठीक है, नहीं कहा जा सकता, क्योंकि गोस्वामी जी खानपान का विचार रखने वाले स्मार्त वैष्णव थे। तुलसीदास जी के संबंध में नाभा जी का प्रसिद्ध छप्पय है–

त्रोता काव्य निबंध करी सत कोटि रमायन।
इक अच्छर उच्चरे ब्रह्महत्यादि परायन।।
अब भक्तन सुख दैन बहुरि लीला बिस्तारी।
रामचरनरसमत्ता रहत अहनिसि व्रतधारी।।
संसार अपार के पार को सुगम रूप नौका लियो।
कलि कुटिल जीव निस्तारहित वाल्मीकि तुलसी भयो।।

राम भक्ति

अपने गुरू अग्रदास के समान इन्होंने भी रामभक्ति संबंधी कविता की है। ब्रजभाषा पर इनका अच्छा अधिकार था और पद्य रचना में अच्छी निपुणता थी। रामचरित संबंधी इनके पदों का एक छोटा सा संग्रह अभी थोड़े दिन हुए प्राप्त हुआ है।

अष्टयाम

इन पुस्तकों के अतिरिक्त इन्होंने दो 'अष्टयाम' भी बनाए एक ब्रजभाषा गद्य में, दूसरा रामचरितमानस की शैली पर दोहा चौपाइयों में। दोनों के उदाहरण इस प्रकार हैं–

गद्य

तब श्री महाराजकुमार प्रथम श्री वशिष्ठ महाराज के चरन छुइ प्रनाम करत भए। फिरि अपर वृद्ध समाज तिनको प्रनाम करत भए। फिरि श्री राजाधिराज जू को जोहार करिके श्री महेंद्रनाथ दशरथ जू के निकट बैठत भए।

पद्य

अवधपुरी की शोभा जैसी। कहि नहिं सकहिं शेष श्रुति तैसी।
रचित कोट कलधौत सुहावन। बिबिधा रंग मति अति मन भावन।

चहुँ दिसि विपिन प्रमोदअनूपा। चतुरवीस जोजन रस रूपा।
सुदिसि नगर सरजूसरिपावनि। मनिमय तीरथ परम सुहावनि।

बिगसे जलज भृंग रस भूले। गुंजत जल समूह दोउ कूले।।
परिखा प्रति चहुँदिसि लसति, कंचन कोट प्रकास।
बिबिधा भाँति नग जगमगत, प्रति गोपुर पुर पास।।

सुंदर कथा 14(श्री भक्तमाल–श्री नाभादास जी एवं भक्तमाल का परिचय)SRI BHAKTAMAL-SRI NABHADAS JI

मई 12, 2016

श्री सीताराम। प्रस्तुत लेख का आधार पूज्य रामेश्वर दास रामायणी जी, श्री गणेशदास भक्तमाली जी, श्रीमन्नारायण दास मामाजी, श्री रूपकला जी की टीकाएँ एवं पूज्यपाद संतों द्वारा बताये गए अपने अनुभव है। कृपया संतों के इन भावों को कोई अपने नाम से प्रकाशित ना करें ऐसी सभी के चरणों में प्रार्थना है।

भक्तमाल का परिचय–

महाभागवत श्री नाभादास जी महाराज उच्च कोटि के संत हुए है जिन्होंने इस संसार में श्री भक्तमाल ग्रन्थ प्रकट किया। भगवान् के भक्तों के चरित्र इस ग्रन्थ में नाभाजी द्वारा स्मरण किये गए है। इस ग्रन्थ की यह विशेषता है कि इसमें सभी संप्रदयाचार्यों एवं सभी सभी सम्प्रदायो के संतों का सामान भाव से श्रद्धापूर्वक संस्मरण श्री नाभा जी ने किया है।

संत तो प्रियतम के भी प्रिय हैं, भगवान् अपने से अधिक भक्तों को आदर देते हैं।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा है– मोते संत अधिक कर लेखा। भगवान् से भी अधिक महिमा उनके भक्तों की है। गोस्वामी जी ने एक और पद में लिखा है–मोरे मन प्रभु अस बिस्वासा। राम ते अधिक राम कर दासा।।

भक्तमाल नाम का रहस्य–

जैसा की इसके भक्तमाल नाम से स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ भक्तों के परम पवित्र चरित्र रूपी पुष्पों की एक परम रमणीय माला के रूप में गुम्फित है और

इस सरस सौरभमयी तथा कभी भी म्लान न होनेवाली सुमन मालिका को श्री हरि नित्य-निरंतर अपने श्री कंठ में धारण किये रहते हैं।

जैसे माला में चार वस्तुएं मुख्य होती है– मणियाँ, सूत्र, सुमेरू और फुंदना (गुच्छा) वैसे ही भक्तमाल में भक्तजन मणि है, भक्ति है सूत्र (जिसमे मणियाँ पिरोयी जाती है), माला के ऊपर जो सुमेरू होता है वह श्री गुरूदेव हैं और सुमेरू का जो गाँठ रूपी गुच्छा है वह है हमारे श्री भगवान्।

भक्तमाल कोई सामान्य रचना नहीं है, अपितु यह एक आशीर्वादात्मक ग्रन्थ है। यह श्री नाभादास जी की समाधि वाणी है। तपस्वी, सिद्ध एवं महान् संत की अहैतुकी कृपा और आशीर्वाद से इस ग्रन्थ का प्राकट्य हुआ है। महाभागवत नाभादास जी जन्म से नेत्रहीन थे, जब श्री गुरूदेव की कृपा से बालक को दृष्टि प्राप्त हुई तब सर्वप्रथम संसार का नहीं अपितु संत दर्शन ही किये।

श्री नाभादास जी का वास्तविक स्वरूप–

एक बार ब्रह्मा जी ने ब्रज के सब ग्वालबालों तथा गौओं और बछड़ों का हरण कर लिया था। इसपर भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी योगमाया के प्रभाव से वैसे ही अन्य ग्वाल-बालों, गौओं तथा बछड़ों की सृष्टि कर दी, ब्रज के लोगों को इस बात का पता ही नहीं लगा। बाद में ब्रह्मा जी ने भगवान् श्रीकृष्ण से अपने अपराध के लिए क्षमा मांगी तो भगवान् ने उन्हें इतना ही दंड दिया कि तुम कलियुग में नेत्रहीन होकर जन्म ग्रहण करोगे, किन्तु तुम्हारा यह अंधापन केवल पांच वर्ष तक ही रहेगा बाद में महात्माओं की कृपा से तुम्हें दिव्य दृष्टि प्राप्त होगी। इस किंवदन्ती के अनुसार ब्रह्मा जी ही श्री नाभादास जी के रूप में प्रकट हुए।

जो अन्य युगों में भक्त प्रकट हुए उनके चरित्र पुराणों में उपलब्ध होते हैं परंतु विशेषतः कलिकाल के जो भक्त हैं उनके चरित्र पुराणों में उपलब्ध नहीं है अतः इन चरित्रों का विस्तार करने हेतु, शैव वैष्णव भेद समाप्त करने हेतु, संत सेवा, भगवान् के उत्सवों एवं व्रतों में निष्ठा हेतु, भक्त सेवा में अपराध से बचने हेतु और संत वेश निष्ठा प्रकट करने हेतु श्री नाभादास जी ने इस ग्रन्थ को प्रकट किया।

संतों की दृष्टि में भक्तमाल का माहात्म्य–

वृन्दावन के महान सिद्ध संत पूज्य श्री जगन्नाथ प्रसाद भक्तमाली जी महाराज से पूज्य बक्सर वाले मामाजी (श्रीमन्नारायण दास नेहनिधि

सियाअनुज)भक्तमाल ग्रंथ का अध्ययन करने लगे। जब ग्रन्थ कि पूर्णनता होने लगी तब आपने श्री भक्तमाली जी के सम्मुख श्रीमद भागवत श्लोकार्थ समेत पढ़ने की इच्छा प्रकट कि तो वे बड़े प्रेम से बोले–नारायणदास! क्या तुम्हारी इच्छा दास से पंडित बनने की है ?

यह सुन कर श्री मामाजी गुरूदेव के चरण पकड़ विह्वल हो गये और बोले–नहीं गुरू देव मुझ दास को संतों का दास ही बने रहने की इच्छा है पंडित बनाने कि इच्छा नहीं है। तब भक्तमाली जी ने कहा–फिर तुम केवल भक्तमाल जी का आश्रय लो इनका पठन पाठन, इनका ही धयान करो और इन्ही को प्रसाद रूप में भक्तों में वितरण करो भक्तमाल जी कि कृपा से एक दिन तुम्हारे हृदय में श्रीमद भगवत स्वयं प्रकट हो जायेगा। उनके दिव्य प्रकाश से तुम्हारा अंत:करण प्रकाशित हो जाएगा और भक्तमाल जी कि कृपा से तुम महान् प्रेमी और वक्ता बनोगे। महान संत के आशीर्वाद द्वारा मामाजी भक्तमाली नाम से विभूषित हुए।

पुराणों में, महाभारत में भी भक्त चरित्रों का ही वर्णन है। यह सब भी एक प्रकार से भक्त चरित्र ही है। पुराने समय में लोग विद्वान हुआ करते थे, वे पुराणों और शास्त्रो को पढ़ कर भक्तों के आचरण से शिक्षा लेते थे, भक्ति के स्वरूप को समझते थे। कलियुग के जीव इतने जड़ बुद्धि के हुए कि वे प्राय: कहने लगे–भगवान् की लीलाएं और उनका दर्शन अन्य युगों में होता था परंतु आज के समय में ऐसा कुछ नहीं होता। नाभा जी ने ऐसे बहुत से चरित्र भक्तमाल मे वर्णन किये हैं, जो कल–परसो के ही हैं। इन चरित्रों का पठन एवं श्रवण करने से हम कलिकाल के जड़ बुद्धि जीवो को बहुत लाभ मिलेगा और संतों में श्रद्धा बनेगी।

पूज्य स्वामी जयरामदेव आदि अनेक सिद्ध संतों का मत है कि भगवान् अपने नित्य धाम में श्री भक्तमाल का सदा स्वाध्याय करते हैं, यहीं नहीं जो भगवान् के नित्य पार्षद और महाभागवत भक्त हैं वे भी नित्य भक्तमाल की कथा सुनते है। श्री अम्बरीष जी, श्री ध्रुव जी सभी नित्य भक्तमाल कथा सुनते हैं। श्री भक्तमाल के प्रमुख श्रोता श्री भगवान् हैं।

पूज्य श्रीमन्नारायण दास (मामाजी), श्री गणेशदास जी आदि भक्तमाली संतों ने सम्पूर्ण जीवन संतों को और भगवान् को भक्तमाल सुनाया। अवध के महान संत पूज्य श्री ब्रह्मचारी जी महाराज नित्य भगवान् को भक्तमाल कथा सुनाते। धर्मसम्राट श्री स्वामी करपात्री जी महाराज को तो भक्तमाल की कथा का व्यसन ही था। जब कभी वे वृन्दावन पधारते, वे ताड़वाली कुंज (श्री जगन्नाथ प्रसाद भक्तमाली जी की साधना स्थली) में जाकर भक्तमाली जी से

कथा श्रवण करते। अन्य संतों से भी स्वामी करपात्री भक्तमाल कथा ही सुनना पसंद करते।

एक समय की बात है पूज्य मामाजी को दवाखाने में भर्ती करवाया गया था और डॉक्टर ने बोलने से मना कर रखा था। मामाजी को नित्य भगवान् और किसी न किसी संत को भक्तमाल सुनाने का अभ्यास था। रात बीतने पर सुबह जब डॉक्टर कक्ष में आया तब उसने आश्चर्य से पूछा–मामाजी पंखा चल रहा है, अधिक गर्मी भी नहीं है फिर आप पसीने से लथपथ कैसे ? मामाजी ने पहले कुछ बताया नहीं। डॉक्टर ने कहा–मामाजी डॉक्टर से कुछ नहीं छिपाना चाहिए तब मामाजी ने बताया की कल स्वप्न में धर्मसम्राट स्वामी श्री करपात्री जी पधारे और उनको हमने रात भर कथा सुनायी है, इसी कारण से पसीना आ रहा है। ऐसे महान भक्तमाली सिद्ध संत श्री मामाजी महाराज।

श्री नाभादास जी की गुरू परंपरा –

यतिराज श्रीमद् आद्य रामानंदाचार्य स्वामी के पवित्र परंपरा में श्री नाभादास जी का प्राकट्य हुआ। श्री रामानंद स्वामी के शिष्य हुए श्री अनंतानन्दचार्य जी, उनके शिष्य हुए श्री कृष्णदास पयोहारी जी, उनके शिष्य हुए श्री अग्रदेवाचार्य जी, और उनके शिष्य हुए श्री नाभादास जी महाराज।

कुछ संतों ने श्री नाभादास जी के जन्म के बारे में इस प्रकार जानकारी दी है– इनका जन्म 8 अप्रैल 1537 को भद्राचलम नामक ग्राम में गोदावरी नदी के तट पर हुआ था। यह ग्राम आंध्र प्रदेश के खम्मम जिले में स्थित है परंतु अधिकतम संतों ने इनके पूर्वजों को हनुमानवंशीय महाराष्ट्रीय ब्राह्मण माना है। इनके पिता का नाम श्री रामदास जी और माता का नाम श्रीमती जानकी देवी था।

कुछ संतों के मत यह भी है–परंपरा के अनुसार नाभादास डोम अथवा महाराष्ट्रीय ब्राह्मण जाति के थे। टीकाकार प्रियादास ने इन्हें हनुमानवंशीय महाराष्ट्रीय ब्राह्मण माना है। टीकाकार रूपकला जी ने इन्हें डोम जाति का मानते हुए लिखा है कि डोम नीच जाति नहीं थी, वरन् कलावंत, ढाढी, भाट, डोम आदि गानविद्याप्रवीण जातियों के ही नाम हैं। मिश्रबंधुओं ने भी इन्हें हनुमानवंशी मानते हुए लिखा है कि मारवाड़ी में हनुमान शब्द 'डोम' के लिए प्रयुक्त होता है।

'श्री नाभाजी का जन्म प्रशंसनीय हनुमान–वंश में हुआ।' हनुमान वंश क्या है?

महाराष्ट्र में एक ऋग्वेदि ब्राह्मण परिवार था, हनुमान जी के वे अनन्य भक्त थे। उनके कोई संतान नहीं थी। किसी लौकिक प्रसंग में किसी ने पुत्रहीन कहकर उन्हें पीड़ित कर दिया और इस बात से दुखी होकर उन्होंने एक संत से पुत्र प्राप्ति की इच्छा की प्रार्थना करने लगे। संत ने उन्हें श्री हनुमान जी की उपासना करने के लिए कहा। श्री हनुमान जी की नित्य उपासना वे करने लगे और उनके चरणों में पुत्र प्राप्ति के लिए प्रार्थना करने लगे।

एक दिन प्रसन्न होकर श्री हनुमान जी ने दर्शन दे कर कहा कि तुम्हारे भाग्य में पुत्र सुख नहीं है पर आप हमारे बहुत प्रेमी भक्त हो अतः हनुमान जी ने आशीर्वाद दिया की मेरी कृपा से तुम्हारा वंश चलेगा। श्री हनुमान जी ने यह भी कहा था कि आपके वंश में एक अद्‌भुत महात्मा प्रकट होंगे जिनके द्वारा जगत का कल्याण होगा। उस समय से इस वंश को हनुमान वंश कहा जाने लगा।

श्री नाभादास जी जन्म से ही नेत्रहीन थे, नेत्र के चिन्ह तक नहीं थे। इस बात से इनके पिताजी बड़े दुखी हुए। पिताजी ने ज्योतिष शास्त्र के विद्वानों से इनके भविष्य के बारे में पूछा तो ज्योतिषियों ने बताया की यह बहुत अद्‌भुत बालक है, यह जगत में लाखों लोगों का भक्ति मार्ग प्रशस्त करेंगा। जब ये 2 वर्ष के थे तब इनके पिताजी का देहांत हो गया। उस के बाद माता ने इनका पालन पोषण किया। जब श्री नाभाजी 5 वर्ष के हुए उस समय महाराष्ट्र में भयंकर अकाल पड गया था, कोई फल खाकर, कोई घास खाकर गुजर करने लगा।

अकाल से पीड़ित हो कर बालक को लेकर उनकी माता जल और अन्न की खोज में भटकने लगी। कहीं दूर-दूर तक कुछ नहीं मिल रहा था। भटकते हुए वे राजस्थान की ओर आये और वहाँ एक वन में वृक्ष के नीचे बालक को बिठा दिया। थकान के कारण बालक को साथ ले कर घूमना कठिन हो गया था अतः माता ने कहा कि बेटा तुम यहीं बैठो, मैं अन्न जल की खोज करने जाती हूँ। अन्न जल की खोज में माता बहुत दूर तक निकल गयी और कमजोरी के कारण पृथ्वी पर गिरने लगी।

उस समय उनको यह विश्वास हो गया की अब प्राण रहेंगे नहीं। इन्होंने भगवान् से विनती की-मेरे बालक को मैं निर्जन वन में छोड़ कर आयी हूँ, नेत्रहीन, पितृहीन बालक के अब आप ही रक्षक हैं। अपने-अपने घर की तो सबको ममता होती है पर आपको तो सबके घरों की ममता है। मैं तो केवल जन्म देने वाली माता हूं, परंतु वास्तव में सबके माता-पिता आप ही हैं। इनकी माता

का शरीर छूट गया और नाभाजी वन में रह गए। बहुत देर तक माता नहीं आयी जानकार नाभा जी माता को पुकारने लगे और कभी किसी वृक्ष से टकराते, कभी किसी वृक्ष से। श्री नाभा जी ने निश्चय किया की अब किसी नर से सहायता मांग कर कुछ नहीं होगा अब तो केवल नारायण ही सहायता कर सकते है।

नाभाजी भगवान् नारायण को पुकारने लगे और इसी पुकार से भगवान् ने उनपर महान् कृपा की थी। श्री नाभा जी की करुण पुकार को भगवान् ने सुन लिया। दैवयोग से श्री किल्हदेव जी और श्री अग्रदेव जी–यह दो महापुरुष हरिद्वार कुम्भ स्नान करके अपने आश्रम गलता जी (जयपुर) जा रहे थे। यह गलता आश्रम श्री गालव ऋषि का आश्रम माना जाता है। चलते चलते संतों को दो मार्ग पड़े, एक वन (जंगल) वाला रास्ता और दूसरा राजमार्ग वाला रास्ता। उन्होंने सोचा की जंगल से जाना ठीक नहीं होगा अतः राजमार्ग से जाना ही उचित है। जैसे ही वे राजमार्ग की ओर चलने लगे उसी समय आवाज आयी–हे संतों ! ठहरिए। आस पास कोई नहीं दिखाई पड़ा, इस बात से निश्चित हो गया की यह आकाशवाणी है।

दोनों संत हाथ जोड़े खड़े हो गए। आगे आकाशवाणी हुई की आप इस रास्ते को छोड़कर वनमार्ग से जाएं, वहाँ आपको एक अनोखा रत्न प्राप्त होगा जिसके द्वारा जगत का बहुत बड़ा कल्याण होगा।आकाशवाणी मौन होने पर दोनों संत सोचने लगे की हम फक्कड़ महात्माओं को रत्न से क्या लेना–देना ? ये कैसी आकाशवाणी हो गयी ? तब श्री किल्हदेवजी कहने लगे की हो सकता है कि वह रत्न पत्थर का न हो। वह रत्न किसी और रूप में भी हो सकता है। दोनों संत जंगल वाले मार्ग की ओर चल दिए।

रास्ते में उन्हें यह नेत्रहीन बालक दिखाई पड़ा। वह वन में भटक रहा है, पेड़ों से बारबार टकराता है। कह रहा है– हे दीनबंधु प्रभु नारायण चरणों में मुझे चकाना दो, जिसमें यह जीवन सार्थक हो ऐसा कोई सहज बहना हो। संतों ने सोचा की कहीं इसी बालक के लिए ही तो आकाशवाणी नहीं हुई। संत उसके पास गए और श्री किल्हदेवजी जी ने नाभाजी से कहा–वत्स। जैसे ही यह शब्द नाभाजी ने सुना, वे जान गए की यह कोई महात्मा है। आवाज की दिशा का अनुसंधान करके नाभाजी ने संत को प्रणाम् किया। नाभा जी से सन्तों ने कुछ प्रश्न किये–तुम्हारा पिता कौन है? बालक ने कहा–जो सबके पिता है वहीं हमारे पिता हैं?

आगे पूछा गया–क्या तुम अनाथ हो? बालक ने कहा–नहीं, जिसके नाथ जगन्नाथ वह अनाथ कैसे हो सकता है ? फिर संतों ने पूछा–कहां से आये हो? बालक ने कहा–अपने स्वरूप को भुला हुआ जीव यह नहीं जान पता की वह कहाँ से आया है, पर जहाँ से सब आये हैं मैं भी उसी भगवान् के नित्य धाम से आया हु। संतो ने पूछा–तुम्हारा नाम क्या है? बालक ने कहा–पंच महाभूत और सात धातुओं से बना शरीर है, कैसे कहु मैं कौन हूं। तुम्हे कहा जाना है– जाना तो मुझे भगवन के चरण कमलों में है परंतु संसार के जाल में फस गया हूं, आप जैसे महापुरुष जब तक मार्ग नहीं बताते तब तक संसार को पार करना कैसे संभव है।

फिर संतों ने पूछा–इस निर्जन वन में तुम्हारा रक्षक कौन है?–जो माता के गर्भ में रक्षा करता है वहीं मेरी रक्षा कर रहा है। दोनों संत समझ गए के यह साधारण बालक नहीं है, अवश्य इसी बालक रत्न के लिए आकाशवाणी हुई थी, बड़े–बड़े साधक भी ऐसे उत्तर नहीं दे पाते। शरीर के माता–पिता के बारे में संतों ने पूछा तब नाभा जी ने सारी घटना सुनायी। संत जान गए की माता–पिता शरीर छोड़ चुके हैं। सन्तों ने बालक से पूछा–क्या तुम हमारे साथ चलोगे ? हम गलता गादी, जयपुर में विराजते हैं। बालक ने हाँ कहा।

श्री अग्रदास जी ने अपने बड़े गुरूभाई श्री किल्हदेवजी जी से कहा–यह तो निश्चित है कि इस बालक की भीतर वाली आँखें तो खुली हुई है परंतु यदि इसकी बहार वाली आखें खुल जाएं तो यह और अधिक सेवा के योग्य हो जायेगा। सर्व समर्थ सिद्ध महात्मा श्री किल्हदेवजी ने अपने कमण्डलु से जल लेकर नाभाजी के नेत्रों पर छिड़क दिया। संतों की कृपा से नाभाजी के दोनों नेत्र खुल गये और सामने दोनों संतों की जोड़ी को नाभा जी ने निहारा। संतों के दर्शन पाकर श्री नाभा जी को परम आनंद हुआ। दोनों सिद्ध महापुरुषों के दर्शन पाकर नाभा जी उनके चरणों मे पड़ गये। उनके नेत्रों में आँसू आ गये। दोनों संत कृपा करके बालक नाभजी को अपने साथ गलता जी (जयपुर) लाये।

संत महात्मा अवैष्णव के हाथ की सेवा ग्रहण करते नहीं अत: बालक को दीक्षा देने का निर्णय किया गया। श्री अग्रदेव जी ने किल्हदेवजी से प्रार्थना की के आप बड़े हैं आप इस बालक पर कृपा करें। श्री किल्हदेव जी ने कहा–नहीं आप ही इसे दीक्षा दीजिये, यह आपका ही है। श्री किल्हदेवजी की आज्ञा पाकर श्री अग्रदेव जी ने नाभा जी से कहा–बड़े गुरूभाई दीक्षा के लिए कह रहे हैं, क्या तुम दीक्षा ग्रहण करोगे ? नाभा जी बोले–मुझे तो पता ही नहीं की मेरा हित

किसमें है, मेरे जीवन की डोर तो अब आपके हाथ में है। शुभ मुहूर्त देखकर श्री अग्रदेव जी ने इन्हें श्रीराम मंत्र का उपदेश दिया और विधिवत पंचसंस्कार किये।

पांचवा संस्कार–नामकरण का समय आनेपर गुरूदेव सोचने लगे कि इसका क्या नाम रखा जाए? (नाभा नाम तो इनका बहुत बाद में पड़ा, माता–पिता द्वारा रखा नाम तो इन्हें याद ही नहीं था)। गुरूद्वव ने कहा–जब तुम हमें मिले थे तब तुम नारायण नाम पुकार रहे थे और जब तुमने हमारे दर्शन किये तब भी तुमने कहा–हे प्रभु नारायण आपकी जय हो, आपने हमें चरणों में स्थान दिया है। तुम्हारा नाम आज से 'नारायण दास' होगा। गुरूजी के नाभि अथवा पेट की बात जान लेने के कारण आगे इनका नाम नाभा नाभादास जी पड़ गया (आगे के प्रसंग में पढ़ें)।

गलता आश्रम, जयपुर में साधुसेवा प्रकट प्रसिद्ध थी। श्री अग्रदेवजी ने अपनी गुरू परम्परा के अनुसार उपासना की विधि बताई और दो नियम इनके लिए निश्चित कर दिए–प्रथम संतों की सेवा (संतों की सीथप्रसादि, चरणोदक ग्रहण) और दूसरी ठाकुरसेवा। गुरूदेव संतसेवा के महत्व को जानते थे और उनके गुरूदेव श्री कृष्णदास पयहारी जी द्वारा ही गलता जी में नित्य संत सेवा की परंपरा चलायी गयी थी। नाभाजी को भी उन्होंने संतसेवा में लगा दिया। संतों के चरणोदक तथा उनके सीथ–प्रसाद का सेवन करने से श्री नाभजी का संतो मे अपार प्रेम हो गया। आने–जाने वाले सब संत श्री नारायणदास जी की संत सेवा की खूब प्रशंसा करते थे। श्री अग्रदेव जी और श्री किल्हदेवजी को यह सुनकर बहुत हर्ष होता था।

गुरूदेव श्री अग्रदेव स्वामी द्वारा नाभा जी को भक्तमाल ग्रन्थ रचना की आज्ञा–

श्री जानकी जी की प्रधान सखी चन्द्रकला जी ही आचार्य स्वामी श्रीअग्रदेवजी महाराज के रूप में प्रकट हुई है। एक बार प्रात: काल श्री अग्रदेव जी महाराज भगवान् श्री सीताराम जी की मानसी सेवा में संलग्न थे और उनके शिष्य श्री नाभाजी महाराज अतिकोमल अवं मधुर संरक्षण के साथ धीरे–धीरे प्रेम से पंखा कर रहे थे। मानसी सेवा में श्री अग्रदेव जी ने श्री सीताराम जी को सुंदर स्नान करवाया, प्रक्षालन किया, शृंगार किया, वस्त्र अर्पण किये और अंतिम सेवा थी पुष्पमाला धारण करवाने की। श्री रामजी सर झुकाये खड़े हैं पुष्पमाला पहनने के लिए।

उसी सम श्री अग्रदास जी का एक व्यापारी सेठ शिष्य जहाज पर चढ़ा हुआ समुद्री यात्रा कर रहा था। जहाज से व्यापार करने दूर निकल था। उसका जहाज भँवर में फंस गया, जहाज में बड़े के भीतर जल भरने लग गया। चालाक निरुपाय हो गये, उन्होंने कहा–समुद्र में अथाह जल है, बेड़े में छिद्र है। बचना बहुत मुश्किल है सेठ जी, अब तो कोई चमत्कार हो जाए तो ही बचना संभव है। आपका जिस पर विश्वास हो उसीको याद कर लो। तब उस शिष्य ने सोचा की हमारे गुरूदेव श्री अग्रदेवजी बड़े सिद्ध महात्मा हैं, बहुत से लोग भी उनको सिद्ध कोटि के संत बताते हैं। वह श्री अग्रदेव जी का स्मरण करने लगा। उससे श्रीअग्रदेव जी का ध्यान अतिसुंदर स्वरूप भगवान् श्री सीतारामजी की सेवा से हट गया।

अग्रदेव जी सोचने लगे की अब क्या किया जाए, इधर सरकार सर झुकाये खड़े हैं और उधर शिष्य के प्राण संकट में है। सेवा छोड़ कर शिष्य को बचाते हैं तो सेवा अपराध हो जायेगा और सेवा करने में लग गए तो शिष्य डूब जायेगा। इसी विचार में अग्रदेव जी कोई सही निर्णय नहीं ले पा रहे थे। गुरूदेव की मानसी सेवा में विघ्न जानकार श्री नाभाजी ने वहीं पर खड़े–खड़े पंखे को जोर से चलाया । पंखा चला इधर और हवा का झोंक पंहुचा समुद्र में। नाविक को भी संत कृपा से बुद्धि सुझी और छिद्र का पता चल गया, उसने अपनी एड़ी वहां लगा ली और एक क्षण में ऐसा हवा का झोंक आया की जहाज किनारे पर लग गया।

नाविक ने कहा–सेठ जी ! आखें खोलो। आपकी पुकार स्वीकार हो गयी, हम लोग दिनरात समुद्र में यात्रा करते हैं अतः हमें हवाओं की दिशा का ज्ञान है परंतु पता नहीं आज अचानक विपरीत दिशा से हवा का झोंक आया और जहाज किनारे आ गयी। व्यापारी ने कहा–तुम्हें हवा का झोंका दिखाई दिया, मुझे तो गुरू कृपा का झोंका दिखाई दिया। अब अग्रदेव जी ने सोचा कि आश्रित की लाज बचनी चाहिए, भगवान को माला पीछे पहनाएंगे पहले शिष्य के प्राण बचाने चाहिए। मन से गुप्त रूप में समुद्र पर पहुचे। वहाँ उन्हें ना कोई जहाज दिखाई पड़ा ना कोई शिष्य ना तूफान। अब वे सोचने लगे की इतने विशाल समुद्र पर मेरे प्रभु ने सेतु कैसे बनाया होगा ? एक क्षण के लिए भी यह नहीं ठहर रहा। वे सेतुबंधन लीला के चिंतन में डूब गए।

बहुत देर तक गुरूदेव नहीं लौटे, वहीं समुद्र पर सेतुबंधन लीला का स्मरण करने में मग्न हो गए। श्री नाभाजी ने सोचा अब थोड़ा ढिठाई करनी पड़ेगी अथवा

प्रभु सर झुकाये ऐसे ही खड़े रह जायेंगे। श्रीगुरूदेव से नाभा जी ने नम्र निवेदन किया–प्रभो ! जहाज तो बहुत दूर निकल गया, अब आप कृपा कर के समुद्र को मत निहारिये, आप तो प्रिय प्रियतम के रूप समुद्र का दर्शन कीजिये, उसी शोभापूर्ण भगवान् की सेवा में पुनः लग जाइये। यह सुनकर श्री अग्रदेव जी ने आँखे खोलीं और देखने लगे की हमारे मन की बात किसने जान ली ?

उन्हें लगा कि शायद यहां कोई सिद्ध महात्मा आ गए हैं जिन्होंने मेरे हृदय की बात जान ली हो। उन्हें यह लगा ही नहीं की नाभा जी यह बात बोल सकते हैं। जब आसपास कोई नहीं दिखाई दिया तब नाभादास जी से पूछा की अभी कौन बोला ? किसकी आवाज हमने सुनी ? श्री नाभाजी ने हाथ जोड़कर कहा–जिस अनाथ को आपने कृपा करके जंगल से यहां लाया, जिसको आपने बचपन से सीथ–प्रसाद (संतों के पत्तल में बचा शेष भोजन प्रसाद) देकर पाला है, आपके उसी दास ने अभी यह प्रार्थना की है।

श्री नाभाजी का उपर्युक्त कथन सुनकर श्री अग्रदेव जी को महान् तथा नवीन आश्चर्य हुआ। मनमें विचार करने लगे कि इसका यहाँ मेरी मानसी सेवा में प्रवेश कैसे हो गया और यहीं खड़े–खड़े इसने जहाज की रक्षा कैसे की? विचार करते ही उनके मन में बड़ी प्रसन्नता हुई। वे जान गए कि यह सब संतों की सेवा तथा उनके सीथ–प्रसाद ग्रहण करने का ही प्रभाव है, जिससे ऐसी दिव्य दृष्टि प्राप्त हो गयी है।

अब जो मानसी सेवा अधूरी रह गयी थी, उसमे पुनः लग गए। विलंब के लिए सखी चन्द्रकला जी (अग्रदेव जी) ने क्षमा मांगी। प्रभु श्रीराम मुस्कुराते दिखाई पड़े, चन्द्रकला जी ने पूछा की प्रभु आप क्यों मुस्कुरा रहे है? प्रभु ने कहा–चन्द्रकला ! यह बालक जो आपकी सेवा में है यह कोई साधारण बालक नहीं हैं, साक्षात् ब्रह्मा जी ही हैं। यह सब लीला हमारी इच्छा से हुई है, इस बालक के द्वारा जगत का बहुत बड़ा कल्याण होना है इसका बहुत अच्छे से संभल करना। प्रभु को माला पहनाकर मानसी सेवा से बहार आये और नारायणदास से कहा कि तुमने हमारे पेट की बात (नाभि की बात) जान ली इसीलिए तुम्हे जगत में नाभा नाम से जाना जायेगा। इस घटना के बाद से उनका नाम नाभा पड़ गया।

''(नाभा नाम के संबन्ध में संतों के मुख से एक और कथा सुनी गई है। वह यह कि अग्रदास जी भगवान् श्री सीताराम जी की मानसी सेवा कर रहे थे। मानसी सेवा में प्रभु को मुकुट धारण करवा दिया था और माला धारण करानी

थी। मानसी भावना में माला छोटी थी जो मुकुट के ऊपर से धारण कराने में कुछ जटिल-सी लग रही थी।

अग्रदास जी प्रयास कर रहे थे, परन्तु वह माला भगवान् श्रीसीतारामजी के गले में जा नहीं रही थी। उसी समय नारायणदास ने कहा-गुरूदेव! पहले यदि मानसी सेवा में मुकुट उतार लिया जाए, माला धारण कराकर फिर मुकुट धारण करा दिया जाए, सब ठीक हो जाएगा। तब अग्रदासजी ने कहा कि-नारायणदास! तुमने तो मेरी नाभि की बात जान ली, आजसे तुम्हारा उपनाम नाभा होगा।)''

श्री अग्रदेव जी ने कहा कि तुम्हारे ऊपर यह साधुओं की कृपा हुई है। यह नहीं कहा कि हमारी कृपा अथवा तुम्हारी सेवा का प्रताप है, उन्होंने कहा कि संतों की कृपा से हुआ है। श्री अग्रदेव जी ने आगे कहा कि अब तुम उन्हीं साधु-संतों के गुण, स्वरूप और हृदय के भावों का वर्णन करो। इस आज्ञा को सुनकर श्री नाभा जी ने हाथ जोड़कर कहा-भगवन् ! मैं श्रीराम-कृष्ण के चरित्रों को तो कुछ गा भी सकता हूँ क्योंकि उन चरित्रों का आधार श्रीमद् भागवत,वाल्मीकि रामायण इत्यादि परंतु संतों के चरित्रों का ओर छोर नहीं पा सकता हूँ, क्योंकि उनके रहस्य अति गंभीर है। बहुत से भक्त हुए जिन्होंने बड़े गुप्त रूप में भजन किया। मैं भक्तों की भक्ति के रहस्य को नहीं पा सकता। तब श्रीअग्रदेव जी ने समझाकर कहा-जिन्होंने तुम्हे मेरी मानसी सेवा और सागर में नाव दिखा दी, वे ही भक्त भगवान् तुम्हारे हृदय में आकर सब रहस्यों को कहेंगे और अपना स्वरूप दिखाएंगे।

श्री नाभादास जी जिन भक्तों का स्मरण करते वह नाभाजी के चित्त में अपनी लीला प्रकट कर देते और नाभा जी उसको लिखते जाते परंतु जब उन्होंने वृन्दावन के अनन्य रसिकों का स्मरण किया तब उनके चित्त में कोई लीला प्रकट नहीं हुई। श्री गुरूदेव से प्रार्थना करने पर उन्होंने बताया की इनकी स्वामिनी तो श्री राधारानी हैं, उनका स्मरण किये बिन रसिकों के चरित्र चित्त में नहीं आ सकते। अतः श्री नाभाजी ने पहले श्री राधारानी जी के चरणों का स्मरण किया उसके बाद समस्त रसिको की लीलाएं उनके चित्त में प्रकट हो गयीं।

किसी भी ग्रन्थ के लेखन का प्रारम्भ मंगलाचरण से होता है। 3 प्रकार के मंगलाचरण होते है– आशीर्वादात्मक, वस्तुनिर्देशात्मक, नमस्करात्मक। पहले में पाठकों के लिए आशीर्वाद दिया जाता है। दूसरे में बताया जाता है कि इस ग्रन्थ में किस विषय की चर्चा है। तीसरे में श्री गुरू इष्ट गणेश आदि को नमस्कार किया जाता है। विशेष बात यह है कि श्री भक्तमाल के मंगलाचरण में तीनों

प्रकार के मंगलाचरण आते है। नाभादास जी ने ग्रन्थ का प्रारम्भ मंगलाचरण के रूप में निम्न दोहे से किया है–

भक्त भक्ति भगवंत गुरू चतुर नाम बपु एक
इनके पद बंदन किएँ नासत बिघ्न अनेक।।
मंगल आदि विचार रहि वस्तु न और अनूप।
हरि जन को जस गावते हरिजन मंगल रूप।।
संतन निरने कियो माथि श्रुति पुराण इतिहास।
भजिबे को दोई सुघर के हरि के हरिदास।।
(श्री गुरू)अग्रदेव आग्या दई भक्तन को जस गाऊं।
भवसागर के तरन को नाहिंन और उपाउ।।

जैसे गाय के थन देखने में चार हैं परंतु चारों के अंदर एक ही सामान दूध भरा रहता है, वैसे ही भक्त, भक्ति, भगवान् और गुरू ये चारों अलग-अलग दिखाई देने पर भी सर्वदा सर्वथा अभिन्न हैं। चारों में से एक से प्रेम हो जाने पर तीनो स्वतः प्राप्त हो जाते है। इनके श्रीचरणों की वन्दना करने से समस्त विघ्नों का पूर्णरूप से नाश हो जाता है। ग्रन्थ के आरम्भ में मंगलाचाण के सम्बन्ध में विचार करने पर यहीं समझ में आता है कि भक्त चरित्रों के समान दूसरी और कोई वस्तु सुन्दर नहीं है, जिससे मंगलाचरण किया जाय।

भगवद्भक्तों का चरित्रगान करने में भगवद्भक्त ही मंगलरूप हैं। वेद, पुराण, इतिहास आदि सभी शास्त्रों ने तथा सभी साधु सन्तों ने यहीं निर्णय किया है कि भजन, आराधना के लिये भगवान् या भगवान् के भक्त दो ही सबसे सुन्दर हैं।। स्वामी श्रीअग्रदेव जी (श्री अग्रदास जी) ने मुझ नारायण दास (नाभादास) को आज्ञा दी कि भक्तों के यशोगान करो, क्योकि संसार सागर से पार होने का इससे सरल दूसरा कोई उपाय नहीं है।।

श्री नाभा जी कहते है कि भगवद्भक्तों के गुण और चरित्र का वर्णन करने से इस संसार में कीर्ति और सभी प्रकार के कल्याणों की प्राप्ति होती है, आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक-तीनो तापो का नाश होता है।

जग कीरति मंगल उदै तीनौं ताप नसायँ।
हरिजन को गन बरनते हरि हृदि अटल बसायँ।।(भक्तमाल दोहा 108)

श्री नाभाजी जीवों को सावधान करते हुए कहते है–यदि भगवान् को प्राप्त करने की आशा है तो भक्तों के गुणों को गाइये, निस्संदेह भगवत्प्राप्ति हो जायेगी। नहीं तो जन्म-जन्मान्तरों में किये गए अनेक पुण्य भुने हुए बीज की तरह बेकार

हो जायेंगे (भुने हुए बीज पुनः अंकुरित नहीं होते)। उनसे कल्याण न होगा, फिर जन्म-जन्म में पछताना पड़ेगा।

(जो)हरि प्रापति की आस है तौ हरिजन गुन गाव।

नतरु सुकृत भुंजे बीज ज्यौ जनम जनम पछिताय।।

(भक्तमाल दोहा 210)

जो भक्तों के चरित्रों को गाता है, श्रवण करता है तथा उनका अनुमोदन करता है, वह भगवान् को पुत्र के सामान प्रिय है, उसे भगवान् अपनी गोद में बिठा लेते है।

सो प्रभु प्यारौ पुत्र ज्यों बैठे हरि की गोद। (दोहा 211)

सत्संग में संत चरित्रों को सुनते-सुनते उनमे श्रद्धा और विश्वास दृढ़ हो जाता है। भक्त, भक्ति, भगवान् और गुरूदेव में श्रद्धा रखने वाले सभी प्राणी इसके अधिकारी हैं। श्रद्धा विश्वास विहीन, नास्तिक और कुतर्की व्यक्ति श्री भक्तमाल का अधिकारी नहीं है। वे कदाचित् पढ़ेंगे और सुनेंगे तो संतों की और ग्रंथो की निंदा करेंगे। इससे लोक और परलोक दोनों बिगड़ जायेंगे।

जैसे श्रीमद्भागवत और रामायण में चीर हरण,रास लीला और बाली वध की लीला रहस्यमयी है, वैसे ही श्री भक्तमाल में कुछ भक्तों के चरित्र रहस्यपूर्ण है। इन लीलाओं को सबके लिए समझ पाना कठिन है अतः भक्तमाल को गुरूदेव अथवा संतों के श्रीमुख से श्रवण करना उत्तम है। अविश्वास और कुतर्कों को त्यागकर भक्तमाल का श्रवण, मनन और निदिध्यासन करके जीवन को सफल बनायें। संत महात्माओं द्वारा श्री भक्तमाल का श्रवण करने से मन की शंकाए मिटेंगी। यदि भक्त चरित्रों को समझने में परेशानी हो तो संतों के चरणों में जाकर उन्हें समझना चाहिए, संत और ग्रंथों के बारे में गलत विचार, कुतर्क और अविश्वास नहीं करना चाहिए।

जो भक्तमाल के रहस्य को जानने वाले हैं वे कभी भी किसी संत वेशधारी की निंदा नहीं करेंगे। प्रायः लोग कहीं सुनते है कि अमुक संत ने ऐसा व्यवहार किया तो उसके बारे में गलत वचन प्रयोग करने लगते है। यदि आपको उनपर श्रद्धा नहीं है तो न रखें, परंतु निंदा न करें। यदि वह सच्चा संत हुआ तो यह बहुत भारी अपराध निश्चित रूप से होगा। जिनमें वैष्णव चिन्ह (तिलक, कंठी) न भी दिखाई पड़े उन्हें ऐसा सोच कर सम्मान करें की इनके हृदय में अभी तक भक्ति जागृत नहीं हुई है। यह बहुत से भक्तमाली संतों का मत है।

सभी संतों का बिना जाति विचार किये सम्मान करना सबसे जरुरी बात है। भक्ति का अधिकार सभी वर्णों के व्यक्तियों को है इस बात को प्रमाणित करने के लिए अनेक संत महात्मा विविध जातियों में प्रकट हुए है जैसे शबरी, निषाद, चोखमेळा, तुकाराम, कबीर, रैदास, धन्ना, रसखान, गुलाब सखी आदि। जो हरी को भजे वहीं हरी का है। पीपल का वृक्ष कौवे की विष्ठा से उत्पन्न होता है परंतु उसकी पूजा-परिक्रमा पंडित करते हैं। तुलसी गन्दी जगह में भी प्रकट हो फिर भी उसे अपवित्र नहीं समझा जाता। कबीरदास जी ने कहा है–

जाति न पूछो साधू की, पूछ लीजिये ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान।।

ग्रंथ के उपसंहार में श्री नाभादास जी कहते हैं– किसी को योग का भरोसा है, किसी को यज्ञ का, किसी को कुल का और किसी को अपने सत्कर्मों का, किंतु मुझ नारायण (नाभादास) की तो केवल यहीं अभिलाषा है कि गुरूदेव की कृपा से भक्तों की यह माला मेरे हृदय देश में सदा विराजमान रहे।

भक्तमाल के सुमेरू –

श्री नाभादास जी ने भक्तों की माला (भक्तमाल) तो बनाई परंतु माला का सुमेरू का चयन करना कठिन हो गया। किस संत को सुमेरू बनाएं इस बात का निर्णय कठिन हो रहा था। पूज्य श्री अग्रदेवचार्य जी के चरणों में प्रार्थना करने पर उन्होंने प्रेरणा की कि वृंदावन में भंडारा करो और संतों का उत्सव करो, उसी भंडारे उत्सव में कोई न कोई संत सुमेरू के रूप में प्राप्त हो जायेगा। सभी तीर्थ धामो में संतों को कृपापूर्वक भंडारे में पधारने का निमंत्रण भेजा गया। काशी में अस्सी घाट पर श्री तुलसीदास जी को भी निमंत्रण पहुंचा था परंतु उस समय वे काशी में नहीं थे। उस समय वे भारत के तत्कालीन बादशाह अकबर के आमंत्रण पर दिल्ली पधारे थे।

दिल्ली से लौटते समय गोस्वामी तुलसीदास जी वृंदावन दर्शन के लिए पहुंचे। वे श्री वृंदावन में कालीदह के समीप श्रीराम गुलेला नामक स्थान पर ठहर गए। श्री नाभाजी का भंडारे में पधारना अति आवश्यक जानकार गोपेश्वर महादेव ने प्रत्यक्ष दर्शन देकर गोस्वामी जी से भंडारे में जाकर संतों के दर्शन करने का अनुरोध किया। गोस्वामी जी भगवान् शंकर की आज्ञा पाकर भंडारे में पधारे। गोस्वामी जी जब वहां पहुंचे उस समय संतों की पंगत बैठ चुकी थी। स्थान पूरा भरा हुआ था, स्थान पर बैठने की कोई जगह नहीं थी।

तुलसीदास उस स्थान पर बैठ गए, जहां पूज्यपाद संतों के पादत्राण (जूतियां)रखी हुई थीं। परोसने वालो ने उन्हें पत्तल दी और उसमें सब्जियां व पूरियां परोस दीं। कुछ देर बाद सेवक खीर लेकर आया। उसने पूछा–महाराज ! आपका पात्र कहाँ है ? खीर किस पात्र में परोसी जाये ?

तुलसीदास जी ने एक संत की जूती हाथो में लेकर कहा–इसमें परोस दो खीर। यह सुनते ही खीर परोसने वाला क्रोधित को उठा बोला–अरे राम राम ! कैसा साधू है, जो कमंडल नहीं लाया खीर पाने के लिए,अपना पात्र लाओ। पागल हो गये हो जो इस जूती में खीर लोगे?

शोर सुनाई देने पर नाभादास जी वह पर दौड़ कर आये। उन्होंने सोचा कहीं किसी संत का भूल कर भी अपमान न हो जाए। नाभादास जी यह बात नहीं जानते थे कि तुलसीदास जी वृंदावन पधारे हुए है। उस समय संत समाज में गोस्वामी जी का नाम बहुत प्रसिद्ध था, यदि वे अपना परिचय पहले देते तो उन्हें सिंहासन पर बिठाया जाता परंतु धन्य है गोस्वामी जी का दैन्य।

नाभादास जी ने पूछा–संत भगवान् ! आप संत की जूती में खीर क्यों पाना चाहते हैं? यह प्रश्न सुनते ही गोस्वामी जी के नेत्र भर आये। उन्होंने उत्तर दिया–परोसने वाले सेवक ने कहा कि खीर पाने के लिए पात्र लाओ। संत भगवान् की जूती से उत्तम पात्र और कौन–सा हो सकता है ? जीव के कल्याण का सरल श्रेष्ठ साधन है कि उसे अकिंचन भक्त की चरण रज प्राप्त हो जाए। प्रहलाद जी ने कहा है– न अपने आप बुद्धि भगवान् में लगती है और न किसी के द्वारा प्रेरित किये जाने पर लगती है। तब तक बुद्धि भगवान् में नहीं लगती जब तक किसी आकिंचन प्रेमी रसिक भक्त की चरण रज मस्तक पर धारण नहीं की जाती। यह जूती परम भाग्यशालिनी है।

इस जूती को न जाने कितने समय से संत के चरण की रज लगती आयी है और केवल संत चरण रज ही नहीं अपितु पवित्र ब्रजरज इस जूती पर लगी है। यह रज खीर के साथ शरीर के अंदर जाएगी तो हमारा अंत:करण पवित्र हो जाएगा। संत की चरण रज में ऐसी श्रद्धा देखकर नाभा जी के नेत्र भर आये। उन्होंने नेत्र बंद कर के देखा तो जान गए की यह तो भक्त चरित्र प्रकट करते समय (भक्तमाल लेखन के समय) हमारे ध्यान में पधारे हुए महापुरुष हैं। नाभाजी ने प्रणाम् कर के कहा–आप तो गोस्वामी श्री तुलसीदास जी हैं, हम पहचान नहीं पाये।

गोस्वामी जी ने कहा–हां ! संत समाज में दास को इसी नाम से जाना जाता है। परोसने वाले सेवक ने तुलसीदास जी के चरणों में गिरकर क्षमा याचना की। सभी संतों ने गोस्वामी जी की अद्‌भुत दीनता को प्रणाम् किया। इसके बाद श्री नाभादास जी ने गोस्वामी तुलसीदास जी को सिंहासन पर विराजमान करके पूजन किया और कहा कि इतने बड़े महापुरुष होने पर भी ऐसी दीनता जिनके हृदय में है, संतों के प्रति ऐसी श्रद्धा जिनके हृदय में है, वे महात्मा ही भक्तमाल के सुमेरू हो सकते है।

संतों की उपस्तिथि में नाभादास जी ने पूज्यपाद गोस्वामी तुलसीदास जी को भक्तमाल सुमेरू के रूप में स्वीकार किया। जो भक्तमाल की प्राचीन पांडुलिपियां जो है, उनमें श्री तुलसीदास जी के कवित्त के ऊपर लिखा है– भक्तमाल सुमेरू श्री गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज।

महान संत पूज्य श्री रामकुमार दास जी का एक भाव है– तुलसीदास जी के सुमेरू होने पर किसी प्रकार की कोई शंका नहीं है, संदेह नहीं है और कोई विरोध भी नहीं है परंतु एक भाव उनका है कि भक्तमाल सुमेरू पूज्य श्री कृष्णदास पयोहारी जी महाराज है (नाभा जी के दादा गुरू)। उनका भाव है कि कीसी भी माला के एक एक दाने में सूत्र एक ओर से जाता है परंतु एक सुमेरू ऐसा होता है जिसमे सूत्र दोनो ओर से जाता है।

माला के दानों में एक विशिष्ट दाना है सुमेरू। भक्तमाल में जितने भक्त हैं उनके प्रायः एक भक्त का एक छप्पय है। कहीं–कहीं तो एक ही छप्पय में अनेक भक्तों का स्मरण किया गया है परंतु श्री कृष्णदास पयहारी जी ऐसे संत हैं जिनके लिए नाभा जी ने दो छप्पय छंद लिखे हैं। इस भाव के कारण उन्होंने श्री कृष्णदास पयहारी जी को सुमेरू के रूप में स्वीकार करने का भाव भी संतों को प्रिय है।

ग्रंथ में दोहे तथा छप्पय संख्या

श्री नाभादास जी की भक्तमाल में दोहे तथा छप्पयों की कुल संख्या 214 है, कुछ संतों का मत है 215। एक पद को कुछ संत प्रक्षिप्त मानते हैं तथा कुछ संत मूल में मानते हैं। श्री अवध के महान रसिक संत श्री रूपकला जी की भक्तमाल पर टीका बहुत प्रसिद्ध है, उनका भाव है–

दशरथ जी का स्मरण भक्तमाल में अलग से नहीं किया गया है। श्री रूपकला जी कहते है कि दशरथ जी का स्मरण तो भक्तमाल में है परंतु

सीधे–सीधे नहीं है। श्री मनु और शत:पा जी ने नैमिषारण्य क्षेत्र में तपस्या करके भगवान् से अपने जैसा होने का वर माँगा।

मनु जी ही दशरथ जी हुए और शत:पा जी ही कौशल्या माता हुई। यह बात सभी के समझ में नहीं आती इसीलिए श्री रूपकला जी ने दशरथ जी के लिए एक छप्पय लिखा है। इसका भाव वे यह देते हैं कि इस एक छप्पय को मिलाने पर संख्या 216 हो जाती है। दशरथ जी के छप्पय को मिला लिया जाए तो 108 और 108 के बराबर 216 हो जायेगा। यह 2 अष्टोत्तरी हो जायेगी, एक माला श्री कनक बिहारी सरकार के कंठ में और एक माला श्री कनक बिहारिणी के कंठ में सुशोभित होगी। अत: दशरथ जी के छप्पय को मिलाकर 216 संख्या ही लेना उचित है और श्री रूपकला जी यह भी मानते हैं कि किसी प्राचीन प्रति में कहीं उपलब्ध भी होता है।

भक्तिरसबोधिनि टीका

नाभादास जी के एक शिष्य हुए श्री गोविन्ददास जी जिन्होंने नाभाजी की आज्ञा से भक्तमाल जी की कथा का बहुत प्रचार किया। नाभाजी जब श्री साकेत धाम पधार गए उस समय भक्तमाल कथा का प्रचार कुछ कम हो गया। श्री नाभादास जी सखी रूप (नभा अली) में श्री साकेत धाम में श्री सीताराम जी की नित्य सेवा किया करते थे। एक दिन प्रभु को नाभा अली के मुख पर उदासी दिखाई पड़ी। प्रभु ने पूछा की आपकी उदासी का क्या कारण है? नाभा अली ने कहा कि आपकी सेवा प्राप्त हो रही है,दु:ख तो नहीं है परंतु अब भक्तमाल की कथा का प्रचार कम होने लगा है क्योंकि छप्पय के अर्थ बहुत गूढ़ हैं।

गोविन्ददास जी कथा तो कहते हैं पर उन्हें भी ऐसा लगता है कि भक्तमाल जी की टीका हो जाए तो अच्छा होगा, आगे चलकर कहीं भक्तमाल कथा लुप्त न हो जाए। प्रभु ने नाभा अली से कहा कि आप किसी संत को भक्तमाल पर टीका करने की प्रेरणा करें। नाभा अली ने कहा–मुझे ऐसा कोई सूझ नहीं रहा, आप ही कृपा कर के आज्ञा करें कि हम किस संत को प्रेरणा करें। श्री राम जी ने गौड़ीय वैष्णव संत श्री प्रियादास जी को प्रेरणा करने की आज्ञा करी।

श्री प्रियादास जी का परिचय और भक्तमाल की टीका

श्री गौरांग महाप्रभु ने नवद्वीप से अपने छ: प्रमुख अनुयायियों को वृंदावन भेजा तथा वहां सप्त देवालयों की आधारशिला रखवाई और गौड़ीय संप्रदाय एवं

महामंत्र का प्रचार करवाया। श्री चैतन्य महाप्रभु की पवित्र परंपरा के 6 गोस्वामी गण इस प्रकार है–

श्री रूप गोस्वामी पाद, श्री सनातन गोस्वामी पाद,श्री जीव गोस्वामी पाद, श्री रघुनाथ दास गोस्वामी पाद, श्री रघुनाथ भट्ट गोस्वामी पाद, श्री गोपाल भट्ट गोस्वामी पाद।

श्री मद् गोपालभट्ट गोस्वामी पाद के शिष्य श्री निवासचार्य जी, उनके शिष्य श्री मनोहर दास जी, उनके शिष्य हुए श्री प्रियादास जी महाराज। श्री प्रियादास जी के विषय में अधिक वर्णन प्राप्त नहीं हो पाता। बताया जाता है कि इनका जन्म राजपुरा नामक ग्राम सूरत (गुजरात) में हुआ। ये नवीन अवस्था में श्री वृन्दावन आ गए और श्री राधारमण मंदिर में श्री मनोहरदास जी के शिष्य हो गए। श्री साकेत धाम पधारने के 100 वर्ष बाद वैष्णवरत्न श्री प्रियादास जी को एक दिन श्री नाभादास जी द्वारा भक्तमाल पर टीका करने की आज्ञा हुई जिसका उन्होंने स्वयं इस प्रकार वर्णन किया है–

श्री प्रियादासकृत भक्तिरसबोधिनी टीका का मंगलाचरण

महाप्रभु कृष्णचैतन्य मनहरनजू के चरण कौ ध्यान मेरे नाम मुख गाइये। ताही समय नाभाजू ने आज्ञा दई लई धारि टीका विस्तारि भक्तमाल की सुनाइये।।

कीजिये कवित्त बंद छंद अति प्यारो लगै जगै जग माहिं कहि वाणी विरमाइये। जानों निजमति ऐ पै सुन्यौ भागवत शुक द्रुमनि प्रवेश कियो ऐसेई कहाइये।। 1।।

श्रीप्रियादासजी भक्तमाल की भक्ति सबोधिनी टीका का मंगलाचरण एवं इस टीका के लिखे जाने का हेतु बताते हुए कहते हैं कि एक बार मैं महाप्रभु श्री कृष्णचैतन्य एवं गुरूदेव श्री मनोहर दास जी के श्रीचरणकमल का हृदय में ध्यान और मुख से नाम संकीर्तन कर रहा था, उसी समय श्रीनाभा जी ने मुझे आज्ञा दी जिसे मैंने शिरोधार्य कर लिया।

वह आज्ञा यह थी कि श्री भक्तमाल की विस्तार पूर्वक टीका करके सुनाइये। टीका कवित्त छन्दों में कीजिये, जो कि अत्यन्त प्रिय लगे और सम्पूर्ण संसार में प्रसिद्ध हो। इस प्रकार भक्तों का चरित्र कहकर अपनी वाणी को विश्राम दीजिये अर्थात् भक्तों का चरित्र कहने में वाणी को लगा दीजिये।

ऐसा कह श्रीनाभा जी ने वाणी को विश्राम दिया, तब मैंने भावना में ही निवेदन किया कि मैं तो अपनी बुद्धि को जानता हूँ कि वह टीका करने में सर्वथा

असमर्थ है परतु मैंने श्रीमद्भागवत में सुना है कि श्री शुकदेव जी वृक्षों में प्रवेश करके स्वयं बोले थे, वैसे ही आप भी मेरी जड़मति में प्रवेश कर के टीका की रचना कर लेंगे।

भक्ति रस सबोधिनी टीका का नामस्वरूप वर्णन

रची कविताई सुखदाई लागै निपट सुहाई औ सचाई पुनरुक्ति लै मिटाई है। अक्षर मधुरताई अनुप्रास जमकाई अति छवि छाई मोद झरी सी लगाई है।।

काव्य की बडाई निज मुख न भलाई होति नाभाजू कहाई, याते प्रौढ़ि कै सुनाई है। हृदै सरसाई जो पै सुनिये सदाई यह भक्तिरसबोधिनी सुनाम टीका गाई है।। 2।।

इस कवित्त में श्रीप्रियादास जी अपने काव्य की विशेषताएं एवं टीका का नाम बताते हुए कहते हैं कि मैंने टीका काव्य की ऐसो रचना की है, जो पाठकों और श्रोताओं को सुख देनेवाली है और अत्यन्त सुहावनी लगती है। इसमें सचाई हैं अर्थात सत्य सत्य कहा गया है। पुनरुक्ति दोष को मिटा दिया गया है।

अक्षरों की मधुरता, अनुप्रास और यमक आदि अलंकारो से अत्यन्त सुशोभित होकर इस टीका काव्य ने आनन्द की झरी सी लगा दी है। अपने काव्य की अपने मुखसे प्रशंसा करना अच्छा नहीं होता, परंतु इसे तो श्रीनाभाजी ने कहलवाया है, इसी से इसकी प्रशंसा निःशक होकर दृढतापूर्वक सुनायी है। यदि नीरस हृदय वाला व्यक्ति भी सदा इसका श्रवण करें तो उसके हृदय में सरसता होगी और सरस हृदयवाले के लिये बारम्बार सुनने पर भी यह टीका उत्तरोत्तर सरस प्रतीत होगी। ऐसी यह भक्तिरसबोधिनी सुन्दर नामवाली टीका गायी है, जो भक्ति के सभी रसों का बोध करानेवाली है।

श्री भक्तिदेवी का शृंगार

श्रद्धाई फुलेल औ उबटनौ श्रवण कथा मैल अभिमान अंग अंगनि छुड़ाइये। मनन सुनीर अन्हवाइ अंगुछाइ दया नवनि वसन पन सोधो लै लगाइये।।

आभरन नाम हरि साधु सेवा कर्णफूल मानसी सुनथ संग अंजन बनाइये। भक्ति महारानीकौ सिंगार चारु बीरी चाह रहै, जो निहारि लहै लाल प्यारी गाइये।। 3।।

शृंगारीत रूप विशेष आकर्षक होता है, अतः इष्टदेव को प्रसन्न करनेके लिये टीकाकार ने इस कवित्त में श्रीभक्ति देवी केशृंगार का वर्णन एक रूपक

के द्वारा किया है। भक्ति देवी के श्रीविग्रह की निर्मलता के लिये श्रद्धारूपी फुलेल से शुष्कता दूरकर कथाश्रवणरूपी उबटन लगाइये और अहंकार रूपी मैल को प्रत्येक अंगसे छुडाइये। फिर मनन के सुन्दर जलसे स्नान कराकर दयाके अंगोछे से पोछिये।

उसके बाद नम्रता के वस्त्र पहनाकर भक्तिमें प्रतिज्ञारूपी सुगन्धित द्रव्य लगाइये। फिर नाम संकीर्तन रूप अनेक आभूषण, हरि और साधुसेवा के कर्णफूल तथा मानसी सेवा की सुन्दर नथ पहनाइये। फिर सत्संग रूपी अंजन लगाइये। जो भक्तिमहारानी का इस प्रकारशृंगार करके फिर उन्हे अभिलाषारूपी बीडा (पान) अर्पण करके उनके सुन्दर स्वरूप का दर्शन करता रहे, वह श्रीप्रिया प्रियतम को प्राप्त करता है। ऐसा सन्तों एवं शास्त्रो ने गाया है।।

भक्तिरसबोधिनी टीका की महिमा

शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य, औ शृंगारु चारु, पाँचों रस सार विस्तार नीके गाये हैं। टीका कौ चमत्कार जानौगे विचारि मन, इनके स्वरूप मैं अनूप लै दिखाये हैं।।

जिनके न अश्रुपात पुलकित गात कभू, तिनहूँ को भाव सिंधु बोरि सो छकाये है। जौलौं रहैं दूर रहैं विमुखता पूर हियो, होय चूर चूर नेकु श्रवण लगाये हैं।। 4।।

इस कवित्त में टीकाकार टीका की विशेषता बताते हुए कहते हैं कि इस भक्तिरसबोधिनी टोका में शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और शृंगार-भक्ति के इन पाँचों रसों का तत्त्व विस्तार से अच्छी प्रकार वर्णन किया गया है। इनके सुन्दर स्वरूपों को जैसा मैंने भलीभाँति उत्तम रीति से वर्णन करके दिखाया है, इस चमत्कार को पाठक एवं श्रोता अपने मनमें अच्छी तरह से विचार करनेपर ही जानेंगे।

श्रवण, कीर्त्तन आदि करके प्रेमवश जिनके नेत्रों में कभी भी आनन्द के आंसू नहीं आते हैं और शरीर में रोमांच नहीं होता है, ऐसे नीरस, कठोर हृदयवाले लोगों को भी भक्ति के भावरूपी समुद्र में डुबाकर तृप्त कर दिया है। जबतक वे इससे दूर है तभी तक भक्ति से पूर्ण विमुख हैं, किंतु यदि कान लगाकर इसका थोड़ा भी श्रवण करेंगे तो उनका हदय चूर-चूर होकर रस से परिपूर्ण हो जायगा।।

प्रियादास जी द्वारा भक्तमाल की महिमा

पंच रस सोई पंच रंग फूल थाके नीके, पीके पहिराइवे को रचिकै बनाई है। वैजयन्ती दाम भाववती अलि 'नाभा', नाम लाई अभिराम श्याम मति ललचाई हैं।।

धारी उर प्यारी, किहूँ करत न न्यारी, अहो ! देखौ गति न्यारी ढरियापन को आई है। भक्ति छबिभार, ताते, नमित श्रृंगार होत, होत वश लखै जोई याते जानि पाई है।। 5।।

प्रस्तुत कवित्त में श्रीभक्तमाल को पंचरंगी वैजयंती माला बताकर उसकी महिमा, सुन्दरता और भगवत्प्रियता का वर्णन किया क्या है। पूर्व कवित्त में कहे गये पांच रस ही मानो फूलों के सुन्दर गुच्छे हैं, भाववती नाभा नामकी सखी ने अपने प्रियतम को पहनाने के लिये इसे अच्छी तरह से बनाया है।

यह वैजयन्ती माला इतनी सुन्दर है कि लोकामिराम श्यामसुन्दर श्रीराम की बुद्धि भी इसे देखकर ललचा गयी। उन्होंने इस प्यारी वनमाला को अपने वक्ष:स्थल पर धारण किया, उन्हें यह इतनी प्रिय लगी कि इसे वे कभी भी अपने कण्ठ से अलग नहीं करते हैं। इस माला की विचित्र गति तो देखिये कि भगवान् ने इसे कण्ठ में धारण किया और यह लटक कर श्रीचरणो में आ लगी है।

इस माला में भक्ति की सुन्दरता का भार है, इसी से झुकी है। पंचरंगी भक्तमाल पहने हुए श्यामसुंदर के जो दर्शन करता है, वह उनके वश में होकर उन्हें वश में कर लेता है। यह रहस्य की बात भक्तमाल के द्वारा जानी गयी है।।

सत्संग के प्रभाव का वर्णन–

भक्ति तरु पौधा ताहि विघ्न डर छेरीहू कौ, वारिदै बिचारि वारि सींच्यो सत्संग सों। लाग्योई बढ़न, गोंदा चहुँदिशि कढन सो चढन अकाश, यश फैल्यों बहुरंग सों।।

संत उर आल बाल शोभित विशाल छाया, जिये जीव जाल, ताप गये यों प्रसंग सों। देखौ बढ़वारि जाहि अजाहू की शंका हुती, ताहि पेड़ बाँधे झूमें हाथी जीते जंग सों।। 6।।

भक्ति का वृक्ष जब साधक के हृदय में छोटे से पौधे रूपमें होता है, तब उसे हानि का भय मायारूपी बकरी से भी होता है, अत: पौधे की रक्षा के लिये उसके चारों ओर विचाररूपी घेरा (थाला) लगाकर सत्संगरूपी जल से सींचा

जाता है, तब उसमें चारों ओर से शाखा प्रशाखाएं निकलने लगती हैं और वह आकाश की ओर चढने बढ़ते लगता है। सरल साघुहृदय रूप थाले में सुशोभित इस विशाल भक्ति वृक्ष की छाया अर्थात् सत्संग पाकर त्रिविध तापों से तपे जीव समूह सन्तापरहित होकर परमानन्द प्राप्त करते हैं। इस प्रकार सार सम्भार करने पर इस भक्ति का विचित्र रूप से बढना तो देखो कि जिसको पहले कभी छोटी सी बकरी का भी डर था, उसी में आज महासंग्राम विजयी काम, क्रोध आदि बड़े-बड़े हाथी बंधे हुए झूम रहे हैं, परंतु उस वृक्ष को किसी भी प्रकार की हानि नहीं पहुंचा सकते हैं ।।

भक्तमाल स्वरूप वर्णन

जाको जो स्वरूप सो अनूप लै दिखाय दियो, कियो यों कवित्त पट मिहिं मध्य लाल है। गुण पै अपार साधु कहैं आंक चारिही में, अर्थ विस्तार कविराज टकसाल है।। सुनि संत सभा झूमि रही, अलि श्रेणी मानो, धूमि रही, कहैं यह कहा धौं रसाल है। सुने हे अगर अब जाने मैं अगर सही, चोवा भये नाभा, सो सुगंध भक्तमाल है।। 7।।

जिस भक्त का जैसा सुन्दरस्वरूप है, उसको श्रीनाभा जी ने अति उत्तम प्रकार से अपने काव्यों में स्पष्ट कर दिया है। कविता ऐसी की है कि जैसे महीन वस्त्रके अन्दर रखे हुए माणिक्य रत्न की चमक बाहर प्रकाश करें उसी प्रकार कविता की शब्दावली से भक्तस्वरूप प्रकट होता है। साधु भक्तों के गुण और उनकी महिमा अपार है, किंतु नाभाजी ने सन्तगुरूकृपा से थोड़े ही 'अक्षरो में भक्तों के' गुणों का ऐसीं विचित्रता के साथ वर्णन किया है कि उसके अनेक अर्थ होते हैं और गुणोका अपार विस्तार हो जाता है।

यहीं सच्चे टकसाली कवि की विशेषता है। संतों की सभा इसे सुनकर भक्तमाल काव्य का रसास्वादन कर आनन्द विभोर होकर झूम रही है, मानो सन्त:पी भ्रमर समूह चरित्ररूपी सुगन्धित पुष्पों पर मंडरा रहा है। आश्चर्यचकित होकर वे कहते है कि यह कैसी विचित्र रसमयी कविता है ! मैंने अगर अर्थात् स्वामी श्रीअग्रदेवजी का नाम तो सुना था, परंतु अब मैंने जाना और अनुभव किया कि अगर (श्रीअग्रदेव जी-नाभाजी के गुरूदेव) वस्तुतः अगर (सुगंधित वृक्ष ही) हैं, जिन से नाभाजी जैसा इत्र उत्पन्न हुआ है और जिसकी दिव्य सुगंध यह भक्तमाल है।।

प्रियादास जी द्वारा भक्तमाल माहात्म्य वर्णन

बड़े भक्तिमान, निशिदिन गुणगान करैं हरैं जगपाप, जाप हियो परिपूर है। जानि सुख मानि हरिसंत सनमान सचे बचेऊ जगतरीति, प्रीति जानी मूर है।।

तऊ दुराराध्य, कोऊ कैसे के अराधिसकै, समझो न जात, मन कंप भयो चूर है। शोभित तिलक भाल माल उर राजै, ऐ पै बिना भक्तमाल भक्तिःप अति दूर है।। 8।।

कोई बड़े साधक कैसे ही अच्छे भक्तिमान् हों, रात दिन भागवान् के गुणो को गान करते हों, संसार के पापों को हरते हों, जप ध्यान आदि से उनका हृदय परिपूर्ण हो श्रीहरि और सन्तों के स्वरूप को जानकर सचाई से उनकी सेवा और उनका आदर भी करते हों तथा उसमें सुख भी मानते हों–जगत के मायिक प्रपंचों से बचे भी हों और प्रेम को ही मूलतत्त्व मानते हों इतने पर भी भक्ति की आराधना कठिन है, उसकी आराधना कोई कैसे कर सकता है ?

विशुद्ध भक्ति का स्वरूप समझ में नहीं आता है, मन कम्पित होकर शिथिल हो जाता है। चाहे मस्तक पर सुन्दर तिलक और गले में कण्ठी माला सुशोभित हो, परंतु बिना भक्तमाल पठन, श्रवण, मनन और निदिध्यासन किये भक्ति का स्वरूप बहुत दूर है, उसका जानना असम्भव है।।

श्री प्रियादास जी ने सं 1769 फाल्गुन कृष्णपक्ष सप्तमी को श्री वृंदावन धाम में भक्तमाल की टीका पूर्ण की। प्रियादास जी ने टीका में 634 कवित्त रचे हैं। बिना प्रियादास जी की टीका के भक्तमाल की कथाओं को समझना बड़ा कठिन है। श्री प्रियादास जी यह सिद्धांत निश्चित करते हैं कि अन्य साधनों में साधना का अभिमान आने की संभावना रहती है परंतु भक्तों के चरित्र श्रवण से विनय, दैन्य एवं शरणागत होने का भाव पैदा होता है, इसलिए भक्ति का सच्चा अधिकारी बनने के लिये भक्तों के चरित्रों का श्रवण करना आवश्यक है।

श्री भक्तमाल के माहात्म्य का वर्णन करने वाले 3 सच्चे इतिहास पूज्य संत श्री वैष्णवदास जी द्वारा लिखे गए है। श्री वैष्णव दास जी यह प्रियादास जी के नाती चेला हैं अर्थात शिष्य के शिष्य है। किसी भी ग्रंथ का माहात्म्य श्रवण करने से उसमें अधिक श्रद्धा होती है। श्री वैष्णव दास जी द्वारा वर्णित भक्तमाल माहात्म्य के विषय में 3 सच्ची घटनाएँ इस प्रकार है–

भयौ चहै हरि पांति को सुनै सोई हरषाय। तहां दोय इतिहास है सुनिये चित्त लगाय।।

1. श्री वैष्णवदास जी द्वारा भक्तमाल माहात्म्य का पहला इतिहास वर्णन – श्री भक्तमाल के प्रथम श्रोता भगवान् ही है–

वृन्दावन में श्री प्रियादास जी के एक मित्र थे जिनका नाम था श्री गोवर्धननाथ दास। इन्होंने प्रियादास जी के सानिध्य में भक्तमाल का अध्ययन किया था, वे भक्तमाल की बहुत मधुर कथा कहते थे। एक समय संतों की जमात लेकर साथ ये जयपुर पहुंचे। यह उस समय की बात है जब मुगलों के अत्याचार के कारण राज मानसिंह श्री गोविन्द देव जी को वृंदावन से जयपुर ले गए थे। संतों ने प्रेम से गोविन्द देव जी मंदिर में दर्शन किया। वहाँ के वासियों ने श्री गोवर्धननाथ दास जी से ठाकुर जी को भक्तमाल कथा सुनाने का आग्रह किया।

उन्होंने कहा–हमें पास ही साम्भर गांव में एक उत्सव में जाना है। श्रोताओं ने आग्रह किया कि उत्सव जब आएगा तब आप चले जाना तब तक यहाँ कृपा करके भक्तमाल कथा सुनावें। कुछ दिन कथा कहने पर उन्होंने कहा–अब हमें उत्सव के निमित्त सम्भर गाँव जाना है, लौटकर आनेपर पुनः कथा सुनाएंगे।

जब महाराज जी पुनः जयपुर आये तब श्रोता आनंदित हुए और भीड़ जमा होने लगी। संत भगवान् श्री गोविन्द देव जी के मंदिर में कथा सुनाने बैठे। कथा के प्रारम्भ में संत जी ने पूछा–हमें नित्य कथा कहने का अभ्यास है, हमें क्रम मालूम नहीं है। हमने कथा कहाँ पर रोकी थी ? पिछली कथा में किस भक्त का चरित्र सुनाया था ?

सब श्रोता मौन हो गए, एक दूसरे का मुख देखने लगे। संत भगवान कहने लगे–आप लोग ध्यान देकर कथा नहीं सुनते हैं तब कथा आगे क्यों सुनावें? वह पोथी बाँधने लगे और कहने लगे हम वृन्दावन जा रहे हैं। उस समय मंदिर में गौड़ीय परंपरा के सिद्ध संत गोस्वामी श्री राधारमण लाल जी विराजमान थे जो वहाँ के प्रमुख पुजारी भी थे। श्री गोविन्द देव जी उनसे प्रत्यक्ष बातें करते थे।

प्रभु ने श्री राधारमण गोस्वामी जी को आवाज लगाकर अंदर बुलाया और कहा–बाबा आप कृपया जाकर श्री गोवर्धन नाथ दास जी से कह दीजिये कि भक्त श्री रैदास जी का प्रसंग चल रहा था, अब आप आगे की कथा सुनावें। प्रभु के श्रीमुख से यह बात सुनकर श्री राधारमण गोस्वामी जी के आँखों में अश्रु आ गए। उन्होंने जाकर गोवर्धन नाथ दास जी से कहा कि–प्रभु कह रहे हैं कि श्री रैदास भक्त तक की कथा हो चुकी है, अब आगे की कथा सुनावें।

गोवर्धन नाथ दास जी कहने लगे–हम इस बात को कैसे मान लें की प्रभु ने कहा है ? वे जानते तो थे की प्रभु ने यह बात कहीं है परंतु संत जी इस बात की प्रतिष्ठा करना चाहते थे कि भक्तमाल के प्रथम श्रोता श्री भगवान् हैं। संत ने कहा–यदि सभी सामने भगवान् ने आपसे कहीं बात पुन: कहें तब हम मानेंगे। ऐसा कहते ही मंदिर से मधुर आवाज आयी–श्री रैदास भक्त तक की कथा हो चुकी है, अब आगे की कथा सुनावें। भगवान् की बात सबने सुनी, श्री गोवर्धननाथ दास जी के आँखों से अश्रु बहने लगे। उन्होंने कहा–अब कितना भी विलंब हो हम भगवान् को कथा सुनाकर ही जायेंगे।

इस तरह भगवान् ने स्वयं प्रमाणित किया की भक्तमाल के प्रथम श्रोता श्री भगवान् हैं–

श्री गोविंद देव विख्याता, कहीं पुजारी सौं यह बाता। श्री रैदास भक्त की गाथा, भई कहो आगे अब नाथा।।

सुनि सु पुजारी के दृगन पानी बह्यो अपार। याके श्रोता आप हैं यहै कियो निरधार।

श्री भगवान् को भक्तमाल कथा बहुत अधिक प्रिय है। अनेक सिद्ध संतों का मत है कि भगवान् नित्य अपने धाम में श्री भक्तमाल का पाठ करते हैं।

2. श्री वैष्णवदास जी द्वारा भक्तमाल माहात्म्य का दूसरा इतिहास वर्णन – श्री भक्तमाल के प्रति भगवान् का प्रेम–

एक बार संतों ने प्रार्थना की कि भक्तमाल की भक्तिरसबोधिनी टीका पूर्ण हो गयी है अत: ब्रज चौरासी कोस की परिक्रमा करनी चाहिए। इसमें ऐसा कोई नियम नहीं रखा की कुछ निश्चित समय में परिक्रमा पूरी करनी है, जितने दिन में परिक्रमा पूरी हो जाये उतने दिन सही। रास्ते में श्री भक्तमाल की कथा भी चलती रहेगी। संतों के संग परिक्रमा करने प्रियदास जी चल पड़े। ब्रज चौरासी कोस की परिक्रमा मार्ग पर होडल नाम का एक निम्बार्क संप्रदाय का पुराण स्थान पड़ता है। उस समय वहाँ के महंत पूज्य श्री लालदास जी महाराज थे। श्री लालदास जी महान रसिक संत थे और संतों के चरणों में बहुत श्रद्धा रखते थे।

श्री लालदास जी ने प्रियादास जी से श्री भक्तमाल कथा कहने का निवेदन किया। कथा में बहुत श्रोताओं की भीड़ होने लगी, बहुत से संत भी विराजे और श्री लालदास जी के सब शिष्य भी भक्तमाल कथा का रसपान करने बैठे। जहाँ भक्तमाल की कथा होती है वहाँ भोज भंडारे भी बहुत होते हैं। भीड़ के साथ–साथ कुछ चोर भी साधुओं का वेष बनाकर वहाँ आ गए, वहीं खाने पीने

लगे और मस्त रहने लगे। एक रात मौका पाकर चोरों ने कुछ सामान और उसके साथ में भगवान् की मूर्ति चुरा ली।

प्रातः काल साधु जल्दी जाग जाते हैं, उन्होंने प्रातः काल देखा की मंदिर के गर्भगृह के द्वार खुले पड़े हैं, सिंहासन पर भगवान् नहीं है। भगवान् चोरी हो गए। समस्त साधू रोने लगे, श्री लालदास जी भी रोने लगे। प्रियादास को यह सुनते ही ऐसा लगा की प्राण ही चले गए। प्रियादास जी का प्राण धन जीवन भक्तमाल को ही था। प्रियादास जी कहने लगे की नाभा जी ने तो कहा था–भक्तों का चरित्र भगवान को बहुत प्रिय है। त्यों जन के गुन प्यारे हरि को।

श्री प्रियादास जी कहने लगे–ठाकुर जी को हम कथा सुना रहे थे और ठाकुर जी बिच में ही भाग गए। ऐसा लगता है भगवान् को यह भक्तमाल कथा अच्छी नहीं लगती। साधुओं की दृष्टि संसार से अलग है, वे कहने लगे ठाकुर जी को यह भक्तमाल कथा अच्छी नहीं लगी इसलिए यहाँ से उठ कर चोरों के साथ चले गए।

ठाकुर को यह चरित न प्यारे, यहीं ते चोरन संग पधारे।

अब हमारी परिक्रमा पूरी हुई, हम वृन्दावन वापस जा रहे हैं, हम अनशन करके प्राण त्याग देंगे और इसके बाद कभी कथा नहीं कहेंगे। श्री भक्तमाल के प्रधान श्रोता भगवान् ही यहाँ से चले गए अब कथा कैसे सुनाये। श्री लालदास जी रोने लगे और कहने लगे–श्री ठाकुर जी तो पहले ही चले गए अब संत भी चले जायेंगे तो हम क्या करेंगे। सब संत रोते हुए भगवान् को याद करने लगे।

चोर भगवान् की मूर्ति लेकर एक खेत में आकर रुक गए और सोक्सहने लगे की यहीं विश्राम कर लेते हैं, बाद में आगे बढ़ेंगे। चोर मूर्ति खेत में रख कर सो गए। संतों का दुःख ठाकुर से देखा नहीं गया, उन्होंने चोरों को स्वप्न में आदेश दिया की हमको वापस संतों के पास ले चलो। तुमने मुझे दो तरह का दुःख दिया–एक तो संत भूखे और हम भूखे और दूसरा हमको भक्तमाल कथा सुनने नहीं मिल रही अतः मैं तुम्हें चार प्रकार के दुःख दूँगा।

चोर बहुत डर गए और कहने लगे–भाई ! हम अभी बहुत दूर नहीं आये हैं, ठाकुर जी को वापस ले चलो। ठाकुर जी का डोला सजाकर चोर लालदास जी के स्थान की ओर नाचते गाते कीर्तन करते चलने लगे। होडल के ही एक ब्राह्मणदेवता ने यह बात प्रियादास जी और संतों को बताई। समस्त संत ठाकुर आनंद में हरिनाम का कीर्तन करने लगे और ठाकुर जी का स्वागत करने चले गए।

श्री प्रियादास जी के चरणों में दण्डवत् करके चोरों ने कहा कि अब तक हम चोरी करने के लिए साधु बने थे परंतु अब संतों के चरणों के दास बने रहेंगे, अब सच्चे साधु बनेंगे।

संतों की कृपा से हम चोरो ने भगवान् के स्वप्न में दर्शन किये, भगवान् को संत और भक्तमाल अति प्रिय हैं। हम अब संत सेवा में लगे रहना चाहते हैं। चोरों ने श्री पूज्य श्री लालदास जी महाराज की शरण ग्रहण कर ली और सब उनके शिष्य हो गए।

3.श्री वैष्णवदास जी द्वारा भक्तमाल महात्म्य का तीसरा इतिहास वर्णन – श्री भक्तमाल ग्रंथ के स्पर्श मात्र से व्यापारी का उद्धार होना–

श्री वृन्दावन में एक दिन श्री प्रियादास जी भक्तमाल की कथा कह रहे थे। अलवर राजस्थान का एक वैश्य व्यापारी व्यक्ति श्री प्रियादास जी की भक्तमाल कथा श्रवण करने के लिए बैठ गया। उसको श्री भक्तमाल में वर्णित संत सेवा, वैष्णव स्वरूप निष्ठा, धाम निष्ठा, नाम निष्ठा सुनकर अद्भुत आनंद हुआ, उसकी संतों में और भक्तमाल ग्रन्थ में बहुत श्रद्धा हो गयी। कथा समाप्ति पर श्री प्रियादास जी महाराज के पास वह व्यापारी आया और प्रणाम् करके कहने लगा महाराज जी आप कृपा करके यह भक्तमाल ग्रन्थ हमें लिखवा कर दीजिए।

उस जमाने में हाथ से पाण्डु लिपि लिख कर दी जाती थी, उस समय छापखाने नहीं हुआ करते थे अतः संत महात्मा ही ग्रन्थ लिख कर देते थे। श्री प्रियादास जी ने उस व्यक्ति से पूछा–भाई क्या तुम्हें भक्तमाल की कथा सुनने का या पढ़ने का कुछ अभ्यास है ? अथवा क्या तुम्हें भक्तमाल का वक्ता होना है ? या कोई अन्य प्रयोजन है। वह व्यापारी व्यक्ति कहने लगा–महाराज हमने तो पहली बार कथा सुनी है।

हमें न पाठ करना है न किसी को यह कथा सुनना चाहते है क्योंकि हम तो व्यापारी हैं, हमारे पास इतना समय भी नहीं है। प्रियादास जी ने कहा–जब तुम्हारे पास ग्रन्थ का उपयोग ही नहीं है तो क्यों हमसे इतना श्रम कराना चाहते हो ? तुम हमें सही उपयोग बताओं तो हम अवश्य तुम्हे ग्रन्थ लिख देंगे। उस व्यापारी ने कहा–महाराज मैं घर के काम धंधे, स्त्री पुत्रों में उलझा हुआ हूँ, साधू संग का अवसर नहीं है मेरे जीवन में।

महाराज परंतु एक बात मैं पक्की जानता हूँ की श्री भक्तमाल में समस्त संत विराजते हैं, इस बात पर मेरी दृढ निष्ठा है कि जैसे भागवत् जी में श्री कृष्ण विराजमान हैं, श्री रामायण में श्री राघव जी विराजमान है वैसे ही भक्तमाल में

सब संत विराजमान हैं। मैं अपने लड़कों से कह दूंगा की जब हमारा अंत समय आएगा, उस समय यह ग्रन्थ हमारे छाती पर धर देना, इतने संतों की कृपा से मेरी मृत्यु सुधर जायेगी और यमदूतों की हिम्मत नहीं होगी की हमें नर्क ले जाएं। संतों के बल से हमको भगवान् के चरण कमल अवश्य प्राप्त होंगे।

उसका भाब सुन कर प्रियादास जी के नेत्र भर आये। श्री प्रियादास जी ने कहा–तुमने भले ही भजन साधन न किया हो परंतु आपकी इस भक्तमाल ग्रन्थ पर अद्‌भुत निष्ठा है, मैं आपको यह ग्रन्थ लिख कर देता हूँ तुम मरते समय इसे अपने हृदय (छाती) पर रख लेना, तुम साधुओं के बल से इस भवसागर से उबर जाओगे।

मरती बार हृदय पर धरिहौं, इतने साधुन संग उबरिहौं

वह बनिया व्यक्ति ग्रन्थ लेकर घर गया, पूजन करके एक वस्त्र में लपेट कर आले में रख दिया। अब न नित्य पूजन करता, न तुलसी फूल पधराता,कुछ नहीं बस रखा रह गया और भूल गया। उसने अपने पुत्रो से कह रखा था–देखो जब हमारा अंत समय आएगा उस समय हमारे हृदय पर यह आले में राखी पुस्तक पधरा देना, वृन्दावन के एक महात्मा से एक ग्रन्थ लिखवा कर हम लाया है। देखते देखते मृत्यु का समय निकट आया। गले में कफ अटक गया। वह थोड़ा इशारा करके पुत्रो से कुछ कहने लगा।

पुत्र समझ गए कि पिताजी ने अंत समय में आले में रखे ग्रन्थ को हृदय पर रखने को कहा था। पुत्रो ने ऐसा ही किया और जैसे ही ग्रन्थ हृदय पर स्पर्श हुआ उसका कंठ खुल गया और वह मुख से हरे कृष्ण गोविन्द नाम का उच्चारण करने लगा। पहले उसे भयंकर यमदूत दिख रहे आने लगे पर जैसे ही पोथी उसकी छाती पर रखी गयी वैसे ही सारे यमदूत वहाँ से चले गए। पुत्रो ने पिता से पूछा–पिताजी! पहले तो आप को देख के लगता था आप बहुत कष्ट में हैं परंतु अब आप बहुत प्रसन्न होकर भगवान् का नाम जप कर रहे हैं। लगता है कोई आश्चर्यचकित घटना घटित हुई है।

उसने कहा मुझे भयंकर यमदूत पीड़ा पंहुचा रहे थे परंतु तुम लोगों ने जैसे ही पोथी छाती पर रखी तब वे भाग गए। अब हमें संतों का दर्शन हो रहा है, हमको श्री नामदेव, श्री रैदास, श्री सेना, श्री धन्ना, श्री पीपा, श्री कबीर जी, श्री तुलसीदास जी आकाश में खड़े हैं। वे हमें अपने साथ भगवान् के धाम चलने को कह रहे हैं सो अब मैं भगवान् के धाम जा रहा हूं। तुम मेरे जाने पर दुःख मत करना और यह नियम बना लेना की इस परिवार में किसी की भी मृत्यु

निकट आए, यह भक्तमाल ग्रन्थ उसके हृदय पर धर दिया जाए। वह भगवान् का नाम उच्चारण करते करते संतों के साथ भगवान् के नित्य धाम को चला गया।

श्री वैष्णवदास जी कहते हैं–जिस परिवार के यह व्यक्ति थे उनके सब संबंधी हमारे पास आये और उन्होंने हमें यह घटना सुनायी है अब और कितनी महिमा गाऊं इसकी महिमा तो अनंत है। उस परिवार के सदस्यों ने भक्तमाल कि कथा भी करवाई। श्री भक्तमाल की केवल पोथी को घर में रखना भी संत शुभ मानते हैं।

इस चरित्र से यह बात सोलह आना सिद्ध होती है कि भक्तमाल में सम्पूर्ण संतों का निवास है और यह कोई सामान्य ग्रंथ नहीं है। बहुत से संत कंठ में श्री भक्तमाल जी का मूल पाठ तावीज में बंद कर के निष्ठा से धारण करते हैं।

7

सूरदास

सूरदास कवियों में सर्वोपरि है। हिन्दी साहित्य में भगवान श्रीकृष्ण के अनन्य उपासक और ब्रजभाषा के श्रेष्ठ कवि महात्मा सूरदास हिंदी साहित्य, के सूर्य, माने जाते हैं।

भक्तिकालीन महाकवि जीवन परिचय

भक्तिकालीन महाकवि सूरदास का जन्म 1540ई0 में रुनकता नामक गाँव में हुआ। यह गाँव मथुरा–आगरा मार्ग के किनारे स्थित है। कुछ विद्वानों का मत है कि सूर का जन्म सीही नामक ग्राम में एक निर्धन सारस्वत ब्राह्मण परिवार में हुआ था। वह बहुत विद्वान थे, उनकी लोग आज भी चर्चा करते हैं।–––मथुरा के बीच गऊघाट पर आकर रहने लगे थे। सूरदास के पिता, रामदास गायक थे। सूरदास के जन्मांध होने के विषय में मतभेद हैं। प्रारंभ में सूरदास आगरा के समीप गऊघाट पर रहते थे। वहीं उनकी भेंट श्री वल्लभाचार्य से हुई और वे उनके शिष्य बन गए। वल्लभाचार्य ने उनको पुष्टिमार्ग में दीक्षित कर के कृष्णलीला के पद गाने का आदेश दिया। सूरदास की मृत्यु गोवर्धन के निकट पारसौली ग्राम में 1580 ईस्वी में हुई।

सूरदास बनना?

मदन मोहन एक बहुत ही सुन्दर और तेज बुद्धि का नवयुवक था वह हर दिन नदी के किनारे जा कर बैठ जाता और गीत लिखता। एक दिन एक ऐसा

वाकया हुआ जिसने उसका मन को मोह लिया। हुआ ये की एक सुन्दर नवयुवती नदी किनारे कपड़े धो रही थी, मदन मोहन का ध्यान उसकी तरफ चला गया। उस युवती ने मदन मोहन को ऐसा आकर्षित किया की वह कविता लिखना भूल गए और पुरा ध्यान लगा कर उस युवती को देखने लगे। उनको ऐसा लगा मानो यमुना किनारे राधिका स्नान कर के बैठी हो। उस नवयुवती ने भी मदन मोहन की तरफ देखा और उनके पास आकर बोली आप मदन मोहन जी हो ना? तो वह बोले, हां मैं मदन मोहन हूँ। कविताये लिखता हूँ तथा गाता हूँ आपको देखा तो रुक गया। नवयुवती ने पूछा क्यों? तो वह बोले आप हो ही इतनी सुन्दर। यह सिलसिला कई दिनों तक चला। जब यह बात मदन मोहन के पिता को पता चली तो उनको बहुत क्रोध आया। फिर मदन मोहन ने उसका घर छोड़ दिया। पर उस सुन्दर युवती का चेहरा उनके सामने से नहीं जा रहा था एक दिन वह मंदिर में बैठे थे तभी वह एक शादीशुदा बहुत ही सुन्दर स्त्री आई। मदन मोहन उनके पीछे पीछे चल दिए। जब वह उसके घर पहुंचे तो उसके पति ने दरवाजा खोला तथा पूरे आदर सम्मान के साथ उन्हें अंदर बिठाया। फिर मदन मोहन ने दो जलती हुए सिलाया मांगी तथा उसे अपनी आँख में डाल दी। इस तरह मदन मोहन बने महान कवि सूरदास।

सूरदास की जन्मतिथि एवं जन्मस्थान के विषय में मतभेद

सूरदास की जन्मतिथि एवं जन्मस्थान के विषय में विद्वानों में मतभेद है। 'साहित्य लहरी' सूर की लिखी रचना मानी जाती है। इसमें साहित्य लहरी के रचना-काल के सम्बन्ध में निम्न पद मिलता है–

मुनि पुनि के रस लेख।
दसन गौरीनन्द को लिखि सुवल संवत् पेख

इसका अर्थ संवत् 1607 ईस्वी में माना गया है, अतएव 'साहित्य लहरी' का रचना काल संवत् 1607 वि0 है। इस ग्रन्थ से यह भी प्रमाण मिलता है कि सूर के गुरू श्री वल्लभाचार्य थे।

सूरदास का जन्म सं0 1540 ईस्वी के लगभग ठहरता है, क्योंकि बल्लभ सम्प्रदाय में ऐसी मान्यता है कि बल्लभाचार्य सूरदास से दस दिन बड़े थे और बल्लभाचार्य का जन्म उक्त संवत् की वैशाख् कृष्ण एकादशी को हुआ था। इसलिए सूरदास की जन्म-तिथि वैशाख शुक्ला पंचमी, संवत् 1535 वि0 समीचीन जान पड़ती है। अनेक प्रमाणों के आधार पर उनका मृत्यु संवत् 1620

से 1648 ईस्वी के मध्य स्वीकार किया जाता है। रामचन्द्र शुक्ल जी के मतानुसार सूरदास का जन्म संवत् 1540 वि0 के सन्निकट और मृत्यु संवत् 1620 ईस्वी के आसपास माना जाता है।

श्री गुरू बल्लभ तत्त्व सुनायो लीला भेद बतायो।

सूरदास की आयु 'सूरसारावली' के अनुसार उस समय 67 वर्ष थी। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' के आधार पर उनका जन्म रुनकता अथवा रेणु का क्षेत्र (वर्तमान जिला आगरान्तर्गत) में हुआ था। मथुरा और आगरा के बीच गऊघाट पर ये निवास करते थे। बल्लभाचार्य से इनकी भेंट वहीं पर हुई थी। 'भावप्रकाश' में सूर का जन्म स्थान सीही नामक ग्राम बताया गया है। वे सारस्वत ब्राह्मण थे और जन्म के अंधे थे। 'आइने अकबरी' में (संवत् 1653 ईस्वी) तथा 'मुतखबुत-तवारीख' के अनुसार सूरदास को अकबर के दरबारी संगीतज्ञों में माना गया है।

क्या सूरदास जन्मान्ध थे?

सूरदास श्रीनाथ की 'संस्कृतवार्ता मणिपाला', श्री हरिराय कृत 'भाव-प्रकाश', श्री गोकुलनाथ की 'निजवार्ता' आदि ग्रन्थों के आधार पर, जन्म के अन्धे माने गए हैं। लेकिन राधा-कृष्ण के रूप सौन्दर्य का सजीव चित्रण, नाना रंगों का वर्णन, सूक्ष्म पर्यवेक्षणशीलता आदि गुणों के कारण अधिकतर वर्तमान विद्वान सूर को जन्मान्ध स्वीकार नहीं करते।

श्यामसुन्दर दास ने इस सम्बन्ध में लिखा है– 'सूर वास्तव में जन्मान्ध नहीं थे, क्योंकि श्रृंगार तथा रंग-रुपादि का जो वर्णन उन्होंने किया है वैसा कोई जन्मान्ध नहीं कर सकता।' डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेद्वी, ने लिखा है– 'सूरसागर के कुछ पदों से यह ध्वनि अवश्य निकलती है कि सूरदास अपने को जन्म का अन्धा और कर्म का अभागा कहते हैं, पर सब समय इसके अक्षरार्थ को ही प्रधान नहीं मानना चाहिए।'

रचनाएँ

सूरदास जी द्वारा लिखित पाँच ग्रन्थ बताए जाते हैं।

(1) सूरसागर-जो सूरदास की प्रसिद्ध रचना है। जिसमें सवा लाख पद संग्रहित थे। किंतु अब सात-आठ हजार पद ही मिलते हैं।

(2) सूरसारावली

(3) साहित्य-लहरी-जिसमें उनके कूट पद संकलित हैं।

(4) नल-दमयन्ती

(5) ब्याहलो

(6) 'पद संग्रह' दुर्लभ पद 7-/gramar geet

उपरोक्त में अन्तिम दो अप्राप्य हैं।

नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हस्तलिखित पुस्तकों की विवरण तालिका में सूरदास के 16 ग्रन्थों का उल्लेख है। इनमें सूरसागर, सूरसारावली, साहित्य लहरी, नल-दमयन्ती, ब्याहलो के अतिरिक्त दशमस्कंध टीका, नागलीला, भागवत्, गोवर्धन लीला, सूरपचीसी, सूरसागर सार, प्राणप्यारी, आदि ग्रन्थ सम्मिलित हैं। इनमें प्रारम्भ के तीन ग्रंथ ही महत्त्वपूर्ण समझे जाते हैं, साहित्य लहरी की प्राप्त प्रति में बहुत प्रक्षिप्तांश जुड़े हुए हैं।

'साहित्य लहरी, सूरसागर, सूर की सारावली। श्रीकृष्ण जी की बाल-छवि पर लेखनी अनुपम चली।।'

सूरसागर का मुख्य वर्ण्य विषय श्री कृष्ण की लीलाओं का गान रहा है।

सूरसारावली में कवि ने जिन कृष्ण विषयक कथात्मक और सेवा परक पदों का गान किया उन्हीं के सार रूप में उन्होंने सारावली की रचना की है।

सहित्यलहरी में सूर के दृष्टिकूट पद संकलित हैं।

सूरदास की काव्यगत विशेषताएँ

1. सूरदास के अनुसार भगवान श्रीकृष्ण के अनुग्रह से मनुष्य को सद्गति मिल सकती है। अटल भक्ति कर्मभेद, जातिभेद, ज्ञान, योग से श्रेष्ठ है।
2. सूर ने वात्सल्य, शृंगार और शांत रसों को मुख्य रूप से अपनाया है। सूर ने अपनी कल्पना और प्रतिभा के सहारे कृष्ण के बाल्य-रूप का अति सुंदर, सरस, सजीव और मनोवैज्ञानिक वर्णन किया है। बालकों की चपलता, स्पर्धा, अभिलाषा, आकांक्षा का वर्णन करने में विश्व व्यापी बाल-स्वरूप का चित्रण किया है। बाल-कृष्ण की एक-एक चेष्टा के चित्रण में कवि ने कमाल की होशियारी एवं सूक्ष्म निरीक्षण का परिचय दिया है-

   मैया कबहिं बढ़ैगी चौटी?
   किती बार मोहिं दूध पियत भई, यह अजहूँ है छोटी।

सूर के कृष्ण प्रेम और माधुर्य प्रतिमूर्ति है। जिसकी अभिव्यक्ति बड़ी ही स्वाभाविक और सजीव रूप में हुई है।

3. जो कोमलकांत पदावली, भावानुकूल शब्द-चयन, सार्थक अलंकार-योजना, धारावाही प्रवाह, संगीतात्मकता एवं सजीवता सूर की भाषा में है, उसे देखकर तो यहीं कहना पड़ता है कि सूर ने ही सर्व प्रथम ब्रजभाषा को साहित्यिक रूप दिया है।
4. सूर ने भक्ति के साथश्रृंगार को जोड़कर उसके संयोग-वियोग पक्षों का जैसा वर्णन किया है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।
5. सूर ने विनय के पद भी रचे हैं, जिसमें उनकी दास्य-भावना कहीं-कहीं तुलसीदास से आगे बढ़ जाती है-

   हमारे प्रभु औगुन चित न धरौ।

   समदरसी है मान तुम्हारौ, सोई पार करौ।
6. सूर ने स्थान-स्थान पर कूट पद भी लिखे हैं।
7. प्रेम के स्वच्छ और मार्जित रूप का चित्रण भारतीय साहित्य में किसी और कवि ने नहीं किया है यह सूरदास की अपनी विशेषता है। वियोग के समय राधिका का जो चित्र सूरदास ने चित्रित किया है, वह इस प्रेम के योग्य है
8. सूर ने यशोदा आदि के शील, गुण आदि का सुंदर चित्रण किया है।
9. सूर का भ्रमरगीत वियोग-श्रृंगार का ही उत्कृष्ट ग्रंथ नहीं है, उसमें सगुण और निर्गुण का भी विवेचन हुआ है। इसमें विशेषकर उद्धव-गोपी संवादों में हास्य-व्यंग्य के अच्छे छींटें भी मिलते हैं।
10. सूर काव्य में प्रकृति-सौंदर्य का सूक्ष्म और सजीव वर्णन मिलता है।
11. सूर की कविता में पुराने आख्यानों और कथनों का उल्लेख बहुत स्थानों में मिलता है।
12. सूर के गेय पदों में हृदयस्थ भावों की बड़ी सुंदर व्यंजना हुई है। उनके कृष्ण-लीला संबंधी पदों में सूर के भक्त और कवि हृदय की सुंदर झाँकी मिलती है।
13. सूर का काव्य भाव-पक्ष की दृष्टि से ही महान नहीं है, कला-पक्ष की दृष्टि से भी वह उतना ही महत्वपूर्ण है। सूर की भाषा सरल, स्वाभाविक तथा वाग्वैदिग्धपूर्ण है। अलंकार-योजना की दृष्टि से भी उनका कला-पक्ष सबल है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने सूर की कवित्व-शक्ति के बारे में लिखा है-

सूरदास जब अपने प्रिय विषय का वर्णन शुरू करते हैं तो मानो अलंकार-शास्त्र हाथ जोड़कर उनके पीछे-पीछे दौड़ा करता है। उपमाओं की बाढ़ आ जाती है, रूपकों की वर्षा होने लगती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सूरदास हिंदी साहित्य के महाकवि हैं, क्योंकि उन्होंने न केवल भाव और भाषा की दृष्टि से साहित्य को सुसज्जित किया, वरन् कृष्ण-काव्य की विशिष्ट परंपरा को भी जन्म दिया।

सूरदास और वल्लभाचार्य

सूरदास वल्लभाचार्य के शिष्य थे। भक्तिकालीन सगुणधारा की कृष्ण भक्ति शाखा के आधार स्तंभ एवं पुष्टिमार्ग के प्रणेता वल्लभाचार्य माने जाते हैं। उनका प्रादुर्भाव ई. सन् 1479, वैशाख कृष्ण पक्ष एकादशी को दक्षिण भारत के कांकरवाड ग्रामवासी तैलंग ब्राह्मण लक्ष्मणभट्ट जी की पत्नी इलम्मागारू के गर्भ से काशी के समीप हुआ था। उन्हें 'वैश्वानरावतार अग्नि का अवतार' कहा गया है। वे वेद शास्त्र में पारंगत थे। श्री रुद्रसंप्रदाय के श्री विल्वमंगलाचार्य जी द्वारा इन्हें 'अष्टादशाक्षर गोपाल मन्त्र' की दीक्षा दी गई थीं। त्रिदंड सन्यास की दीक्षा स्वामी नारायणेन्द्र तीर्थ से प्राप्त हुई थी।

वल्लभाचार्य के शिष्य

सूरदास वल्लभाचार्य के शिष्य थे। उनके काव्य में वल्लभाचार्य द्वारा प्रतिपादित कृष्ण स्वरूप की प्रतिष्ठा स्वाभाविक रूप से हुई है। सूरदास की भक्ति में अंत:करण की प्रेरणा तथा अंतर की अनुभूति की प्रधानता है। उनके काव्य में अभिव्यक्त भक्ति-भावना के दो चरण देखे जा सकते हैं-

पहला चरण वल्लभाचार्य से मिलने के पूर्व का है, जिसमें सूरदास 'वल्लभ संप्रदाय' में दीक्षित होने से पूर्व दैन्यभाव पर आधारित भक्ति के पदों की रचना कर रहे थे।

दूसरा चरण वल्लभाचार्य से मिलने के बाद आरंभ होता है, जब सूरदास 'वल्लभ संप्रदाय' में दीक्षित होकर पुष्टिमार्गीय भक्ति पर आधारित भक्ति के पदों की रचना की ओर प्रवृत हुए। सूरदास की भक्ति भावना में इस प्रकार के पदों का बाहुल्य देखा जा सकता है।

सूरदास की वल्लभाचार्य से भेंट

सूरदास, सूरकुटी, सूर सरोवर, आगरा

'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में सूर का जीवनवृत्त गऊघाट पर हुई वल्लभाचार्य से उनकी भेंट के साथ प्रारम्भ होता है। गऊघाट पर भी उनके अनेक सेवक उनके साथ रहते थे तथा 'स्वामी' के रूप में उनकी ख्याति दूर-दूर तक फैल गयी थी। कदाचित इसी कारण एक बार अरैल से जाते समय वल्लभाचार्य ने उनसे भेंट की और उन्हें पुष्टिमार्ग में दीक्षित किया।

'वार्ता' में वल्लभाचार्य और सूरदास के प्रथम भेंट का जो रोचक वर्णन दिया गया है, उससे व्यंजित होता है कि सूरदास उस समय तक कृष्ण की आनन्दमय ब्रजलीला से परिचित नहीं थे और वे वैराग्य भावना से प्रेरित होकर पतितपावन हरि की दैन्यपूर्ण दास्यभाव की भक्ति में अनुरक्त थे और इसी भाव के विनयपूर्ण पद रच कर गाते थे।

वल्लभाचार्य ने उनका 'घिघियाना' छुड़ाया और उन्हें भगवद्-लीला से परिचत कराया। इस विवरण के आधार पर कभी-कभी यह कहा जाता है कि सूरदास ने विनय के पदों की रचना वल्लभाचार्य से भेंट होने के पहले ही कर ली होगी, परन्तु यह विचार भ्रमपूर्ण है वल्लभाचार्य द्वारा 'श्रीमद्भागवत' में वर्णित कृष्णलीला का ज्ञान प्राप्त करने के उपरान्त सूरदास ने अपने पदों में उसका वर्णन करना प्रारम्भ कर दिया। 'वार्ता' में कहा गया है कि उन्होंने 'भागवत' के द्वादश स्कन्धों पर पद-रचना की। उन्होंने 'सहस्त्रावधि' पद रचे, जो 'सागर' कहलाये। वल्लभाचार्य के संसर्ग से सूरदास को 'माहात्म्यज्ञान पूर्वक प्रेम भक्ति' पूर्णरूप में सिद्ध हो गयी। वल्लभाचार्य ने उन्हें गोकुल में श्रीनाथ जी के मन्दिर पर कीर्तनकार के रूप में नियुक्त किया और वे आजन्म वहीं रहे।

सूरदास की अन्धता

सूरदास हिन्दी साहित्य के भक्ति काल में कृष्ण भक्ति के भक्त कवियों में अग्रणी हैं। महाकवि सूरदास जी वात्सल्य रस के सम्राट माने जाते हैं। उन्होंने शृंगार और शान्त रसों का भी बड़ा मर्मस्पर्शी वर्णन किया है। उनका जन्म मथुरा-आगरा मार्ग पर स्थित रुनकता नामक गांव में हुआ था। कुछ लोगों का कहना है कि सूरदास का जन्म सीही नामक ग्राम में एक निर्धन सारस्वत ब्राह्मण परिवार में हुआ था। बाद में वह आगरा और मथुरा के बीच गऊघाट पर आकर

रहने लगे थे। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के मतानुसार सूरदास का जन्म संवत 1540 विक्रमी के सन्निकट और मृत्यु संवत 1620 विक्रमी के आसपास मानी जाती है।

सामान्य रूप से यह प्रसिद्ध रहा है कि सूरदास जन्मान्ध थे और उन्होंने भगवान की कृपा से दिव्य-दृष्टि पायी थी, जिसके आधार पर उन्होंने कृष्णलीला का आँखों देखा जैसा वर्णन किया। गोसाई हरिराय ने भी सूरदास को जन्मान्ध बताया है, परन्तु उनके जन्मान्ध होने का कोई स्पष्ट उल्लेख उनके पदों में नहीं मिलता। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' के मूल रूप में भी इसका कोई संकेत नहीं मिलता। जैसा की पीछे कहा जा चुका है, उनके अन्धे होने का उल्लेख केवल अकबर की भेंट के प्रसंग में हुआ है। 'सूरसागर' के लगभग 7-8 पदों में भी प्रत्यक्ष रूप से और कभी प्रकारान्तर से सूरदास ने अपनी हीनता और तुच्छता का वर्णन करते हुए अपने को अन्धा कहा है।

सूरदास, सूरकुटी, सूर सरोवर, आगरा

सूरदास के सम्बन्ध में जितनी किंवदान्तियाँ प्रचलित हैं, उन सब में उनके अन्धे होने का उल्लेख हुआ है। उनके कुएँ में गिरने और स्वयं कृष्ण के द्वारा उद्धार पाने एवं दृष्टि प्राप्त करने तथा पुनः कृष्ण से अन्धे होने का वरदान माँगने की घटना लोकविश्रुत है। बिल्वमंगल सूरदास के विषय में भी यह चमत्कारपूर्ण घटना कही-सुनी जाती है।

इसके अतिरिक्त कवि मियाँसिंह ने तथा महाराज रघुराज सिंह ने भी कुछ चमत्कारपूर्ण घटनाओं का उल्लेख किया है, जिससे उनकी दिव्य-दृष्टि सम्पन्नता की सूचना मिलती है। नाभादास ने भी अपने 'भक्तमाल' में उन्हें दिव्य-दृष्टि सम्पन्न बताया है। निश्चय ही सूरदास एक महान् कवि और भक्त होने के नाते असाधारण दृष्टि रखते थे, किन्तु उन्होंने अपने काव्य में बाह्य जगत के जैसे नाना रूपों, रंगों और व्यापारों का वर्णन किया है, उससे प्रमाणित होता है कि उन्होंने अवश्य ही कभी अपने चर्म-चक्षुओं से उन्हें देखा होगा।

उनका काव्य उनकी निरीक्षण-शक्ति की असाधारण सूक्ष्मता प्रकट करता है, क्योंकि लोकमत उनके माहात्म्य के प्रति इतना श्रद्धालु रहा है कि वह उन्हें जन्मान्ध मानने में ही उनका गौरव समझती है, इसलिए इस सम्बन्ध में कोई साक्ष्य नहीं मिलता कि वे किसी परिस्थिति में दृष्टिहीन हो गये थे। हो सकता है कि वे वृद्धवस्था के निकट दृष्टि-विहीन हो गये हों, परन्तु इसकी

कोई स्पष्ट सूचना उनके पदों में नहीं मिलती। विनय के पदों में वृद्धावस्था की दुर्दशा के वर्णन के अन्तर्गत चक्षु-विहीन होने का जो उल्लेख हुआ है, उसे आत्मकथा नहीं माना जा सकता, वह तो सामान्य जीवन के एक तथ्य के रूप में कहा गया है।

सूरदास का काव्य

महाकवि सूरदास हिन्दी के श्रेष्ठ भक्त कवि थे। उनका संपूर्ण काव्य ब्रजभाषा काश्रृंगार है, जिसमें विभिन्न राग, रागनियों के माध्यम से एक भक्त हृदय के भावपूर्ण उद्‌गार व्यक्त हुए हैं। कृष्ण, गाय, वृंदावन, गोकुल, मथुरा, यमुना, मधुवन, मुरली, गोप, गोपी आदि के साथ-साथ संपूर्ण ब्रज-जीवन, संस्कृति एवं सभ्यता के संदर्भ में उनकी वीणा ने जो कुछ गाया, उसके स्वर और शब्द, शताब्दियां बीत जाने पर भी भारतीय काव्य की संगीत के रूप में व्याप्त हैं। उनके काव्य का अंतरंग एवं बहिरंग पक्ष अत्यंत सुदृढ़ और प्रौढ़ है तथा अतुलित माधुर्य, अनुपम सौंदर्य और अपरिमित सौष्ठव से भरा पड़ा है।

काव्य पक्ष

काव्य के मुख्य रूप से दो पक्ष होते हैं–

1. भावपक्ष
2. कलापक्ष

भावपक्ष काव्य का आंतरिक गुण है। इसका संबंध कवि की सहृदयता और भावुकता से होता है। काव्य के शरीर तत्त्व को कलापक्ष कहते हैं। इसका संबंध कवि की चतुरता और रचना-कौशल से होता है। भावपक्ष एवं कलापक्ष से समन्वित काव्य ही श्रेष्ठ काव्य का उदाहरण माना जाता है।

भावपक्ष

महाकवि सूरदास का 'सूरसागर' वास्तव में रस का महासागर है। इसमें भावों की विविधता और अनेक रूपता के सहज दर्शन होते हैं। मानव हृदय की गहराइयों में डूबने वाले कवि से यहीं आशा और अपेक्षा भी होती है। अपने सीमित क्षेत्र में भी नवीन उद्‌भावनाओं, कोमल कल्पनाओं आदि के कारण ही सूरदास हिंदी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। सूरदास की कविता के भावपक्ष को निम्न प्रकार से देखा जा सकता है–

वस्तु-वर्णन

वर्ण्य-विषय की दृष्टि से सूरदास के संपूर्ण काव्य को प्रमुखत: छ: भागों में बांटकर देखा जा सकता है-(1.) विनय के पद, (2.) बालक कृष्ण से संबंधित पद, (3.) कृष्ण के रूप-सौंदर्य संबंधी पद, (4.) कृष्ण और राधा के रति भाव संबंधी पद, (5.) मुरली संबंधी पद, और (6.) वियोग श्रृंगार के भ्रमरगीत के पद।

विनय के पदों में सूरदास ने विनय की संपूर्ण भूमिकाओं एवं वैष्णव भक्ति संबंधी समस्त नियमों के अनुकूल विनम्रता, निरभिमानता, निष्कपटता, इष्टदेव की महत्ता, भक्त की लघुता आदि का निरूपण बड़ी सजीवता के साथ किया है। कृष्ण के बाल-जीवन संबंधी पदों में सूरदास की अद्भुत कला के दर्शन होते हैं। सूरदास ने बाल-जीवन का ऐसा जीता-जागता चित्र अंकित किया है, जिसमें मनोवैज्ञानिकता, सरसता और चित्ताकर्षकता, सभी विद्यमान हैं। कृष्ण के रूप-माधुर्य संबंधी पदों में सूरदास ने अपने इष्टदेव कृष्ण के अनंत सौंदर्य की ऐसी झांकी प्रस्तुत की है, जिसे देखकर सभी का हृदय अनायास ही उस सौंदर्य पर न्यौछावर हो जाता है। कृष्ण और राधा के रति संबंधी पदों में सूरदास कृष्ण के साथ राधा को महत्वपूर्ण स्थान देते हुए उन्हें आराध्य देवी के पद पर प्रतिष्ठित करते हैं। मुरली संबंधी पदों में सूरदास मुरली को एक साधारण मनोमुग्धकारी यंत्र से अधिक व्यापक अर्थ प्रदान करते हैं। और आखिर में वियोग संबंधी भ्रमरगीत के पदों में सूरदास की कला के सर्वोत्कृष्ट रूप का दर्शन होता है। इन पदों में सूरदास ने सरसता, वाग्वैदग्ध्य एवं माधुर्य के साथ-साथ उद्धव संदेश, गोपियों की झुंझुलाहट, प्रेमातिरेक, व्यंग्य-विनोद, हास-परिहास, उपालंभ, उदारता, सहज चपलता, विरहोन्माद, वचन-वक्रता आदि का अद्भुत वर्णन किया है। स्पष्ट है कि सूरदास ने कृष्ण के बाल-जीवन से लेकर किशोरावस्था तक की संपूर्ण क्रीड़ाओं, चेष्टाओं एवं व्यापारों आदि के मनोहारी चित्रण द्वारा 'सूरसागर' के रूप में एक अद्भुत काव्य की सृष्टि की है, जिसमें वात्सल्य और विप्रलंभ संबंधी वर्णन सर्वोपरि हैं।

प्रकृति-चित्रण

सूरदास, सूर कुटी, सूर सरोवर, आगरा

सूरदास की कविता के केंद्र में ब्रज प्रदेश की रमणीय प्रकृति अपने पूरे वैभव के साथ उपस्थित है। ब्रज प्रदेश की प्रकृति का मनोहारी रूप और

आनंदोल्लासपूर्ण मधुर कलरव सूरदास के प्रत्येक पदों में गुंजायमान है। प्रकृति-नटी की रमणीय झांकी अंकित करते हुए सूरदास उसके षड्ऋतुओं में परिवर्तित होने वाले दिव्य सौंदर्य का मनमोहक निरूपण करते हैं। बसंत ऋतु के एक चित्र में कोकिल सदैव शोर मचाती रहती है, मन्मथ सदा चित्त चुराता रहता है, वृक्षों की डालियां विविध प्रकार के पुष्पों से भरी रहती हैं, जिन पर भ्रमर उन्मुक्त होकर विलास करते रहते हैं, और ऐसे में सर्वत्र हर्ष एवं उल्लास छाया रहता है और कोई भी उदास नहीं होता-

'सदा बसंत रहत जहं बास। सदा हर्ष जहं नहीं उदास॥
कोकिल कीर सदा तंह रोर। सदा रूप मन्मथ चित चोर॥
विविध सुमन बन फूले डार। उन्मत मधुकर भ्रमत अपार॥'

कलापक्ष

कलापक्ष काव्य का वाह्य अंग होता है, जिसके अंतर्गत प्रमुखतः काव्य-शैली, भाषा, अलंकार आदि का समावेश होता है। ये तीनों भावों के वाहक हैं, जिनके माध्यम से भावों को संप्रेषित किया जाता है। सूरदास की कविता के कलापक्ष को निम्नांकित रूप में देख सकते हैं-

काव्य-शैली

जीवन की कोमलतम अनुभूतियां गीत-शैली में उत्तम ढंग से व्यक्त हो सकती हैं। इसीलिए सूरदास ने गीत-शैली का आधार ग्रहण किया। कृष्ण का ब्रज रूप समस्त गीति-काव्य की सुंदरतम भावभूमि है। 'सूरसागर' में एक ओर जहां कथा की क्षीण धारा प्रवाहित होती है, वहीं दूसरी ओर वर्णात्मक प्रसंग भी हैं, किंतु इनमें कवि का मन ज्यादा रमा नहीं है। प्रत्येक समर्थ साहित्यकार की अपनी विशिष्ट शैली होती है, जिसमें उसका संपूर्ण व्यक्तित्त्व प्रतिबिंबित होता है। कुछ विद्वानों ने 'सूरसागर' को प्रबंध-मुक्तक काव्य की संज्ञा से विभूषित किया है। डॉ. सत्येंद्र इसे 'कीर्तन काव्य' कहते हैं, जबकि डॉ. ब्रजेश्वर वर्मा ने विविधता की दृष्टि से 'सूरसागर' के पदों का वर्गीकरण निम्नांकित रूप में किया है-

श्रीमद्भागवत के कथा प्रसंग तथा कथा-पूर्ति हेतु वर्णात्मक अंश
दृश्य और वर्णन विस्तार
वर्णात्मक कथानक
गीतात्मक कथानक

सामान्य चरित संबंधी गेय पद
विशिष्ट क्रीड़ा संबंधी गेय पद
रूप चित्रण और मुरली-वादन संबंधी गेय पद
प्रभाव-वर्णन संबंधी गेय पद
भाव-चित्रण संबंधी गेय पद
फुटकल गेय पद।

सूरदास के पदों में गीतिकाव्य के सभी प्रधान तत्त्व देखे जाते हैं। सूरदास के पदों की आत्मा संगीत है, जिसकी रचना अनुभूति की सघनता के क्षणों में हुई है। इनमें भाषाओं की वंश वर्तनी है एवं कवि के अंतर्वेग को छंद ने लय की एकरूपता में बांध दिया है। इनमें अभिप्रेत अर्थ भावों तक पहुंचाने का प्रतिनिधित्व करते हैं। ये सब ही विशेषताएं गीतिकाव्य के अंतर्गत आती हैं। निर्विवादित रूप से 'सूरसागर' गीति-शैली का एक अद्वितीय काव्य-ग्रंथ है।

दृष्टिकूटि-शैली

'सूरसागर' में दृष्टिकूटि-शैली भी देखने को मिलती है। सूरदास की काव्य-कला का एक नमूना वह है, जिसमें शब्ददृक्रीड़ा का चमत्कार प्रस्तुत किया गया है। इसमें न तो लोकगीतों की सहजता है और न ही आंतरिक संगीतात्मकता। दृष्टिकूटि पद-रचना हिन्दी में सूरदास की अपनी निजी कलात्मक विशेषता है। उनमें शब्द-क्रीड़ा एवं चमत्कार की सर्वत्र प्रमुखता है।

भाषा-शैली

सूरदास की रचना परिमाण और गुण दोनों में महान् कवियों के बीच अतुलनीय है। आत्माभिव्यंजना के रूप में इतने विशाल काव्य का सर्जन सूर ही कर सकते थे, क्योंकि उनके स्वात्ममुं सम्पूर्ण युग जीवन की आत्मा समाई हुई थी। उनके स्वानुभूतिमूलक गीतिपदों की शैली के कारण प्रायः यह समझ लिया गया है कि वे अपने चारों ओर के सामाजिक जीवन के प्रति पूर्ण रूप में सजग नहीं थे, परन्तु प्रचारित पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर यदि देखा जाय तो स्वीकार किया जाएगा कि सूर के काव्य में युग जीवन की प्रबुद्ध आत्मा का जैसा स्पन्दन मिलता है, वैसा किसी दूसरे कवि में नहीं मिलेगा। यह अवश्य है कि उन्होंने उपदेश अधिक नहीं दिये, सिद्धान्तों का प्रतिपादन पण्डितों की भाषा में नहीं किया,

व्यावहारिक अर्थात् सांसारिक जीवन के आदर्शों का प्रचार करने वाले सुधारक का बनना नहीं धारण किया, परन्तु मनुष्य की भावात्मक सत्ता का आदर्शीकृत रूप गढ़ने में उन्होंने जिस व्यवहार बुद्धि का प्रयोग किया है, उससे प्रमाणित होता है कि वे किसी मनीषी से पीछे नहीं थे। उनका प्रभाव सच्चे कान्ता सम्मित उपदेश की भाँति सीधे हृदय पर पड़ता है। वे निरे भक्त नहीं थे, सच्चे कवि थे, ऐसे द्रष्टा कवि थे, जो सौन्दर्य के ही माध्यम से सत्य का अन्वेषण कर उसे मूर्त रूप देने में समर्थ होते हैं। युगजीवन का प्रतिबिम्ब होते हुए उसमें लोकोत्तर सत्य के सौन्दर्य का आभास देने की शक्ति महाकवि में ही होती है, निरे भक्त, उपदेशक और समाज सुधारक में नहीं।

सूरदास की भक्ति भावना

'भक्ति' शब्द की निर्मिति 'भज' धातु में 'क्विन्' प्रत्यय लगाने से हुई है, जिसका अर्थ होता है–'ईश्वर के प्रति सेवा भाव।' शाण्डिल्य भक्ति-सूत्र में भी यहीं बात दुहराई गयी है कि 'सापरानुरक्तिरीश्वरे' अर्थात 'ईश्वर में पर अनुरक्ति ही भक्ति है।' नारदभक्तिसूत्र के अनुसार–'भक्ति ईश्वर के प्रति परम-प्रेमरूपा और अमृत स्वरूप है।' सूरदास के गुरू वल्लभाचार्य ने भी भक्ति के विषय में अपना प्रकट किया है कि 'ईश्वर में सुदृढ़ और सनत स्नेह ही भक्ति है।श

सूरदास की भक्ति

सूरदास वल्लभाचार्य के शिष्य थे। उनके काव्य में वल्लभाचार्य द्वारा प्रतिपादित कृष्ण स्वरूप की प्रतिष्ठा स्वाभाविक रूप से हुई है। सूरदास की भक्ति में अंत:करण की प्रेरणा तथा अंतर की अनुभूति की प्रधानता है। उनके काव्य में अभिव्यक्त भक्ति-भावना के दो चरण देखे जा सकते हैं–

पहला चरण वल्लभाचार्य से मिलने के पूर्व का है, जिसमें सूरदास वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित होने से पूर्व दैन्यभाव पर आधारित भक्ति के पदों की रचना कर रहे थे।

दूसरा चरण वल्लभाचार्य से मिलने के बाद आरंभ होता है, जब सूरदास वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित होकर पुष्टिमार्गीय भक्ति पर आधारित भक्ति के पदों की रचना की और प्रवृत हुए। सूरदास की भक्ति भावना में इस प्रकार के पदों का बाहुल्य देखा जा सकता है।

दास्य भाव भक्ति

भक्ति मूलतः भावोद्गार है। सूरदास ने अपनी भक्ति में ईश्वर के समक्ष अनेक प्रकार की विनय भावना व्यक्त की है। सूरदास ने स्वयं को अपने ईश्वर का तुच्छ सेवक मानते हुए उनके समक्ष दैन्य प्रकट किया है। इस कारण सूरदास की भक्ति 'दास्य भाव' की भक्ति कहलाती है, जिसमें भक्त स्वयं को अपने ईश्वर का दास मानकर उनकी सेवा और भक्ति करता है। इस संदर्भ में एक कहावत प्रचलित है कि सूरदास जब गाऊघाट पर रहते थे तो उन्हें वहां एक दिन वल्लभाचार्य के आने का पता चला। सूरदास उचित समय पर वल्लभाचार्य से मिलने गए और उनके आदेश पर अपने रचित दो पद उन्हें गाकर भी सुनाए–

'हौं हरि सब पतितन कौ नायक'

एवं

'प्रभु! हौं सब पतितन कौ टीकौ।'

वल्लभाचार्य ने सूरदास के इन दीनतापूर्ण पदों को सुना और उन्होंने सूरदास से कहा कि–

'जो सूर ह्वै कै ऐसो घिघियात काहे को है? कुछ भगवत् लीला वर्णन करौ।'

इस पर सूरदास ने वल्लभाचार्य से कहा कि–'प्रभु! मुझे तो भगवान की लीलाओं का किंचित भी ज्ञान नहीं।' ऐसा सुनकर वल्लभाचार्य ने सूरदास को अपने संप्रदाय में स्वीकारते हुए पुष्टिमार्ग में दीक्षित करने का निश्चय किया। उन्होंने सूरदास को श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध की बनाई हुई अपनी अनुक्रमणिका सुनाई, जिसके पश्चात् सूरदास ने विनय के पदों का गान छोड़कर पुष्टिमार्गी परिपाटी के अनुसार ईश्वर की भक्ति का वर्णन करना आरंभ कर दिया। भक्ति भावना के प्रथम चरण में सूरदास 'ईश्वर–भक्ति' को इस संसार में व्याप्त भय एवं ताप से बाहर निकलने का एकमात्र रास्ता मानते हैं। उनका अनुराग ईश्वर के प्रति अप्रतिम है, इसलिए सांसारिकता के प्रति उन्होंने विराग भाव व्यक्त किया है। सांसारिक सुखों की निंदा करते हुए सूरदास ने सभी सांसारिक कार्यों, सुखों और अवस्थाओं को दोषपूर्ण माना है। उनका मानना था कि निष्पक्ष आंखों से देखने पर ही अपने भीतर की अच्छाईयां और बुराईयां दिखाई पड़ती हैं और खुद के प्रति बरती गयी यहीं इमानदारी भक्त के हृदय में दैन्य भाव को जगाती है। इसी कारण सूरदास के विनय वर्णित इन आरंभिक पदों में दैन्य भावों की

प्रधानता है। ईश्वर के गुणों की अधिकता और उनके समक्ष अपनी लघुता का भाव उन्होंने सूरसागर के आरंभ में बार-बार प्रकट किया हैं। वे कहते हैं कि अगर उन्होंने ईश्वर-भक्ति नहीं की तो उनका इस संसार में जन्म लेना ही व्यर्थ है-

'सूरदास भगवंत भजन बिनु धरनी जननी बोझ कत मारी'

'सूरदास प्रभु तुम्हरे भजन बिनु जैसे सूकर स्वान-सियार'

सूरदास का भक्त ह्रदय इतिहास और पुराण के अनेक उद्धरणों के माध्यम से भक्तों पर ईश्वरी कृपा के महत्त्व का प्रतिपादन करता है। अहिल्या, गणिका, अजामिल, गज, द्रौपदी, प्रहलाद आदि उदाहरणों के माध्यम से सूरदास यह स्थापित करते हैं कि कैसे ईश्वर अपने भक्तों पर कृपा की बौछार बरसाते हैं। सूरदास का भक्त ह्रदय ऐसा स्मरण कर स्वयं को संतुष्ट करता है-

'गज गनिका गौतम तिय तारी। सूरदास सठ सरन तुम्हारी।'

सूरदास का मानना था कि ईश्वर अपने भक्तों पर असीम कृपा करते हैं। इसलिए उन्होंने ईश्वर को भक्ति वत्सल और हितकारी कहा है-

'ऐसे कान्ह भक्त हितकारी, प्रभु तेरो वचन भरोसौ सांचौ।'

अपनी दुर्दशा के वर्णन द्वारा सूरदास प्रभु शरण में जाने की इच्छा बार-बार व्यक्त करते हैं-

'अबकि राखि लेहु भगवाना'

सूरदास के इस चरण की भक्ति पर संत कवियों की वाणी का भी प्रभाव दिखाई पड़ता है। इस दौर में माया से संबंधित अनेक पदों की रचना करते हुए उन्होंने माया की भर्त्सना ठीक संत कवियों जैसी ही की है। यद्यपि आगे चलकर उन्होंने निर्गुण भक्ति पर गहरा प्रहार भी किया, लेकिन उनकी भक्ति भावना के निरूपण के इस आरंभिक चरण में उन पर संत कवियों का प्रभाव पड़ा। कुल मिलाकर 'संसार से विराग और ईश्वर से राग' यहीं सूरदास की आरंभिक दौर की भक्ति का मूल आधार रहा है, जिसे उन्होंने बड़ी तल्लीनता के साथ व्यक्त किया है।

सूरसागर

सूरसागर, ब्रजभाषा में महाकवि सूरदास द्वारा रचे गए कीर्तनों-पदों का एक सुंदर संकलन है, जो शब्दार्थ की दृष्टि से उपयुक्त और आदरणीय है। इसमें प्रथम नौ अध्याय संक्षिप्त है, पर दशम स्कन्ध का बहुत विस्तार हो गया है। इसमें भक्ति

की प्रधानता है। इसके दो प्रसंग 'कृष्ण की बाल-लीला' और 'भ्रमर-गीतसार' अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

सूरसागर में लगभग एक लाख पद होने की बात कहीं जाती है। किन्तु वर्तमान संस्करणों में लगभग पाँच हजार पद ही मिलते हैं। विभिन्न स्थानों पर इसकी सौ से भी अधिक प्रतिलिपियाँ प्राप्त हुई ह तक है इनमें प्राचीनतम प्रतिलिपि नाथद्वारा (मेवाड़) के सरस्वती भण्डार में सुरक्षित पायी गई हैं। दार्शनिक विचारों की दृष्टि से 'भागवत' और 'सूरसागर' में पर्याप्त अन्तर है।

सूरसागर की सराहना करते हुए डॉक्टर हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है–

काव्य गुणों की इस विशाल वनस्थली में एक अपना सहज सौन्दर्य है। वह उस रमणीय उद्यान के समान नहीं जिसका सौन्दर्य पद-पद पर माली के कृतित्त्व की याद दिलाता है, बल्कि उस अकृत्रिम वन-भूमि की भाँति है जिसका रचयिता रचना में घुलमिल गया है।

परिचय

पूरा हस्तलिखित रूप में 'सूरसागर'के दो रूप मिलते हैं-'संग्रहात्मक' और संस्कृत भागवत अनुसार 'द्वादश स्कंधात्मक'। संग्रहात्मक 'सूरसागर' के भी दो रूप देखने में आते हैं। पहला, आपके-गौघाट (आगरा) पर श्रीवल्लभाचार्य के शिष्य होने पर प्रथम प्रथम रचे गए भगवल्लीलात्मक पद-'ब्रज भयौ मैहैर कें पूत, जब यै बात सुनी' से प्रारंभ होता है, दूसरा-'मथुरा-जन्म-लीला' से. ..।

कहा जाता है, हिंदी साहित्येतिहास ग्रंथों से ओझल 'सूरसागर' के उत्पत्ति विकास का एक अलग इतिहास है, जो अब तक प्रकाश में नहीं आया है और श्री सूर के समकालीन भक्त इतिहास रचयिताओं-' श्री गोकुलनाथ जी, श्रीहरिराय जी (सं.-1647 वि.) और श्री नाभादास जी (सं.-1642 वि.) प्रभृति में जिसका विशेष रूप से उल्लेख किया है। अतः इन पूर्वा पर के अनेक महत्वपूर्ण ग्रंथों से जाना जाता है कि श्री सूर ने सहस्रावधि पद किए, लक्षावधि पद रचे, कोई ग्रंथ नहीं रचा। बाद में अनंत-सूर-पदावली सागर कहलाई। वस्तुतः श्रीसूर, जैसा इन ऊपर लिए संदर्भ ग्रंथों से जाना जाता है, भगवल्लीला के भाव भरे उन्मुक्त गायक थे, सो नित्य नई-नई पद रचना कर, अपने प्रभु 'गोवर्धननाथ जी' के सम्मुख गाया करते थे। रचना करने वाले थे, सो नित्य सवेरे से संध्या तक गाए जाने वाले रागों में ललित रसों का रंग भरकर अपनी वाणी की तूलिका से चित्रित कर अपने को धन्य किया करते थे। अस्तु, न उनमें अपनी उन्मुक्त कृतियों को संग्रह करने

का भाव था और न कई क्रम देने की उमंग। उनका कार्य तो अपने प्रभु की नाना गुनन गरूली गुणावली गाना, उसके अमृतोपम रस में निमग्न हो झूमना तथा–ष्एतेचांश कलापुंसरू कृष्णस्तु भगवान स्वयं'(भाग–1ध्3ध्28) की नंदालय में बाल से पौगंड अवस्था तक लीलाओं में तदात्मभाव से विभोर होना था, यहाँ अपनी समस्त मुक्तक रचनाओं को एकत्र कर क्रमबद्ध करने का समय और स्थान कहाँ था।

कहा जाता है, श्री सूरदास 'एकदम अंधे थे,' तब अपनी जब तब की समस्त रचनाओं को कैसे एकत्र करते? फिर भी सूरदास द्वारा नित्य रचे और गाये जाने वाले पदों का लेखन और संकलन अवश्य होता रहा होगा। अन्यथा वे मौलिक रूप से रचित और गाए गए पद लुप्त हो गए होते। संभवतः सूर के समकालीन शिष्य या मित्र–यदि सूर सचमुच अंधे थे तो–उन पदों को लिखते और संकलित करते रहे होंगे। अब तक उसके संग्रहात्मक या द्वादस स्कंधात्मक बनने का कोई इतिहास पूर्णतः ज्ञात नहीं है। 'गीत–संगीत–सागर' (गो. रघुनाथ,, जी नामरत्नारूय) श्री विट्ठलनाथ जी गोस्वामी, (सं. 1572 वि.) के समय श्रीमद्वल्लभाचार्य सेवित कई निधियाँ (मूर्तियाँ), आपके वंशजों द्वारा, ब्रज से बाहर चली गई थीं। यतः संप्रदाय के अनुसार 'कीर्तनों के बिना सेवा नहीं और सेवा बिना कीर्तन नहीं' अतः जहाँ जहाँ ये निधियाँ गई, वहीं वहीं 'कंठ' या 'ग्रंथ' रूप में अष्टछाप के कवियों की कृतियाँ भी गई और वहाँ इनके संकलित रूप में–'नित्य कीर्तन' और 'वर्षोत्सव' नाम पड़े, ऐसा भी कहा जाता है।

सूर के सागर का 'संग्रहात्मक' रूप श्रीसूर के सम्मुख ही संकलित हो चुका था। उसकी सं. 1630 वि. की लिखी प्रति ब्रज में मिलती है। बाद के अनेक लिखित संग्ररूप भी उसके मिलते हैं। मुद्रित रूप इसका कहीं पुराना है। पहले यह मथुरा (सं. 1840 ई.) से, बाद में आगरा (सं.–1867 ई. तीसरी बार), जयपुर (राजस्थान सं. 1865 ई.), दिल्ली (सं. 1860 ई.) और कलकत्ता से सं. 1898 ई. में लीथो प्रेसों से छपकर प्रकाशित हो चुका था। कृष्णानंद व्यासदेव संकलित 'रागकल्पद्रुम' भी इस समय का संग्रहात्मक सूरसागर का एक विकृत रूप है, जो संगीत के रंगों में बँटा हुआ है। ब्रजभाषा के रीतिकालीन प्रसिद्ध कवि 'द्विजदेव'–अर्थात् महाराज मानसिंह, अयोध्या नरेश (सं. 1907 वि.) ने इसे सं. 1920 वि. में संपादित कर लखनऊ के नवलकिशोर प्रेस से प्रकाशित किया था। ये सभी संग्रहात्मक रूप सूरसागर, भगवान श्रीकृष्ण की जन्मलीला गायन रूप गोकुल नंदालय में मनाए गए 'नंदमहोत्सव' से प्रारंभ होकर उनकी समस्त

ब्रजलीला मथुरा आगमन, उद्धव-गोपी-संवाद, श्री राम, नरसिंह तथा वामन जयंतियाँ एवं पहले-श्री वल्लभाचार्य जी की शिष्यता से पूर्व रचे गए 'दीनता आश्रय' के पदों के बाद समाप्त हुए हैं। सूर पदों के इस प्रकार संकलन की प्रवृत्ति उनके सागर के संग्रहात्मक रूप पर ही समाप्त नहीं, वह विविध रूपों में आगे बढ़ी, जिससे उनकी पद कृति के नाना संकलित रूप हस्तलिखित तथा मुद्रित देखने में आते हैं, जो इस प्रकार हैं-दीनता आश्रय के पद, दृष्टिकुल पद, जिसे आज 'साहित्यलहरी' कहा जाता है। रामायण, बाललीला के पद, विनय पत्रिका, वैराग्यसतक, सूरछत्तीसी, सूरबहोत्तरी, सूर भ्रमरगीत, सूरसाठी, सूरदास नयन, मुरली माधुरी आदि-आदि, किंतु ये सभी संग्रह आपके संग्रहात्मक 'सागर कल्पतरु' के ही मधुर फल हैं।

श्री सूर के सागर का रूप श्री व्यास प्रणीत और शुक-मुख-निसृत 'द्वादश स्कंधात्मक' भी बना। वह कब बना, कुछ कहा नहीं जा सकता। हिंदी के साहित्येतिहास ग्रंथ इस विषय में चुप हैं। इस द्वादश स्कंधात्मक 'सूर सागर' की सबसे प्राचीन प्रति सं. 1757 वि. की मिलती है।

इसके बाद की कई हस्तलिखित प्रतियाँ मिलती हैं। उनके आधार पर कहा जा सकता है कि सूर समुदित सागर का यह 'श्रीमद्भागवत अनुसार द्वादश स्कंधात्मक रूप' अठारहवीं शती के पहले नहीं बन पाया था। उसका पूर्वकथित 'संग्रहात्मक' रूप इस समय तक काफी प्रसार पा चुका था। साथ ही इस (संग्रहात्मक) रूप की सुंदरता, सरसता और भाषा की शुद्धता एवं मनोहरता में भी कोई विशेष अंतर नहीं हो पाया था। वह सूर के समय जैसी विविध रागमयी थी वैसी ही सुंदर बनी रही, किंतु इसके इस द्वादश स्कंधात्मक रूपों में वह बात समुचित रूप से नहीं रह सकी। ज्यों ज्यों हस्तलिखित रूपों में वह आगे बढ़ती गई त्यों-त्यों सूर की मंजुल भाषा से दूर हटती गई। फिर भी जिस किसी व्यक्ति ने अपना अस्तित्त्व खोकर और 'हरि, हरि, हरि हरि सुमरन करौ' जैसे असुंदर भाषाहीन कथात्मक पदों की रचना कर तथा श्री सूर के श्रीमद्वल्लभाचार्य की चरणशरण में आने से पहले रचे गए 'दीनता आश्रय' के पद विशेषों को भागवत अनुसार प्रथम स्कंध तक ही नहीं, दशम स्कंध उत्तरार्ध, एकादश और द्वादश स्कंधों को सँजोया, वह आदरणीय है।

रूपरेखा

इस द्वादश स्कंधात्मक सूरसागर की 'रूपरेखा' इस प्रकार है-

प्रथम स्कंध–भक्ति की सरस व्याख्या, भागवत निर्माण का प्रयोजन, शुक उत्पत्ति, व्यास अवतार, संक्षिप्त महाभारत कथा, सूत–शौनक–संवाद, भीष्म प्रतिज्ञा, भीष्म–देह–त्याग, कृष्ण–द्वारिका–गमन, युधिष्ठिर वैराग्य, पांडवों का हिमालयगमन, परीक्षितजन्म, ऋषिशाप, कलियुग को दंड इत्यादि।

द्वितीय स्कंध–सृष्टि उत्पत्ति, विराट् पुरुष का वर्णन, चौबीस अवतारों की कथा, ब्रह्मा उत्पत्ति, भागवत चार 'लोक महिमा। साथ ही इस स्कंध के प्रारंभ में भक्ति और सत्संग की महिमा, भक्ति साधन, आत्मज्ञान, भगवान की विराट् रूप में भारती का भी यत्विंचित् उल्लेख है।

तृतीय स्कंध–उद्धव–विदुर–संवाद, विदुर को मैत्रेय द्वारा बताए गए ज्ञान की प्राप्ति, सप्तर्षि और चार मनुष्यों की उत्पत्ति, देवासुर जन्म, बाराह–अवतार–वर्णन, कर्दम–देवहूति–विवाह, कपिल मुनि अवतार, देवहूति का कपिल मुनि से भक्ति संबंधी प्रश्न, भक्तिमहिमा, देवहूति–हरि–पद–प्राप्ति।

चतुर्थ स्कंध–यज्ञपुरुष अवतार, पार्वती विवाह, ध्रुव कथा, पृथु अवतार, पुरंजन आख्यान।

पंचम स्कंध–ऋषभदेव अवतार, जड़भरत कथा, रहूगण संवाद।

षष्ठ स्कंध–अजामिल उद्धार, बृहस्पति–अवतार–कथन, वृत्रा–सुरवध, इंद्र का सिंहासन से च्युत होना, गुरूमहिमा, गुरूकृपा से इंद्र को पुनः सिंहासन प्राप्ति।

सप्तम स्कंध–नृसिंह–अवतार–वर्णन।

अष्टम स्कंध–गजेंद्रमोक्ष, कूर्मावतार, समुद्र मंथन, विष्णु भगवान का मोहिनी–रूप–धारण, वामन तथा मत्स्य अवतारों का वर्णन।

नवम स्कंध–पुरुरवा–उर्वशी–आख्यान, च्यवन ऋषि कथा, हलधर विवाह, राजा अंबरीय और सौभिर ऋषि का उपाख्यान, गंगा आगमन, परशुराम और श्री राम का अवतार, अहल्योद्धार।

दशम स्कंध (पूर्वार्ध)– भगवान कृष्ण का जन्म, मथुरा से गोकुल पधारना, पूतनावध, शकटासुर तथा तृणावर्त वध, नामकरण, अन्नप्राशन, कर्णछेदन, घुटुरुन चलाना, बालवेशशोभा, चंद्रप्रस्ताव, कलेऊ, मृत्तिकाभक्षण, माखनचोर, गोदोहन, वंत्सासुर, बकासुर, अधासुरों के वध, ब्रह्मा द्वारा गो–वत्स–हरण, राधा–प्रथम–मिलन, राधा–नंदघर–आगमन, कृष्ण का राधा के घर जाना, गोचारण, धेनुकवध, कालियदमन, प्रलंबासुरवध, मुरली–चीर–हरण, पनघट रोकना, गोवर्धन पूजा, दानलीला, नेत्र वर्णन, रासलीला, राधा–कृष्ण–विवाह, मान, राधा गुरूमान, हिंडोला–लीला, वृषभासुर, केशी, भौमासुर वध, अकूर आगमन, कृष्ण का मथुरा

चला जाना, कुब्जा मिलन, धोबी संहार, शल, तोषल, मुष्टिक और चाणूर का वध, धनुषभंग, कुवलयापीड़ (हाथी) वध, कंसवध, राजा उग्रसेन को राजगद्दी पर बैठाना, वसुदेव देवकी की कारागार से मुक्ति, यज्ञोपवीत, कुब्जाघर गमन, आदि-आदि।

दशम स्कंध (उत्तरार्ध)-जरासंध युद्ध, द्वारका निर्माण, कालियदवन दहन, मुचुकुंद उद्धार, द्वारका प्रवेश, रुक्मिणी विवाह, प्रद्युम्न विवाह, अनिरुद्ध विवाह, राजा मृग नृग उद्धार, बलराम जी का पुनः ब्रजगमन, सांब विवाह, कृष्ण-हस्तिनापुर-गमन, जरासंध और शिशुपाल का वध, शाल्व का द्वारका पर आक्रमण, शाल्ववध, दतवक्र का वध, बल्वलवध, सुदामाचरित्र, कुरुक्षेत्र आगमन, कृष्ण का श्रीनंद, यशोदा तथा गोपियों से मिलना, वेद और नारद स्तुतियाँ, अर्जुन-सुभद्रा-विवाह, भस्मासुर वध, भृगु परीक्षा, इत्यादि. . .।

एकादश स्कंध-श्रीकृष्ण का उद्धव को वदरिकाश्रम भेजना, नारायण तथा हंसावतार कथन।

द्वादश स्कंध-'बौद्धावतार, कल्कि-अवतार-कथन, राजा परीक्षित तथा जन्मेजय कथा, भगवत् अवतारों का वर्णन आदि।'

इस प्रकार यत्र-तत्र बिखरे इस श्रीमद्भागवत अनुसार द्वादश-स्कंधात्मक रूप में भी, श्री सूर का विशिष्ट वांग्मय 'हरि, हरि, हरि, हरि सुमरैन करौ' जैसे अनेक अनगढ़ काँच मणियों के साथ रगड़ खा-खाकर मटमैला होकर भी कवित्व की प्रभा के साथ कोमलता, कमनीयता, कला, एवं कृष्णस्तुभगवान् स्वयं की सगुणात्मक भक्ति, उसकी भव्यता, विलक्षणता, उनके विलास, व्यंग्य और विदग्धता आदि चमक-चमककर आपके कृतित्त्व रूप सागर को, नित्य नए रूप में दर्शनीय और वंदनीय बना रहे हैं।

8

रहीम

अब्दुल रहीम खान-ए-खानाँ 'उर्फ' रहीम, एक मध्यकालीन कवि, सेनापति, प्रशासक, आश्रयदाता, दानवीर, कूटनीतिज्ञ, बहुभाषाविद, कलाप्रेमी, एवं विद्वान थे। वे भारतीय साहित्य संस्कृति के अनमोल आराधक तथा सभी संप्रदानों के प्रति समादर भाव के सत्यनिष्ठ साधक थे। उनका व्यक्तित्त्व बहुमुखी प्रतिभा से संपन्न रखता था। वे एक ही साथ कलम और तलवार के धनी थे और मानव प्रेम के सूत्रधार थे।

जन्म से एक मुसलमान होते हुए भी हिंदू जीवन के अंतर्मन में बैठकर रहीम जी ने जिस माध्यम से अंकित किये थे, उनकी विशाल हृदयता का परिचय देती हैं। हिंदू देवी-देवताओं, पर्वो, धार्मिक मान्यताओं और परंपराओं का जहाँ भी आपके द्वारा उल्लेख किया गया है, पूरी जानकारी एवं ईमानदारी के साथ किया गया है। आप जीवन भर हिंदू जीवन को भारतीय जीवन का यथार्थ मानते रहे। रहीम ने काव्य में रामायण, महाभारत, पुराण तथा गीता जैसे ग्रंथों के कथानकों को उदाहरण के लिए चुना है और लौकिक जीवन व्यवहार पक्ष को उसके द्वारा समझाने का प्रयत्न किया है, जो भारतीय सांस्कृति की वर झलक को पेश करता है।

छिमा बड़न को चाहिये, छोटन को उतपात।
का रहीम हरि को घट्यौ, जो भृगु मारी लात।

जीवन परिचय

अबदुर्रहीम खानखाना का जन्म संवत् 1613 (ई. सन् 1556) में लाहौर में हुआ था। संयोग से उस समय हुमायूँ, सिकंदर, सूरी का आक्रमण का प्रतिरोध करने के लिए सैन्य के साथ लाहौर में मौजूद थे।

रहीम के पिता बैरम खाँ तेरह वर्षीय अकबर के शिक्षक तथा अभिभावक थे। बैरम खाँ खान-ए-खाना की उपाधि से सम्मानित थे। वे हुमायूँ के साढू और अंतरंग मित्र थे। रहीम की माँ वर्तमान हरियाणा प्रांत के मेवाती राजपूत जमाल खाँ की सुंदर एवं गुणवती कन्या सुल्ताना बेगम थी। जब रहीम पाँच वर्ष के ही थे, तब गुजरात के पाटण नगर में सन् 1561 में इनके पिता बैरम खाँ की हत्या कर दी गई। रहीम का पालन-पोषण अकबर ने अपने धर्म-पुत्र की तरह किया। शाही खानदान की परंपरानुरूप रहीम को 'मिर्जा खाँ' का खिताब दिया गया। रहीम ने बाबा जंबूर की देख-रेख में गहन अध्ययन किया। शिक्षा समाप्त होने पर अकबर ने अपनी धाय की बेटी माहबानो से रहीम का विवाह करा दिया। इसके बाद रहीम ने गुजरात, कुम्भलनेर, उदयपुर आदि युद्धों में विजय प्राप्त की। इस पर अकबर ने अपने समय की सर्वोच्च उपाधि 'मीरअर्ज' से रहीम को विभूषित किया। सन् 1584 में अकबर ने रहीम को खान-ए-खाना की उपाधि से सम्मानित किया। रहीम का देहांत 71 वर्ष की आयु में सन् 1626 में हुआ। रहीम को उनकी इच्छा के अनुसार दिल्ली में ही उनकी पत्नी के मकबरे के पास ही दफना दिया गया। यह मजार आज भी दिल्ली में मौजूद हैं। रहीम ने स्वयं ही अपने जीवनकाल में इसका निर्माण करवाया था।

रहीम अथवा अब्दुर्रहीम खानखाना अथवा अब्दुर्रहीम खाँ (जन्म-17 दिसम्बर, 1556, मृत्यु-1627) हिन्दी के प्रसिद्ध कवि थे। अकबर के दरबार में इनका महत्त्वपूर्ण स्थान था। रहीम अकबर के नवरत्नों में से एक थे। गुजरात के युद्ध में शौर्य प्रदर्शन के कारण अकबर ने इन्हें 'खानखाना' की उपाधि दी थी। रहीम अरबी, तुर्की, फारसी, संस्कृत और हिन्दी के अच्छे ज्ञाता थे। इन्हें ज्योतिष का भी ज्ञान था। रहीम की ग्यारह रचनाएं प्रसिद्ध हैं। इनके काव्य में मुख्य रूप से श्रृंगार, नीति और भक्ति के भाव मिलते हैं। 70 वर्ष की उम्र में 1626 ई. में रहीम का देहांत हो गया।

जीवन परिचय

अब्दुर्रहीम खाँ, खानखाना मध्ययुगीन दरबारी संस्कृति के प्रतिनिधि कवि थे। अकबरी दरबार के हिन्दी कवियों में इनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये स्वयं भी

कवियों के आश्रयदाता थे। केशव, आसकरन, मण्डन, नरहरि और गंग जैसे कवियों ने इनकी प्रशंसा की है। ये अकबर के अभिभावक बैरम खाँ के पुत्र थे। अब्दुल रहीम खानखाना का जन्म 17 दिसम्बर, 1556 ई. (माघ, कृष्ण पक्ष, गुरूवार) को सम्राट अकबर के प्रसिद्ध अभिभावक बैरम खाँ (60 वर्ष) के यहाँ लाहौर में हुआ था। उस समय रहीम के पिता बैरम खाँ पानीपत के दूसरे युद्ध में हेमू को हराकर बाबर के साम्राज्य की पुनर्स्थापना कर रहे थे। बैरम खाँ, अमीर अली शूकर बेग के वंश में से थे। जबकि उनकी माँ सुलताना बेगम मेवाती जमाल खाँ की दूसरी पत्नी थीं। कविता करना बैरम खाँ के वंश की खानदानी परम्परा थी। बाबर की सेना में भर्ती होकर रहीम के पिता बैरम खाँ अपनी स्वामी भक्ति और वीरता से हुमायूँ के विश्वासपात्र बन गए थे।

हुमायूँ की मृत्यु के बाद बैरम खाँ ने 14 साल के शहजादे अकबर को राजगद्दी पर बैठा दिया और खुद उसका संरक्षक बनकर मुगल साम्राज्य को स्थापित किया था। लेकिन वर्दी खानखाना के प्राणदण्ड, दरबारियों की ईर्ष्या, अकबर की माता हमीदा बानो और धाय माहम अनगा की दुरभि सन्धि एवं बाबर की बेटी गुलरुख बेगम की लड़की सईदा बेगम से शादी तथा अमीरों के सामने अकबर के रूप में उपस्थित होने के विकल्प ने बैरम खाँ को सन् 1560 में अकबर के पूर्ण राज्य ग्रहण करने से धीरे-धीरे विद्रोही बना दिया था।

पिता बैरम खाँ की हत्या

आखिरकार हारकर अकबर के कहने पर बैरम खाँ हज के लिए चल पड़े। वह गुजरात में पाटन के प्रसिद्ध सहस्रलिंग तालाब में नौका विहार या नहाकर जैसे ही निकले, तभी उनके एक पुराने विरोधी-अफगान सरदार मुबारक खाँ ने धोखे से उनकी पीठ में छुरा भोंककर उनका वध कर डाला। कुछ भिखारी लाश उठाकर फकीर हुसामुद्दीन के मकबरे में ले गए और वहीं पर बैरम खाँ को दफना दिया गया। 'मआसरे रहीमी' ग्रंथ में मृत्यु का कारण शेरशाह के पुत्र सलीम शाह की कश्मीरी बीवी से हुई लड़की को माना गया है, जो हज के लिए बैरम खाँ के साथ जा रही थी। इससे अफगानियों को अपनी बेहज्जती महसूस हुई और उन्होंने हमला करके बैरम खाँ को समाप्त कर दिया।

लेकिन यह सम्भव नहीं लगता, क्योंकि ऐसा होने पर तो रहीम के लिए भी खतरा बढ़ जाता। उस वक्त पूर्ववर्ती शासक वंश के उत्तराधिकारी को समाप्त कर दिया जाता था। वह अफगानी मुबारक खाँ मात्र बैरम खाँ का वध कर ही

नहीं रुका, बल्कि डेरे पर आक्रमण करके लूटमार भी करने लगा। तब स्वामीभक्त बाबा जम्बूर और मुहम्मद अमीर 'दीवाना' चार वर्षीय रहीम को लेकर किसी तरह अफगान लुटेरों से बचते हुए अहमदाबाद जा पहुँचे। चार महीने वहाँ रहकर फिर वे आगरा की तरफ चल पड़े। अकबर को जब अपने संरक्षक की हत्या की खबर मिली तो उसने रहीम और परिवार की हिफाजत के लिए कुछ लोगों को इस आदेश के साथ वहाँ भेजा कि उन्हें दरबार में ले आएँ।

रहीम को अकबर का संरक्षण

बादशाह अकबर का यह आदेश बैरम खाँ के परिवार को जालौर में मिला, जिससे कुछ आशा बंधी। रहीम और उनकी माता परिवार के अन्य सदस्यों के साथ सन् 1562 में राजदरबार में पहुँचे। अकबर ने बैरम खाँ के कुछ दुश्मन दरबारियों के विरोध के बावजूद बालक रहीम को बुद्धिमान समझकर उसके लालन-पालन का दायित्व स्वयं ग्रहण कर लिया। अकबर ने रहीम का पालन-पोषण तथा शिक्षा-दीक्षा शह.जादों की तरह शुरू करवाई, जिससे दस-बारह साल की उम्र में ही रहीम का व्यक्तित्त्व आकार ग्रहण करने लगा। अकबर ने शहजादों को प्रदान की जाने वाली उपाधि मिर्जा खाँ से रहीम को सम्बोधित करना शुरू किया।

अकबर रहीम से बहुत अधिक प्रभावित था और उन्हें अधिकांश समय तक अपने साथ ही रखता था। रहीम को ऐसे उत्तरदायित्व पूर्ण काम सौंपे जाते थे, जो किसी नए सीखने वाले को नहीं दिए जा सकते थे। परन्तु उन सभी कामों में 'मिर्जा खाँ' अपनी योग्यता के बल पर सफल होते थे। अकबर ने रहीम की शिक्षा के लिए मुल्ला मुहम्मद अमीन को नियुक्त किया। रहीम ने तुर्की, अरबी एवं फारसी भाषा सीखी। उन्होंने छन्द रचना, कविता करना, गणित, तर्क शास्त्र और फारसी व्याकरण का ज्ञान प्राप्त किया। संस्कृत का ज्ञान भी उन्हें अकबर की शिक्षा व्यवस्था से ही मिला। काव्य रचना, दानशीलता, राज्य संचालन, वीरता और दूरदर्शिता आदि गुण उन्हें अपने माँ-बाप से संस्कार में मिले थे। सईदा बेगम उनकी दूसरी माँ थीं। वह भी कविता करती थीं।

रहीम शिया और सुन्नी के विचार-विरोध से शुरू से आजाद थे। इनके पिता तुर्कमान शिया थे और माता सुन्नी। इसके अलावा रहीम को छह साल की उम्र से ही अकबर जैसे उदार विचारों वाले व्यक्ति का संरक्षण प्राप्त हुआ था। इन सभी ने मिलकर रहीम में अद्‌भुत विकास की शक्ति उत्पन्न कर दी।

किशोरावस्था में ही वे यह समझ गए कि उन्हें अपना विकास अपनी मेहनत, सूझबूझ और शौर्य से करना है। रहीम को अकबर का संरक्षण ही नहीं, बल्कि प्यार भी मिला। रहीम भी उनके हुक्म का पालन करते थे, इसलिए विकास का रास्ता खुल गया। अकबर ने रहीम से अंग्रेजी और फ्रेंच भाषा का भी ज्ञान प्राप्त करने को कहा। अकबर के दरबार में संस्कृत के कई विद्वान् थे, बदाऊंनी खुद उनमें से एक था।

विवाह

रहीम 'मिर्जा खाँ' की कार्यकुशलता, लगन और योग्यता देखकर अकबर ने उनको शासक वंश से सीधे सम्बद्ध करने का फैसला किया, क्योंकि ऐसा करके ही रहीम के दुश्मनों का मुँह बन्द किया जा सकता था और उन्हें अन्त:पुर की राजनीति से बचाया जा सकता था। अकबर ने अपनी धाय माहम अनगा की पुत्री और अजीज कोका की बहन 'माहबानो' से रहीम का निकाह करा दिया। रहीम का विवाह लगभग सोलह साल की उम्र में कर दिया गया था। माहबानो से रहीम के तीन पुत्र और दो पुत्रियाँ हुईं। पुत्रों का नाम इरीज, दाराब और करन अकबर के द्वारा ही रखा गया था। पुत्री जाना बेगम की शादी शहजादा दानियाल से सन् 1599 में और दूसरी पुत्री की शादी मीर अमीनुद्दीन से हुई। रहीम को सौधा जाति की एक लड़की से रहमान दाद नामक एक पुत्र हुआ और एक नौकरानी से मिर्जा अमरुल्ला हुए। एक पुत्र हैदर कद्दुली हैदरी की बचपन में ही मृत्यु हो गई थी।

रहीम का भाग्योदय

रहीम

रहीम के भाग्य का उत्कर्ष सन् 1573 से शुरू होता है। जो अकबर के समय सन् 1605 तक चलता रहा। इसी बीच बादशाह अकबर एक बार रहीम से नाराज भी हो गए, लेकिन ज्यादा दिनों तक यह नाराजगी नहीं रह सकी। सन् 1572 में जब अकबर पहली बार गुजरात विजय के लिए गया तो 16 वर्षीय रहीम 'मिर्जा खाँ' उसके साथ ही थे। खान आजम को गुजरात का सूबेदार नियुक्त करके बादशाह अकबर लौट आए। लेकिन उसके लौटते ही खान आजम को गुजराती परेशान करने लगे। उसे चारों ओर से नगर में घेर लिया गया। यह

समाचार पाकर बादशाह अकबर सन् 1573 में 11 दिनों में ही साबरमती नदी के किनारे पहुँच गया। रहीम 'मिर्जा खाँ' को अकबर के नेतृत्व में मध्य कमान का कार्यभार सौंपा गया। मिर्जा खाँ ने बड़ी बहादुरी से युद्ध करके दुश्मन को परास्त किया। यह उनका पहला युद्ध था।

अकबर के साथ ही रहीम लौट आए। कुछ वक्त बाद मिर्जा खाँ को राणा प्रताप, जो उन दिनों दक्षिणी पहाड़ियों के दुर्गम जंगल में थे, से लड़ने के लिए राजा मानसिंह और भगवान दास के साथ भेजा गया। आंशिक सफलता के बाद भी जब राणा प्रताप अपराजित रहे तो शाहवाज खाँ के नेतृत्व में पुनः सेना भेजी गई। इसमें भी रहीम 'मिर्जा खाँ' शामिल थे जिन्होंने 4 अप्रैल, 1578 को दोबारा आक्रमण किया। अभी तक रहीम प्रसिद्ध सेनानायकों के नेतृत्व में युद्ध का अनुभव प्राप्त कर रहे थे।

रहीम मिर्जा खाँ को जिम्मेदारी का पहला स्वतंत्र पद सन् 1580 में प्राप्त हुआ। फिर अकबर ने उन्हें मीर अर्ज के पद पर नियुक्त किया। इसके बाद सन् 1583 में उन्हें शहजादा सलीम का अतालीक (शिक्षक) बना दिया गया। रहीम को इस नियुक्ति से बहुत खुशी हासिल हुई। उन्होंने इस उपलक्ष्य में लोगों को एक शानदार दावत दी, जिसमें खुद बादशाह अकबर भी मौजूद था। मिर्जा खाँ और उनकी पत्नी माहबानो को बादशाह ने उपहारों से सम्मानित किया।

रहीम अभी इस दायित्व का निर्वाह कर ही रहे थे कि उन्हें खबर मिली कि आगरे के किले से भागे हुए कध्दी मुजफ्फर खाँ ने काठियों आदि के साथ मिलकर फिर सेना तैयार करनी शुरू कर दी है। बैरम खाँ का दुश्मन शहाबुद्दीन उस वक्त गुजरात का सूबेदार था। वह अकबर का हुक्म नहीं मान रहा था। अकबर को इस बात का शक था कि वह विश्वासघात कर रहा है।

गुजरात की सूबेदारी

अकबर के शासनकाल में सन् 1580 से सन् 1583 तक कठिन समय था, क्योंकि उसके दरबार के अमीर उसके खिलाफ साजिश रच रहे थे और दक्षिण में स्थिति विपरीत थी। ऐसे वक्त में अकबर ने रहीम 'मिर्जा खाँ' को गुजरात की सूबेदारी देकर दुश्मन को पराजित करने के लिए भेजा। उधर मुजफ्फर खाँ ने एतमाद खाँ को हराकर अहमदाबाद पर अधिकार कर लिया था। साथ ही प्राप्त खजाने से 40,000 सेना खड़ी कर ली थी।

बादशाह अकबर ने 22 सितंबर, 1583 को फतेहपुर सीकरी के राजपूतों और बाड़ा के सैयदों तथा पठान सैनिकों के साथ रहीम को विदा किया। रहीम इन बहादुर सैनिकों सहित द्रुतगति से आगे बढ़ते हुए मिरथा पहुँचे, जहाँ उन्हें मुजफ्फर खाँ के द्वारा कुतुबुद्दीन की हत्या और भड़ौच पर अधिकार का समाचार मिला। रहीम अपने साथ के लोगों से यह खबर छिपाए तेजी से आगे बढ़ते हुए सिरोही जा पहुँचे, जहाँ निजामुद्दीन उनकी अगवानी में खड़े थे। इससे उन्हें नवीनतम स्थिति का पता चला। 31 दिसम्बर को वह पाटन पहुँचे और एक दिन रुककर मुगल अधिकारियों की गोष्ठी में विचार-विमर्श किया। लोगों ने रहीम को मालवा सेना की प्रतीक्षा करने की सलाह दी लेकिन विश्वसनीय मित्रों मुंशी दौलत खाँ लोदी ने कहा कि यहीं उचित अवसर है। वे आक्रमण करके 'खानखाना' की उपाधि प्राप्त करें, क्योंकि यह उपाधि उनके पिता को भी मिली थी। रहीम को मीर मुंशी दौलत खाँ लोदी की बात जंची। वे आक्रमण करने के लिए चल पड़े। 12 जनवरी, 1584 को उन्होंने अहमदाबाद से 6 मील दूर सरखेज गाँव के निकट साबरमती नदी के बाएँ किनारे पर पहुँचकर डेरा डाल दिया। मुजफ्फर खाँ की सेना का पड़ाव नदी के उस पार था। उसके पास 40,000 सेना थी जबकि रहीम के पास मात्र 10,000 सेना थी। ऐसी हालत में नदी पार करना बहुत ही खतरनाक सिद्ध हो सकता था।

इन हालात का सामना रहीम ने जिस मनौवैज्ञानिक पद्धति से किया, वह युद्ध विज्ञान के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। रहीम ने पदाधिकारियों को एक पत्र पढ़कर सुनाया कि बादशाह एक विशाल सेना लेकर खुद आ रहे हैं और उनके आने तक आक्रमण न किया जाए। इससे अमीरों का मनोबल बढ़ा। वे सेनापति के आदेशों का पालन करने में लग गए। दुश्मनों को जब अपने जासूसों से पता चला कि बादशाह खुद आ रहे हैं तो 16 जनवरी को नदी पार करके मुजफ्फर खाँ ने जल्दबाजी के साथ आक्रमण कर दिया।

अपनी रणनीति के अनुसार रहीम 300 चुने हुए वीरों और 100 विशालकाय हाथियों के साथ सेना के मध्य में रहते हुए युद्ध भूमि में उतरे। राजपूतों और सैयदों ने इस युद्ध में बड़ी वीरता का प्रदर्शन किया। चारों तरफ मृत्यु का ताण्डव था। दोनों पक्षों को जब मुजफ्फर खाँ ने गुत्थम-गुत्था देखा तो सात हजार सैनिकों के साथ मध्य भाग की ओर बढ़ा। मुगल सैनिक विशाल सेना को मध्य भाग की तरफ आता देख युद्ध स्थल से भागने लगे। ऐसी स्थिति में रहीम ने हाथियों की सेना आगे करने की युद्धनीति अपनाई। गजराजों द्वारा कुचले जाने

से शत्रु पक्ष में त्राहि-त्राहि मच गई। जब तक वे सम्भलते, तब तक निजामुद्दीन ने पीछे से और राय दुर्ग सिसौदिया ने बाईं तरफ से आक्रमण कर दिया।

कंधार पर आक्रमण

रहीम खानखाना जौनपुर में मुश्किल से एक वर्ष रहे होंगे कि 4 जनवरी, 1590 को बादशाह अकबर ने विशाल सेना के साथ उन्हें कंधार विजय के लिए भेज दिया। खर्च आदि के लिए मुलतान और भक्कर जागीर के रूप में प्रदान किया। रहीम ने रास्ते में ही बलूचियों को पराजित करने का फैसला किया। लेकिन उन्होंने कंधार जीतने के पहले सिन्ध के शासक जानी बेग, जो मुजफ्फर खाँ से ज्यादा चालाक और सामरिक दृष्टि से सम्पन्न था, को पराजित करना जरूरी समझा। इसके लिए खानखाना ने बादशाह से इजाजत माँगी जो उन्हें तत्काल मिल गई।

रहीम उपजाऊ और सम्पन्न प्रान्त पर अधिकार करके सैनिकों की जरूरतें पूरी करना चाहते थे। वे अभी मुलतान से कुछ ही मील दूर थे कि बलूची सरदारों ने सामूहिक रूप से खानखाना की सेवा में हाजिर होकर अकबर के प्रति अपनी स्वामीभक्ति प्रदर्शित की और सिन्ध की विजय में सहयोग का पूरा आश्वासन दिया।

यह बात जब जानी बेग को पता चली तो उसने खुसरो के नेतृत्व में 120 सशस्त्र नावों, जिनमें धनुर्धर सैनिक, बन्दूक चलाने वाले एवं 200 युद्ध तोपें थीं, को जलमार्ग से और दो टुकड़ियों को नदी के किनारों से भेजा। खानखाना ने जिस किले के पास डेरा डाला था, वह स्थान नदी से काफी ऊँचाई पर ढलुआ बलुई जमीन पर स्थित था। अतः नदी से निकलकर आक्रमण करना मुश्किल था। 31 अक्तूबर, 1591 को शत्रु-दल धारा के विपरीत आगे बढ़ता दिखाई पड़ा। अब युद्ध अनिवार्य हो गया था। यह भयानक युद्ध 24 घन्टे के बाद तब बन्द हुआ जब खुसरों हारकर भाग गया। लेकिन जानी बेग इससे हतोत्साहित नहीं हुआ और बुहरी किले में अपना डेरा डाले पड़ा रहा, क्योंकि यह स्थल सुरक्षित था।

खानखाना की उपाधि

ऐसा होने से दुश्मनों ने यह समझा कि एक तरफ से अकबर और दूसरी तरफ से मालवा की सेना ने एक साथ आक्रमण कर दिया है। वे तत्काल मैदान छोड़कर भागने लगे। परिणामतः मुजफ्फर खाँ को भी वहाँ से भागकर अपनी जान

बचानी पड़ी। इस विजय से रहीम 'मिर्जा खाँ' की बहादुरी की धाक जम गई और उनके दरबारी दुश्मनों के मुँह बन्द हो गए। इसी के साथ रहीम को 'खानखाना' की उपाधि तथा कई जागीरों से सम्मानित किया गया।

सन् 1589 में जब बादशाह अकबर अपने परिवार के साथ कश्मीर और काबुल घाटी की यात्रा पर गया तो रहीम खानखाना भी उसके साथ थे। रहीम ने अवकाश के दिनों में बाबर की आत्मकथा तजुके बाबरी का तुर्की से फारसी में अनुवाद किया। फिर 24 नवम्बर, 1589 को जब बादशाह यात्रा से लौट रहे थे तो उन्होंने यह अनुवाद उन्हें रास्ते में ही भेंट किया।

अकबर ने रहीम की साहित्यिक कृति से प्रसन्न होकर राजा टोडरमल की मृत्यु से रिक्त साम्राज्य के वकील के पद पर उन्हें अधिष्ठित कर दिया। रहीम के पिता बैरम खाँ भी साम्राज्य के वकील थे। यद्यपि उस समय तक इस पद के अधिकार कुछ कम हो गए थे, लेकिन बादशाह और शहजादों के अधिकारों के बाद यहीं सर्वोच्च पद था। रहीम को जौनपुर का सूबा जागीर के रूप में प्रदान किया गया। उन्हें अवकाश के दिनों में दरबार में आने वाले कवियों आदि को दान देना पड़ता था। इसके अलावा साम्राज्य के सर्वश्रेष्ठ अमीर के खर्चे भी अधिक थे। रहीम को प्रतिष्ठा, कुल की मर्यादा और आन-बान के अनुसार खर्च करना पड़ता था, इस वजह से उनकी आर्थिक स्थिति कमजोर होने लगी थी।

खानखाना की युद्धनीति

रहीम खानखाना के सैनिकों को अब काफी परेशानियाँ उठानी पड़ीं। दो महीने घेरा डालने के बाद भी उन्हें सफलता नहीं मिली। जानी बेग के छापामार सैनिक किले से निकलकर मुगलों को परेशान करते और खाद्य सामग्री लूट लेते थे। जब खाद्यान्न की कमी हो गई तो खानखाना ने बादशाह से मदद माँगी। बादशाह ने ढाई लाख रुपये, अनाज और तोपों से सजी कुछ नौकाएँ भेजीं। लेकिन जब इससे भी समस्या हल नहीं हुई तो उन्होंने जानी बेग के रसद आपूर्ति के स्रोतों पर अधिकार करना जरूरी समझा। उन्होंने मुगल सैनिकों के पाँच दस्तों की सहायता से शत्रु के रसद आपूर्ति ठिकानों पर कब्जा कर लिया। इससे खानखाना के सैनिकों को खाद्य सामग्री की पूर्ति सम्भव हो सकी।

तत्पश्चात् खानखाना ने अपनी युद्धनीति के अनुसार आक्रमण करके बुहरी किले को ध्वस्त कर दिया। शत्रुओं ने जमकर संघर्ष किया, लेकिन अन्ततः पराजित हुए। जानी बेग ने युद्ध भूमि से भागकर उरनपुर में शरण ली। खानखाना

ने इस बार किले की घेराबन्दी करने में चूक नहीं की। यह घेरा एक माह तक चलता रहा। इतने में बारिश शुरू हो गई। लगातार बारिश के कारण तीन तरफ से नदी का जल तथा एक तरफ मुगलों की घेराबन्दी से जानी बेग की खाद्य आपूर्ति लगभग समाप्त हो गई। नदी से सामग्री पहुँचना मुगलों के कब्जे के कारण असम्भव था। तोपों की गोलाबारी से भीतर रहना मुश्किल हो गया था। लोग ऊँट आदि खाने लगे थे। जानी बेग के सैनिक भूख से व्याकुल होकर खानखाना की शरण में आने लगे। खानखाना की उदारता के फलस्वरूप अनेक सिन्धी तो मुगल सेना में शामिल हो गए।

सिन्ध पर विजय

आखिर में जानी बेग ने अपने दूतों से कहलवाया कि अल्लाह के नाम पर अपने ही धर्म के लोगों की हत्या रोक दें। खानखाना ने दूतों का स्वागत किया और यह सन्धि प्रस्ताव स्वीकृत किया कि सेहवान दुर्ग एवं बीस युद्धपोत मुगलों को दे दिए जाएँ। जानी बेग अपनी पुत्री का विवाह इरीज से करें तथा सिन्ध के शासक राजदरबार में उपस्थित होकर बादशाह की अधीनता स्वीकार कर लें। सन्धि होने के बाद सैनिकदृघेरा उठा लिया गया। जानी बेग ने तीन माह का वक्त माँगा ताकि वह ठट्टा जाकर अपनी राजधानी लाहौर ले चलने का प्रबन्ध कर सके।

सेहवान दुर्ग की चाबी खानखाना के वहाँ पर पहुँचने पर दुर्गपाल के द्वारा प्रदान कर दी गई। तीन महीने का वक्त समाप्त होने पर भी जब जानी बेग नहीं आया तो खानखाना ने ठट्टा की तरफ प्रस्थान किया। जानी बेग राजधानी से निकलकर फतेहाबाद में डेरा डाले पुर्तगाली सेना के आने का इंतजार कर रहा था। मुगल सेना फतेहाबाद पहुँच गई। तब जानी बेग ने आगे बढ़कर खानखाना का स्वागत किया। उसकी धूर्तता तथा बहानेबाजी नहीं चल पाई। खानखाना ने मुगलों को उसकी मित्रता का विश्वास दिलाने के लिए उससे जहाजी बेड़ा समर्पित करने को कहा।

जानी बेग के पास दो ही रास्ते थे–गिरफ्तारी या अधीनता। उसने अपना जहाजी बेड़ा जो कि उसकी रीढ़ था, मुगलों को दे दिया। सिन्ध पर विजय प्राप्त करके खानखाना ठट्टा चले गए। वहाँ से प्रस्थान करते समय अपनी सारी सामग्री जो उनके पास थी, अपने अमीरों और कर्मचारियों में वितरित कर दी। वे फतेहाबाद में लौटकर आए ही थे कि उन्हें पराजित शत्रु के साथ दरबार में

उपस्थित होने का शाही आदेश मिला। खानखाना जानी बेग के साथ अविलम्ब वहाँ से चलकर दरबार में हाजिर हुए। इससे उनकी आज्ञाकारिता पर बादशाह अकबर बहुत खुश हुआ।

दक्षिण को प्रस्थान

सिन्ध पर विजय के बाद खानखाना दरबार में 6 माह ही रह पाए थे कि बादशाह ने उन्हें दक्षिण की ओर प्रस्थान करने को कहा। खानखाना मालवा के मार्ग से दक्षिण को रवाना हुए। कुछ दिन भिलसा में रहकर 19 जुलाई, 1594 को दक्षिण की ओर सीधे न जाकर वे उज्जैन के रास्ते से चल पड़े। वे आक्रमण के पहले दक्षिण के द्वार पर स्थित खानदेश पर भी अधिकार करना चाहते थे। शहजादा मुराद रहीम का इन्तजार कर रहा था। खानखाना की देरी उसे पसन्द नहीं थी। दरबारी और अमीर खानखाना के विरुद्ध मुराद के कान भर रहे थे। खानखाना का यह कार्य उनकी दूरदर्शिता और कूटनीति कौशल का प्रमाण था। परन्तु शहजादा नाराज होता गया और उसने जून, 1565 में अहमदनगर की ओर प्रस्थान कर दिया।

मुगलों, राजपूतों, सैयदों और खानदेश की सम्मिलित सेना के साथ खानखाना ने शाहपुर से चलकर पाथरी से 12 कोस दूर गोदावरी के तट पर अस्थि नामक स्थान पर डेरा डाल दिया। नदी के दूसरे किनारे पर चाँदबीबी के राष्ट्र जागरण के फलस्वरूप आदिल शाही, कुतुब शाही, निजाम शाही और बीदर शाही की संयुक्त सेनाएँ वीर योद्धा सुहेल खाँ के नेतृत्व में डेरा डाले हुए थीं। पूरे पन्द्रह दिनों तक दोनों ही गोदावरी नदी के तट के आर-पार एक दूसरे के आक्रमण का इन्तजार करते रहे। जब खानखाना को दक्षिणियों की शक्ति का अनुमान हो गया तो उन्होंने अपने साथियों राजा अली खाँ और शाहरुख के साथ 26 जनवरी, 1597 को नदी पार करके दक्षिण की सेना पर आक्रमण कर दिया।

दक्षिण के इस अभियान से संतुष्ट होकर शहजादा खुर्रम खानदेश, बरार और अहमदनगर की सूबेदारी खानखाना को देकर अपने पिता से मिलने माण्डू चला गया। बादशाह ने खुर्रम को शाहजहाँ की उपाधि दी तथा सिंहासन से उठकर उसका स्वागत किया। मलिक अम्बर अपनी आदत के अनुसार अधिक दिनों तक अधीन नहीं रह सकता था। उसने सन्धि तोड़ दी और मुगल थानेदारों पर हमला कर दिया। ये खानखाना की विपत्ति के दिन थे। दामाद शाहनवाज खाँ की अधिक मदिरापान के कारण मृत्यु हो गई और रहीम का पुत्र रहमान दाद भी

चल बसा। दाराब को बालाघाट से बालपुर और वहाँ से सन् 1620 में बुरहानपुर खदेड़ दिया गया। बुरहानपुर में दाराब और खानखाना दोनों ही गिरफ्तार कर लिए गए। फिर तभी मुक्त हुए जब शाहजहाँ वहाँ पर आया। इस प्रकार सन् 1620 से 1626 तक का समय रहीम के राजनीतिक जीवन का ह्रास काल रहा। सम्राट अकबर के शासन काल में उनकी गणना अकबर के नौ रत्नों में होती थी। जहाँगीर के राजगद्दी पर बैठने पर रहीम ने अक्सर जहाँगीर की नीतियों का विरोध किया। इसके फलस्वरूप जहाँगीर की दृष्टि बदली और उन्हें कैद कर दिया। उनकी उपाधियाँ और पद जब्त कर लिए गए। सन् 1625 में रहीम ने दरबार में जहाँगीर के सामने उपस्थित होकर माफी माँगी और वफादारी का प्रण किया। बादशाह जहाँगीर ने न सिर्फ उन्हें माफ कर दिया बल्कि लाखों रुपये दिए, उपाधियाँ और पद लौटा दिए। जहाँगीर की इस कृपा से अभिभूत होकर रहीम ने अपनी कब्र के पत्थर पर यह दोहा खुदवाने की वसीयत की–

मरा लुत्फे जहाँगीर, जे हाई ढाते रब्बानी।
दो वारः जिन्दगी दाद, दो वारः खानखानी॥

अर्थात् ईश्वर की सहायता और जहाँगीर की दया से दो बार जिन्दगी और दो बार खानखाना की उपाधि मिली।

व्यापक नरसंहार

भयानक संघर्ष के बाद कुतुब शाही और निजाम शाही सैनिक मुगलों की मार से भागने लगे। तब सेना के मध्य भाग में सुहेल खाँ ने पूरी शक्ति के साथ मुगलों पर आक्रमण कर दिया। मारदृकाट से डरकर मुगल सैनिक युद्ध स्थल से 30 मील दूर शाहपुर भाग गए। सुहेल खाँ के सैनिकों ने जब मध्य भाग पर आक्रमण किया तो तोपों के सीधे आक्रमण से बचने के लिए वह वहाँ से हट गया, परन्तु राजा अलीखाँ बीच में आ गया। व्यापक नर संहार के बाद अंधेरा हो जाने के कारण दोनों पक्षों ने एक–दूसरे की हार का अनुमान लगाकर वहाँ से भाग गए। प्रातःकाल जब मुगल सैनिक नदी पर पानी लेने गए तो सुहेल खाँ ने 25000 घुड़सवार सेना के साथ आक्रमण कर दिया।

खानखाना के पास इस समय कुल 7000 सैनिक थे। तीनों सेनाओं के महत्त्वपूर्ण सैनिक मारे गए थे। कहा जाता है कि दौलतखाँ लोदी (जिसे अजीज कोका ने रहीम को दिया था और कहा था कि इसकी सेवा करो, खानखाना बन जाओगे) उस समय सेनापति खानखाना का मुख्य रक्षक था। उसने सुहेल खाँ

द्वारा हाथियों और तोपों को आगे बढ़ाया जाते देखकर खानखाना से कहा, 'हमारे पास 600 घुड़सवार हैं। फिर भी मैं शत्रु के केन्द्र पर आक्रमण करूँगा।'

सेनापति खानखाना ने कहा, 'क्या तुम्हें दिल्ली का स्मरण नहीं है।' दौलत खाँ ने उत्तर दिया, 'अगर हम इन विषमताओं से सुरक्षित रह गए तो सैकड़ों दिल्लियाँ ढूँढ लेंगे।' बड़हा के सैयद यह वार्तालाप सुन रहे थे। वे दौलतखाँ लोदी से बोले, 'जब कुछ नहीं बचा है सिवाय मृत्यु के तो आइए, हम सब हिन्दुस्तानियों की तरह लड़ें। लेकिन आप खानखाना से यह पूछिए कि वह क्या चाहते हैं।'

दौलतखाँ लोदी ने घूमकर खानखाना से कहा, 'हमारे सामने विशाल सेना खड़ी है। विजय अल्लाह के हाथ में है। कृपया यह बताइए कि अगर आप हार गए तो हम लोग आपको कहाँ पर पाएँगे।' खानखाना ने कहा, 'लाशों के नीचे।' फिर दौलत खाँ और सैयदों ने आदिलशाही सेना के मध्य भाग पर सीधे आक्रमण कर दिया। इस युद्ध में शत्रु पराजित हुए और सुहेल खाँ बेहोश होकर मैदान में गिर पड़ा, जिसे बाद में दक्षिणी उठाकर भाग गए।

विपत्तियों के बादल

कहा जाता है कि खानखाना ने उस दिन 75 लाख रुपये बाँट दिए। इस महान् विजय के बाद भी खानखाना और शहजादा मुराद में मतभेद बढ़ते गए। शहजादे के कहने पर खानखाना को वापस बुला लिया गया। यह रहीम के दुःख का समय था। उनका संरक्षक और बादशाह उनसे नाराज था ही, इसी बीच उनका सबसे प्रिय पुत्र हैदर कुली जलकर मर गया। लाहौर से लौटते समय अम्बाला में माहबानो अधिक बीमार हो गईं। वह पुत्र की मृत्यु नहीं झेल सकीं और अम्बाला में ही सन् 1598 में उनकी मृत्यु हो गई। दक्षिण से लौटने पर खानखाना केवल साल भर दरबार में रहे। यह समय उनके दुख, अपमान और सन्ताप का था। 29 अक्टूबर, 1599 को बादशाह अकबर ने शहजादा दानियाल को दक्षिण में नियुक्त करके रहीम को उसका अभिभावक बना दिया। साथ ही दक्षिण कमान का सेनापति पद देकर अहमदनगर का किला फतह करने के लिए भेजा। दानियाल और रहीम अहमदनगर किले का चार माह चार दिन तक घेरा डाले रहे। चाँदबीबी ने जब सन्धि करनी चाही तो हब्शियों ने उन्हें मार डाला और इब्राहीम के पुत्र बहादुर को नि.जाम बनाकर युद्ध के लिए तैयार हो गए। 16 अगस्त, 1600 को किले की दीवार उड़ा दी गई और हब्शियों की पराजय हुई।

रहीम खानखाना बहादुर के साथ दरबार में लौट आए। बहादुर को ग्वालियर के किले में जीवन भर के लिए कैद कर दिया गया। खानखाना ने अपनी पुत्री का विवाह दानियाल से कर दिया। अप्रैल, 1601 में खानखाना अहमदनगर किले को दुरुस्त करने तथा शाह अली (जिसे मलिक अम्बर और राजू दक्षिणी ने निजाम शाह बनाकर गद्दी पर बैठाया था) को दबाव रखने के लिए जब वहाँ पर पहुँचे तो मुगलों के आपसी वैमनस्य एवं दक्षिणियों की एकता से परिस्थिति बदली हुई थी।

दामाद दानियाल की मृत्यु

हब्शी मलिक अम्बर अपनी प्रतिभा, साहस और वीरता से सरदार बन चुका था। उसकी प्रतिष्ठा भी अधिक थी। उसी प्रकार राजू दक्षिणी भी प्रभावशाली था। रहीम खानखाना के नेतृत्व में मलिक अम्बर को दो बार 16 मई, 1601 को मजेरा में अब्दुल रहमान ने और 1602 में नान्देर में खानखाना के पुत्र इरीज ने हराया। इससे खानखाना की प्रतिष्ठा बढ़ गई। इसी बीच दामाद शहजादा दानियाल की सन् 1604 में मृत्यु हो गई। रहीम बिटिया जाना बेगम से बहुत प्यार करते थे। उसने विधवा का जीवन व्यतीत किया जो रहीम के लिए बहुत ही हृदय विदारक था। रहीम इस दु:ख से उबर नहीं पाए थे कि उनके संरक्षक महान् सम्राट अकबर सन् 1605 में परलोक सिधार गए।

जहाँगीर से भेंट

अकबर की मृत्यु के बाद रहीम बादशाह जहाँगीर से मिलने के लिए चिट्ठियाँ लिखते रहे। अन्ततः उन्हें दरबार में उपस्थित होने की अनुमति मिल गई। सन् 1608 में खानखाना बहुमूल्य उपहारों के साथ दरबार में अत्यन्त उल्लास के साथ उपस्थित हुए। वह उस समय बहुत ही भावुक हो उठे थे। उन्हें यह भी भान न रहा कि वे सिर के बल चल कर आए हैं या पैर से। वि]वलता से उन्होंने अपने को बादशाह जहाँगीर के पैरों में डाल दिया, लेकिन जहाँगीर ने दयालुता से उन्हें उठाकर अपनी छाती से लगा लिया। फिर उनका मुख चूमा।

खानखाना ने जहाँगीर को मोतियों के दो हार, कई हीरे एवं माणिक भेंट किए, जिनका मूल्य तीन लाख रुपये था। इसके अतिरिक्त कई अन्य वस्तुएँ भी भेंट कीं। बादशाह जहाँगीर ने विशिष्ट घोड़े और 20 हाथी प्रदान करके उन्हें सम्मानित किया। खानखाना तीन महीने तीन दिन दरबार में रहकर दो वर्ष में

दक्षिण विजय का आश्वासन देकर यथेष्ट सहायता लेकर दक्षिण की ओर चले गए। खानखाना घनघोर बरसात में शहजादा खुर्रम के साथ बुरहानपुर से बालाघाट की ओर बढ़ चले। परन्तु मुगल सरदारों के बीच असहमति के कारण उनकी युद्धनीति असफल हो गई। मलिक अम्बर ने सामने युद्ध न करके छापामार लड़ाई लड़ी। मुगल सेना की रसद सामग्री समाप्त होने लगी। हाथी–घोड़े मरने लगे। खानखाना के मित्र भी उनके शत्रु हो गए। फलतः उन्हें मलिक अम्बर से जहाँगीर की प्रतिष्ठा के अनुकूल सन्धि करनी पड़ी।

इन सबसे बादशाह जहाँगीर बहुत ही नाराज हुआ। उसने खान–ए–जहाँ लोदी को रहीम का उत्तराधिकारी बनाकर भेजा। साथ ही साथ उनके पुराने शत्रु महावत खाँ को पराजित सेनापति को दरबार में लाने का काम सौंपा। महावत खाँ के साथ जब खानखाना लौटे तो उन्हें आगरा शहर में प्रवेश नहीं करने दिया गया। जब बादशाह मिला भी तो उसने रहीम की ओर ध्यान नहीं दिया। रहीम के पुत्रों–इरीज और दाराब को साम्राज्य की प्रशंसनीय सेवाओं के लिए उपाधियों एवं पारितोषकों से सम्मानित किया गया। दाराब को जागीर के रूप में गाजीपुर प्रदान किया गया। इस विपत्ति में खानखाना के मित्रों ने उनका साथ छोड़ दिया। काफी समय वे चिन्तित अवस्था में दरबार में ही रहे। फिर कुछ दिनों के बाद आगरा प्रान्त में कालपी और कन्नौज की जागीर देकर वहाँ के उपद्रवों को शान्त करने के लिए भेजा गया। सन् 1610 से 1612 तक खानखाना कालपी में ही रहे।

दक्षिण में रहीम की स्थिति को समझते हुए जहाँगीर ने शहजादा खुर्रम की शादी रहीम की नतिनी और शाहनवाज खाँ की लड़की से 23 अगस्त, 1617 को करवा दी। खानखाना से वैवाहिक सम्बन्धों, बादशाह की निकट ही उपस्थिति और शहजादे का विशाल सेना के साथ मुहाने पर होना आदि स्थितियों ने दक्षिण के शासकों को समझौते के लिए विवश कर दिया। आदिल शाह ने 15 लाख रुपए मूल्य के सामान और नकदी के साथ हाथी आदि उपहार में भेजकर अधीनता स्वीकार कर ली। फिर इतना ही सामान और नकदी कुतुब मलिक ने भी भेजकर अधीनता स्वीकार कर ली। अब मलिक अम्बर के पास कोई चारा न था। अन्ततः उसे भी अधीनता स्वीकार करनी पड़ी।

साहित्यिक परिचय

भक्तिकाल हिन्दी साहित्य में रहीम का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने अरबी, फारसी, संस्कृत, हिन्दी आदि का गहन अध्ययन किया। वे राजदरबार में अनेक

पदों पर कार्य करते हुए भी साहित्य सेवा में लगे रहे। रहीम का व्यक्तित्त्व बहुत प्रभावशाली था। वे स्मरण शक्ति, हाजिर-जवाबी, काव्य और संगीत के मर्मज्ञ थे। वे युद्धवीर के साथ-साथ दानवीर भी थे। अकबर के दरबारी कवि गंग के दो छन्दों पर रीझकर इन्होंने 36 लाख रुपये दे दिए थे। रहीम ने अपनी कविताओं में अपने लिए 'रहीम' के बजाए 'रहिमन' का प्रयोग किया है। वे इतिहास और काव्य जगत में अब्दुल रहीम खानखाना के नाम से प्रसिद्ध हैं। रहीम मुसलमान होते हुए भी कृष्ण भक्त थे। उनके काव्य में नीति, भक्ति-प्रेम तथा श्रृंगार आदि के दोहों का समावेश है। साथ ही जीवन में आए विभिन्न मोड़ भी परिलक्षित होते हैं।

रहीम की भाषा

रहीम ने अपने अनुभवों को सरल और सहज शैली में मार्मिक अभिव्यक्ति प्रदान की। उन्होंने ब्रज भाषा, पूर्वी अवधी और खड़ी बोली को अपनी काव्य भाषा बनाया। किन्तु ब्रज भाषा उनकी मुख्य शैली थी। गहरी से गहरी बात भी उन्होंने बड़ी सरलता से सीधी-सादी भाषा में कह दी। भाषा को सरल, सरस और मधुर बनाने के लिए तद्भव शब्दों का अधिक प्रयोग किया।

रहीम अरबी, तुर्की, फारसी, संस्कृत और हिन्दी के अच्छे जानकार थे। हिन्दू-संस्कृति से ये भली-भाँति परिचित थे। इनकी नीतिपरक उक्तियों पर संस्कृत कवियों की स्पष्ट छाप परिलक्षित होती है।

कुल मिलाकर इनकी 11 रचनाएँ प्रसिद्ध हैं। इनके प्रायः 300 दोहे 'दोहावली' नाम से संग्रहीत हैं। मायाशंकर याज्ञिक का अनुमान था कि इन्होंने सतसई लिखी होगी किन्तु वह अभी तक प्राप्त नहीं हो सकी है। दोहों में ही रचित इनकी एक स्वतन्त्र कृति 'नगर शोभा' है। इसमें 142 दोहे हैं। इसमें विभिन्न जातियों की स्त्रियों का श्रृंगारिक वर्णन है।

रहीम अपने बरवै छन्द के लिए प्रसिद्ध हैं। इनका 'बरवै नायिका भेद' अवधी भाषा में नायिका-भेद का सर्वोत्तम ग्रन्थ है। इसमें भिन्न-भिन्न नायिकाओं के केवल उदाहरण दिये गये हैं। मायाशंकर याज्ञिक ने काशीराज पुस्तकालय और कृष्णबिहारी मिश्र पुस्तकालय की हस्त लिखित प्रतियों के आधार पर इसका सम्पादन किया है। रहीम ने बरवै छन्दों में गोपी-विरह वर्णन भी किया है।

मेवात से इनकी एक रचना 'बरवै' नाम की इसी विषय पर रचित प्राप्त हुई है। यह एक स्वतन्त्र कृति है और इसमें 101 बरवै छन्द हैं। रहीम के श्रृंगार

रस के 6 सोरठे प्राप्त हुए हैं। इनके' श्रृंगार सोरठ' ग्रन्थ का उल्लेख मिलता है, किन्तु अभी यह प्राप्त नहीं हो सका है।

रहीम की एक कृति संस्कृत और हिन्दी खड़ी बोली की मिश्रित शैली में रचित 'मदनाष्टक' नाम से मिलती है। इसका वर्ण्य-विषय कृष्ण की रासलीला है और इसमें मालिनी छन्द का प्रयोग किया गया है। इसके कई पाठ प्रकाशित हुए हैं। 'सम्मेलन पत्रिका' में प्रकाशित पाठ अधिक प्रमाणिक माना जाता है। इनके कुछ भक्ति विषयक स्फुट संस्कृत श्लोक 'रहीम काव्य' या 'संस्कृत काव्य' नाम से प्रसिद्ध हैं। कवि ने संस्कृत श्लोकों का भाव छप्पय और दोहा में भी अनूदित कर दिया है। कुछ श्लोकों में संस्कृत के साथ हिन्दी भाषा का प्रयोग हुआ है। रहीम बहुज्ञ थे। इन्हें ज्योतिष का भी ज्ञान था। इनका संस्कृत, फारसी और हिन्दी मिश्रित भाषा में 'खेट कौतुक जातकम्' नामक एक ज्योतिष ग्रन्थ भी मिलता है, किन्तु यह रचना प्राप्त नहीं हो सकी है। 'भक्तमाल' में इस विषय के इनके दो पद उद्धृत हैं। विद्वानों का अनुमान है कि ये पद 'रासपंचाध्यायी' के अंश हो सकते हैं।

रहीम ने 'वाकेआत बाबरी' नाम से बाबर लिखित आत्मचरित का तुर्की से फारसी में भी अनुवाद किया था। इनका एक 'फारसी दीवान' भी मिलता है।

रहीम के काव्य का मुख्य विषय श्रृंगार, नीति और भक्ति है। इनकी विष्णु और गंगा सम्बन्धी भक्ति-भावमयी रचनाएँ वैष्णव-भक्ति आन्दोलन से प्रभावित होकर लिखी गयी हैं। नीति और श्रृंगारपरक रचनाएँ दरबारी वातावरण के अनुकूल हैं। रहीम की ख्याति इन्हीं रचनाओं के कारण है। बिहारी लाल और मतिराम जैसे समर्थ कवियों ने रहीम की श्रृंगारिक उक्तियों से प्रभाव ग्रहण किया है। व्यास, वृन्द और रसनिधि आदि कवियों के नीति विषयक दोहे रहीम से प्रभावित होकर लिखे गये हैं। रहीम का ब्रजभाषा और अवधी दोनों पर समान अधिकार था। उनके बरवै अत्यन्त मोहक प्रसिद्ध है कि तुलसीदास को 'बरवै रामायण' लिखने की प्रेरणा रहीम से ही मिली थी। 'बरवै' के अतिरिक्त इन्होंने दोहा, सोरठा, कवित्त, सवैया, मालिनी आदि कई छन्दों का प्रयोग किया है।

रचनाएँ

खान ए खाना मकबरा, दिल्ली

रहीम अनेक भाषाओं के ज्ञाता थे। उन्होंने तुर्की भाषा के एक ग्रन्थ 'वाकयात बाबरी' का फारसी में अनुवाद किया। फारसी में अनेक कविताएँ

लिखीं। 'खेट कौतूक जातकम्' नामक ज्योतिष ग्रन्थ लिखा, जिसमें फारसी और संस्कृत शब्दों का अनूठा मेल था। इनका काव्य इनके सहज उद्‌गारों की अभिव्यक्ति है। इन उद्‌गारों में इनका दीर्घकालीन अनुभव निहित है। ये सच्चे और संवेदनशील हृदय के व्यक्ति थे। जीवन में आने वाली कटु-मधुर परिस्थितियों ने इनके हृदय-पट पर जो बहुविध अनुभूति रेखाएँ अंकित कर दी थीं, उन्हीं के अकृत्रिम अंकन में इनके काव्य की रमणीयता का रहस्य निहित है। इनके 'बरवै नायिका भेद' में काव्य रीति का पालन ही नहीं हुआ है, वरन् उसके माध्यम से भारतीय गार्हस्थ्य-जीवन के लुभावने चित्र भी सामने आये हैं। मार्मिक होने के कारण ही इनकी उक्तियाँ सर्वसाधारण में विशेष रूप से प्रचलित हैं। रहीम-काव्य के कई संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इनमें-

रहीम रत्नावली (सं. मायाशंकर याज्ञिक-1928 ई.) और

रहीम विलास (सं. ब्रजरत्नदास-1948 ई., द्वितीयावृत्ति) प्रामाणिक और विश्वसनीय हैं। इनके अतिरिक्त

रहिमन विनोद (हि. सा. सम्मे.),
रहीम कवितावली (सुरेन्द्रनाथ तिवारी),
रहीम (रामनरेश त्रिपाठी),
रहिमन चंद्रिका (रामनाथ सुमन),

रहिमन शतक (लाला भगवानदीन) आदि संग्रह भी उपयोगी हैं।

रहीम के दोहे

रहिमन धागा प्रेम का मत तोड़ों छिटकाय।
टूटे तो फिर ना मिले मिले गांठ पड़ जाए॥
रहिमन दानि दरिद्रतर, तऊ जांचिबे योग।
ज्यों सरितन सूख परे, कुआं खनावत लोग॥

कविवर रहीम कहते हैं कि यदि कोई दानी मनुष्य दरिद्र भी हो तो भी उससे याचना करना बुरा नहीं है क्योंकि वह तब भी उनके पास कुछ न कुछ रहता ही है। जैसे नदी सूख जाती है तो लोग उसके अंदर कुएं खोदकर उसमें से पानी निकालते हैं।

रहिमन देखि बड़ेन को, लघु न दीजिए डारि।
जहां काम आवै सुई, कहा करै तलवारि॥

कविवर रहीम के अनुसार बड़े लोगों की संगत में छोटों की उपेक्षा नहीं करना चाहिए क्योंकि विपत्ति के समय उनकी भी सहायता की आवश्यकता पड़ सकती है। जिस तरह तलवार के होने पर सुई की उपेक्षा नहीं करना चाहिए क्योंकि जहां वह काम कर सकती है तलवार वहां लाचार होती है।

एकै साधे सब सधैं, सब साधे सब जाय।
रहिमन मूलहि सींचिबो, फूलै फलै अघाय।।
कह रहीम कैसे निभे, बेर केर का संग।
यै डोलत रस आपने, उनके फाटत अंग।।
खीरा सिर ते काटिए, मलियत लौन लगाय।
रहिमन करुए मुखन को, चहियत इहै सजाय।।
छिमा बड़ेन को चाहिए, छोटन को उत्पात।
का रहीम हरि को घटयौ, जो भृगु मारी लात।।

रहीम एक सहृदय स्वाभिमानी, उदार, विनम्र, दानशील, विवेकी, वीर और व्युत्पन्न व्यक्ति थे। ये गुणियों का आदर करते थे। इनकी दानशीलता की अनेक कथाएं प्रचलित हैं। इनके व्यक्तित्त्व से अकबरी दरबार गौरवान्वित हुआ था और इनके काव्य से हिन्दी समृद्ध हुई है।

विशेष बिंदु

जब ये कुल 5 वर्ष के ही थे, गुजरात के पाटन नगर में (1561 ई.) इनके पिता की हत्या कर दी गयी। इनका पालन-पोषण स्वयं अकबर की देख-रेख में हुआ।

इनकी कार्यक्षमता से प्रभावित होकर अकबर ने 1572 ई. में गुजरात की चढ़ाई के अवसर पर इन्हें पाटन की जागीर प्रदान की। अकबर के शासनकाल में उनकी निरन्तर पदोन्नति होती रही।

1576 ई. में गुजरात विजय के बाद इन्हें गुजरात की सूबेदारी मिली।

1579 ई. में इन्हें 'मीर अर्जु' का पद प्रदान किया गया।

1583 ई. में इन्होंने बड़ी योग्यता से गुजरात के उपद्रव का दमन किया।

प्रसन्न होकर अकबर ने 1584 ई. में इन्हें 'खानखाना' की उपाधि और पंचहजारी का मनसब प्रदान किया।

1589 ई. में इन्हें 'वकील' की पदवी से सम्मानित किया गया।

1604 ई. में शहजादा दानियाल की मृत्यु और अबुलफजल की हत्या के बाद इन्हें दक्षिण का पूरा अधिकार मिल गया। जहाँगीर के शासन के प्रारम्भिक दिनों में इन्हें पूर्ववत सम्मान मिलता रहा।

1623 ई. में शाहजहाँ के विद्रोही होने पर इन्होंने जहाँगीर के विरुद्ध उनका साथ दिया।

1625 ई. में इन्होंने क्षमा याचना कर ली और पुनः 'खानखाना' की उपाधि मिली।

1626 ई. में 70 वर्ष की अवस्था में इनकी मृत्यु हो गयी।

खान ए खाना मकबरा

खान ए खाना के नाम से प्रसिद्ध यह मकबरा अब्दुर्रहीम खानखाना का है, जो मुगल बादशाह अकबर एवं जहाँगीर के शासनकाल के प्रतिभाशाली एवं प्रसिद्ध दरबारी थे।

खान ए खाना मकबरे का निर्माण अब्दुर्रहीम खानखाना के द्वारा अपनी बेगम की याद में करवाया गया था, जिनकी मृत्यु 1598 ई. में हो गयी थी। बाद में स्वयं अब्दुर रहीम को 1627 ई. में उनके मृत्यु के पश्चात् इसी मकबरे में दफनाया गया।

अकबर के दरबार में

हुमायूँ ने युवराज अकबर की शिक्षा-दीक्षा के लिए बैरम खाँ को चुना और अपने जीवन के अंतिम दिनों में राज्य का प्रबंध की जिम्मेदारी देकर अकबर का अभिभावक नियुक्त किया था। बैरम खाँ ने कुशल नीति से अकबर के राज्य को मजबूत बनाने में पूरा सहयोग दिया। किसी कारणवश बैरम खाँ और अकबर के बीच मतभेद हो गया। अकबर ने बैरम खाँ के विद्रोह को सफलतापूर्वक दबा दिया और अपने उस्ताद की मान एवं लाज रखते हुए उसे हज पर जाने की इच्छा जताई। परिणामस्वरूप बैरम खाँ हज के लिए रवाना हो गये। बैरम खाँ हज के लिए जाते हुए गुजरात के पाटन में ठहरे और पाटन के प्रसिद्ध सहस्रलिंग सरोवर में नौका-विहार के बाद तट पर बैठे थे कि भेंट करने की नियत से एक अफगान सरदार मुबारक खाँ आया और धोखे से बैरम खाँ की हत्या कर दी। यह मुबारक खाँ ने अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिए किया।

इस घटना ने बैरम खाँ के परिवार को अनाथ बना दिया। इन धोखेबाजों ने सिर्फ कत्ल ही नहीं किया, बल्कि काफी लूटपाट भी मचाया। विधवा सुल्ताना बेगम अपने कुछ सेवकों सहित बचकर अहमदाबाद आ गई। अकबर को घटना के बारे में जैसे ही मालूम हुआ, उन्होंने सुल्ताना बेगम को दरबार वापस आने का संदेश भेज दिया। रास्ते में संदेश पाकर बेगम अकबर के दरबार में आ गई। ऐसे समय में अकबर ने अपने महानता का सबूत देते हुए इनको बड़ी उदारता से शरण दिया और रहीम के लिए कहा "इसे सब प्रकार से प्रसन्न रखो। इसे यह पता न चले कि इनके पिता खान खानाँ का साया सर से उठ गया है। बाबा जम्बूर को कहा यह हमारा बेटा है। इसे हमारी दृष्टि के सामने रखा करो। इस प्रकार अकबर ने रहीम का पालन-पोषण एकदम धर्म-पुत्र की भांति किया। कुछ दिनों के पश्चात अकबर ने विधवा सुल्ताना बेगम से विवाह कर लिया। अकबर ने रहीम को शाही खानदान के अनुरूप "मिर्जा खाँ' की उपाधि से सम्मानित किया। रहीम की शिक्षा-दीक्षा अकबर की उदार धर्म-निरपेक्ष नीति के अनुकूल हुई। इसी शिक्षा-दीक्षा के कारण रहीम का काव्य आज भी हिंदूओं के गले का कण्ठहार बना हुआ है। दिनकर जी के कथनानुसार अकबर ने अपने दीन-इलाही में हिंदुत्व को जो स्थान दिया होगा, उससे कई गुणा ज्यादा स्थान रहीम ने अपनी कविताओं में दिया। रहीम के बारे में यह कहा जाता है कि वह धर्म से मुसलमान और संस्कृति से शुद्ध भारतीय थे।

विवाह

रहीम की शिक्षा समाप्त होने के पश्चात सम्राट अकबर ने अपने पिता हुमायूँ की परंपरा का निर्वाह करते हुए, रहीम का विवाह बैरम खाँ के विरोधी मिर्जा अजीज कोका की बहन माहबानो से करवा दिया। इस विवाह में भी अकबर ने वहीं किया, जो पहले करता रहा था कि विवाह के संबंधों के बदौलत आपसी तनाव व पुरानी से पुरानी कटुता को समाप्त कर दिया करता था। रहीम के विवाह से बैरम खाँ और मिर्जा के बीच चली आ रही पुरानी रंजिश खत्म हो गयी। रहीम का विवाह लगभग सोलह साल की उम्र में कर दिया गया था।

मीर अर्ज का पद

अकबर के दरबार को प्रमुख पदों में से एक मीर अर्ज का पद था। यह पद पाकर कोई भी व्यक्ति रातों रात अमीर हो जाता था, क्योंकि यह पद ऐसा

था, जिससे पहुँचकर ही जनता की फरियाद सम्राट तक पहुँचती थी और सम्राट के द्वारा लिए गए फैसले भी इसी पद के जरिये जनता तक पहुँचाए जाते थे। इस पद पर हर दो-तीन दिनों में नए लोगों को नियुक्त किया जाता था। सम्राट अकबर ने इस पद का काम-काज सुचारु रूप से चलाने के लिए अपने सच्चे तथा विश्वास पात्र अमीर रहीम को मुस्तकिल मीर अर्ज नियुक्त किया। यह निर्णय सुनकर सारा दरबार सन्न रह गया था। इस पद पर आसीन होने का मतलब था कि वह व्यक्ति जनता एवं सम्राट दोनों में सामान्य रूप से विश्वसनीय है।

रहीम शहजादा सलीम

काफी मिन्नतों तथा आशीर्वाद के बाद अकबर को शेख सलीम चिश्ती के आशीर्वाद से एक लड़का प्राप्त हो सका, जिसका नाम उन्होंने सलीम रखा। शहजादा सलीम माँ-बाप और दूसरे लोगों के अधिक दुलार के कारण शिक्षा के प्रति उदासीन हो गया था। कई महान लोगों को सलीम की शिक्षा के लिए अकबर ने लगवाया। इन महान लोगों में शेर अहमद, मीर कलाँ और दरबारी विद्वान अबुलफजल थे। सभी लोगों की कोशिशों के बावजूद शहजादा सलीम को पढ़ाई में मन न लगा। अकबर ने सदा की तरह अपना आखिरी हथियार रहीम खाने खाना को सलीम का अतालीक नियुक्त किया। कहा जाता है रहीम यह गौरव पाकर बहुत प्रसन्न थे। अकबर रहीम को अपने पुत्र के समान समझतें थे।

भाषा शैली

रहीम ने अवधी और ब्रजभाषा दोनों में ही कविता की है, जो सरल, स्वाभाविक और प्रवाहपूर्ण है।

यह रहीम निज संग लै, जनमत जगत न कोय।
बैर प्रीति अभ्यास जस, होत होत ही होय॥

उनके काव्य में श्रृंगार, शांत तथा हास्य रस मिलते हैं। दोहा, सोरठा, बरवै, कवित्त और सवैया उनके प्रिय छंद हैं। रहीम दास जी की भाषा अत्यंत सरल है, आपके काव्य में भक्ति, नीति, प्रेम और श्रृंगार का सुन्दर समावेश मिलता है। आपने सोरठा एवं छंदों का प्रयोग करते हुए अपनी काव्य रचनाओं को किया है। आपने ब्रजभाषा में अपनी काव्य रचनाएं की हैं। आपके ब्रज का रूप अत्यंत व्यावहारिक, स्पष्ट एवं सरल है। आपने तद्भव शब्दों का अधिक प्रयोग किया है। ब्रज भाषा के अतिरिक्त आपने कई अन्य भाषाओं का प्रयोग अपनी काव्य

रचनाओं में किया है। अवधी के ग्रामीण शब्दों का प्रयोग भी रहीम जी ने अपनी रचनाओं में किया है, आपकी अधिकतर काव्य रचनाएं मुक्तक शैली में की गई हैं, जोकि अत्यंत ही सरल एवं बोधगम्य–

रहीम के दोहे-

दोहा – दुःख में सुमिरन सब करें, सुख में करें न कोय।
जो सुख में सुमिरन करें, तो दुःख काहे होय।

भावार्थ – संकट में हर कोई प्रभु को याद करता है खुशी में कोई नहीं, अगर आप खुशी में भी याद करते तो संताप होता ही नही।

दोहा – जो बड़ेन को लघु कहें, नहीं रहीम घटी जाहिं।
गिरधर मुरलीधर कहें, कछु दुःख मानत नाहिं।

भावार्थ – रहीम दास कहते हैं कि बड़े को छोटा कहने से बड़े की भव्यता कम नहीं होती, क्योंकि गिरधर को कन्हैया कहने से उनके गौरव में कमी नहीं होती।

दोहा – रहिमन देखि बड़ेन को, लघु न दीजिए डारि।
जहां काम आवे सुई, कहा करें तरवारि।

भावार्थ – रहीम दास कहते हैं कि बड़ी चीजों को देखते हुए, छोटी चीजों को फेंक देना नहीं चाहिए, क्योंकि जहां छोटी सुई का इस्तेमाल किया जाता है, वहां बड़ी कृपाण क्या कर सकती है? मतलब हर चीज का अपना एक अनोखा मोल, उपयोग होता है। कोई भी चीज न बड़ी होती है और न ही छोटी होती है।

दोहा – रहिमन धागा प्रेम का, मत तोड़ो चटकाय।
टूटे पे फिर ना जुड़े, जुड़े गांठ परी जाय।

भावार्थ – रहीम दास ने कहा है कि प्रेम का संबंध बहुत नाजुक होता है, इसे झटका देकर तोड़ना उचित नहीं होता। यदि यह धागा एक बार टूट जाता है, तो इसे जोड़ना मुश्किल होता है, और अगर यह जुड़ भी जाता है तो बीच में गांठ बन जाती है। ठीक वैसे ही आपसी संबंध टूट जाने पर जुड़ते नहीं और जुड़ते है तो भी मन में एक दरार सी हो जाती है।

दोहा – रूठे सुजन मनाइए, जो रूठे सौ बार।
रहिमन फिरि–फिरि पोइए, टूटे मुक्ताहार।

भावार्थ – यदि हार टूट जाये तो उन हीरों को धागे में पीरो लेना चाहिये, वैसे ही यदि आपके प्रियजन आपसे सौ बार भी रूठें तो उन्हें मना लेना चाहिये।

दोहा – दोनों रहिमन एक से, जों लों बोलत नाहिं।
जान परत हैं काक पिक, रितु बसंत के माहिं।

भावार्थ – रहीम दास का कहना है कि काग और कोयल समान रूप से काले रंग के होते हैं। जब तक उनकी आवाज नहीं सुनाई देती तब तक उनकी पहचान नहीं होती है, लेकिन जब बसंत ऋतु आ जाती है, तो दोनों के बीच का अंतर कोयल की मीठी सुरीली आवाज से प्रकट हो जाता है।

दोहा – बानी ऐसी बोलिये, मन का आपा खोय।
औरन को सीतल करै, आपहु सीतल होय।

भावार्थ – अपने भीतर के दंभ को दूर करके ऐसी मीठी बातें करनी चाहिए जिसे श्रवण कर के खुद को और दूसरों को शांति और खुशी हो।

दोहा – जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करी सकत कुसंग।
चन्दन विष व्यापत नहीं, लिपटे रहत भुजंग।

भावार्थ – रहीम दास ने कहा है कि जो लोग अपनी प्रकृति में अच्छे हैं वे खराब संगती में भी खराब नहीं हो सकते हैं, जैसे विषैले सर्प सुगंधित चंदन के वृक्षों को लिपटे रहते हैं फिर भी चंदन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता ठीक वैसे ही।

दोहा – समय पाय फल होत है, समय पाय झरी जात।
सदा रहे नहिं एक सी, का रहीम पछितात।

भावार्थ – रहीम दास कहते हैं कि कोई भी स्थिति हमेशा एक जैसी नहीं रहती है, जैसा कि जब वसंत आती है तो पेड़ पर फल लगते हैं और जब शरद आती है तो सब गिर जाता है इसलिए विकट स्थिति में पछताना व्यर्थ है।

दोहा – वे रहीम नर धन्य हैं, पर उपकारी अंग।
बांटन वारे को लगे, ज्यों मेंहदी को रंग।

भावार्थ – रहीम कहते हैं कि धन्य है वो लोग जिनका जीवन सदा परोपकार के लिए बीतता है, जिस तरह फूल बेचने वाले के हाथों में खुशबू रह जाती है ठीक वैसे ही इन परोपकारियों का जीवन भी खुश्बू से महकता रहता है।

दोहा – खीरा सिर ते काटि के, मलियत लौंन लगाय।
रहिमन करुए मुखन को, चाहिए यहीं सजाय।

भावार्थ – रहिम दास जी कहते हैं कि खीरे के कड़वाहट को दूर करने के लिए, इसके ऊपरी छोर को काटने के बाद उस पर लोन (नमक) लगाया जाता है। यह सजा उन लोगों के लिए सही है, जो कड़वा शब्द कहते हैं।

दोहा – रहिमन अंसुवा नयन ढरि, जिय दुःख प्रगट करेंइ।

जाहि निकारौ गेह ते, कस न भेद कहि देइ।

भावार्थ – आँसू आँख से बाहर निकलते हैं और दिमाग की पीड़ा प्रकट करते हैं, रहीम दास कहते है कि ठीक वैसे ही घर से निकाला गया ही घर के भेद खोलेगा।

दोहा – रहिमन निज मन की बिथा, मन ही राखो गोय।

सुनी इठलैहैं लोग सब, बांटी न लेंहैं कोय।

भावार्थ – रहीम दास कहते हैं कि आपके मन की उदासी को अपने मन के भीतर ही छुपाये रखें, क्योंकि दूसरों की उदासी को सुनने के बाद लोग इठला भले ही लेते हैं, लेकिन उसे बाँट कर कम करने वाले बहुत कम लोग होते हैं।

दोहा – तरुवर फल नहीँ खात हैं, सरवर पियहि न पान।

कहीं रहीम पर काज हित, संपति संचही सुजान।

भावार्थ – पेड़ अपने फल-फूल स्वयं नहीं खाते हैं, और नदियाँ भी अपना जल स्वयं नहीं पीती हैं। उसी प्रकार सज्जन लोग वे हैं, जो दूसरों की सेवा के लिए, दान के काम के लिए अपने धन दौलत को खर्च करते हैं।

दोहा – जे गरिब सों हित करें, ते रहीम बड़ लोग।

कहा सुदामा बापुरो, कृष्ण मिताई जोग।

भावार्थ – जो लोग गरीब के हित में हैं, बड़े महान लोग हैं। जैसे सुदामा कहते हैं कि कान्हा की मैत्री भी एक भक्ति है।

दोहा – रहिमन विपदा हू भली, जो थोरे दिन होय।

हित अनहित या जगत में, जान परत सब कोय।

भावार्थ – रहीम कहते हैं कि संघर्ष जरूरी है क्योंकि इस समय के दौरान ही यह ज्ञात होता है कि हमारे हित में कौन है और अहित में कौन है।

दोहा – बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर।

पंथी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर।

भावार्थ – बड़ा होना इसका मतलब यह नहीं है कि किसी के लिए अच्छा है। जैसे खजूर के पेड़ की तरह, वो बहुत बड़ा है, लेकिन इसके फल इतनी दूर हैं कि इसे तोड़ना मुश्किल है और काफिर को छाँव के काम भी नहीं आता।

दोहा – रहिमन चुप हो बैठिये, देखि दिनन के फेर।
जब नीके दिन आइहैं, बनत न लगिहैं देर।

भावार्थ – रहीम दास कहते है कि जब खराब समय चल रहा हो तो मौन रहना ही ठीक, क्योंकि जब अच्छा समय आता हैं तब काम बनते विलंब नहीं होता इसलिए हमेशा अपने सही समय का सब्र करें।

दोहा – मन मोटी अरु दूध रस, इनकी सहज सुभाय।
फट जाये तो न मिले, कोटिन करो उपाय।

भावार्थ – रस, फूल, दूध, मन और मोती जब तक स्वाभाविक सामान्य रूप में है तब तक अच्छे लगते हैं, लेकिन यह एकबार टूट–फट जाए तो कितनी भी युक्तियां कर लो वो फिर से अपने स्वाभाविक और सामान्य रूप में नहीं आते।

दोहा – बिगड़ी बात बने नहीं, लाख करो किन कोय।
रहिमन फाटे दूध को, मथे न माखन होय।

भावार्थ – रहीम दास कहते हैं कि मनुष्य को बुद्धिमानी से व्यवहार करना चाहिए, क्योंकि अगर किसी कारण से कुछ गलत हो जाता है, तो इसे सही करना मुश्किल होता है, क्योंकि एक बार दूध खराब हो जाये, तो हजार कोशिश कर ले उसमें से न तो मक्खन बनता है और न ही दूध।

दोहा – जैसी परे सो सहि रहे, कहि रहीम यह देह।
धरती ही पर परत है, सीत घाम औ मेह।

भावार्थ – रहीम दास कहते हैं कि जैसे इस धरती पर सर्दी, गर्मी और बारिश गिरती है और जैसे यह सब पृथ्वी सहन करती है, उसी तरह मनुष्य के शरीर को भी सुख और दुख उठाना और सहना सीखना चाहिए।

दोहा – ओछे को सतसंग रहिमन तजहु अंगार ज्यों।
तातो जारै अंग सीरै पै कारौ लगै।

भावार्थ – नीच लोगों का साथ छोड़ देना चाहिए क्योंकि उनसे हर स्तर पर, हमें क्षति ही होती है। जैसे जब कोयला गर्म होता है तब तक शरीर को जलाता है और जब ठंडा हो जाता है, तो शरीर को काला करता है।

दोहा – रहिमन मनहि लगाई कै, देख लेहूँ किन कोय।

नर को बस करिबो कहा, नारायण बस होय।

भावार्थ – रहिम दास कहते हैं कि यदि आप अपने मन को एक स्थान पर रखकर काम करेंगे, तो आप अवश्य ही सफलता प्राप्त कर लेंगे, अगर मनुष्य एक मन से ईश्वर को चाहे तो वह ईश्वर को भी अपने वश में कर सकता है।

9

मीरा बाई

मीराबाई (1498–1546) सोलहवीं शताब्दी की एक कृष्ण भक्त और कवयित्री थीं। उनकी कविता कृष्ण भक्ति के रंग में रंग कर और गहरी हो जाती है। मीरा बाई ने कृष्ण भक्ति के स्फुट पदों की रचना की है। मीरा कृष्ण की भक्त हैं।

जीवन परिचय

मीराबाई का मंदिर, चित्तौड़गढ़ (1990)

मीराबाई का जन्म सन् 1498 ई. में मेड़ता (कुड़की) में दूदा जी के चौथे पुत्र रतन सिंह के घर हुआ। ये बचपन से ही कृष्णभक्ति में रुचि लेने लगी थीं। मीरा का विवाह मेवाड़ के सिसोदिया राज परिवार में हुआ। उदयपुर के महाराजा भोजराज इनके पति थे जो मेवाड़ के महाराणा सांगा के पुत्र थे। विवाह के कुछ समय बाद ही उनके पति का देहान्त हो गया। पति की मृत्यु के बाद उन्हें पति के साथ सती करने का प्रयास किया गया, किन्तु मीरा इसके लिए तैयार नहीं हुई। मीरा के पति का अंतिम संस्कार चित्तौड़ में मीरा की अनुपस्थिति में हुआ।

वे विरक्त हो गयीं और साधु-संतों की संगति में हरिकीर्तन करते हुए अपना समय व्यतीत करने लगीं। पति के परलोकवास के बाद इनकी भक्ति दिन-प्रतिदिन बढ़ती गई। ये मंदिरों में जाकर वहाँ मौजूद कृष्णभक्तों के सामने कृष्णजी की मूर्ति के आगे नाचती रहती थीं। मीराबाई का कृष्णभक्ति में नाचना और गाना राज परिवार

को अच्छा नहीं लगा। उन्होंने कई बार मीराबाई को विष देकर मारने की कोशिश की। घर वालों के इस प्रकार के व्यवहार से परेशान होकर वह द्वारका और वृन्दावन गईं। वह जहाँ जाती थीं, वहाँ लोगों का सम्मान मिलता था। लोग उन्हें देवी के जैसा प्यार और सम्मान देते थे। मीरा का समय बहुत बड़ी राजनैतिक उथल-पुथल का समय रहा है। बाबर का हिंदुस्तान पर हमला और प्रसिद्ध खानवा का युद्ध उसी समय हुआ था। इस सभी परिस्तिथियों के बीच मीरा का रहस्यवाद और भक्ति की निर्गुण मिश्रित सगुण पद्धत्ति सर्वमान्य बनी।

मीराबाई का कृष्णभक्ति में नाचना और गाना राज परिवार को अच्छा नहीं लगा। उन्होंने कई बार मीराबाई को विष देकर मारने की कोशिश की। घर वालों के इस प्रकार के व्यवहार से परेशान होकर वह द्वारका और वृंदावन गईं। वह जहाँ जाती थीं, वहाँ लोगों का सम्मान मिलता था। लोग आपको देवियों के जैसा प्यार और सम्मान देते थे। इसी दौरान उन्होंने तुलसीदास को पत्र लिखा था–

स्वस्ति श्री तुलसी कुलभूषण दूषन-हरन गोसाई।
बारहिं बार प्रनाम करहूँ अब हरहूँ सोक-समुदाई।।
घर के स्वजन हमारे जेते सबन्ह उपाधि बढ़ाई।
साधु-सग अरु भजन करत माहिं देत कलेस महाई।।
मेरे माता-पिता के समहौ, हरिभक्तन्ह सुखदाई।
हमको कहा उचित करिबो है, सो लिखिए समझाई।।

मीराबाई के पत्र का जबाव तुलसी दास ने इस प्रकार दिया–

जाके प्रिय न राम बैदेही।
सो नर तजिए कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेहा।।
नाते सबै राम के मनियत सुह्मद सुसंख्य जहाँ लौ।
अंजन कहा आँखि जो फूटे, बहुतक कहो कहां लौ।।

मीरा द्वारा रचित ग्रंथ

मीराबाई ने चार ग्रंथों की रचना की–

(i) बरसी का मायरा
(ii) गीत गोविंद टीका
(iii) राग गोविंद
(iv) राग सोरठ के पद

इसके अलावा मीराबाई के गीतों का संकलन "मीराबाई की पदावली' नामक ग्रन्थ में किया गया है।

मीराबाई की भक्ति

मीरा की भक्ति में माधुर्य-भाव काफी हद तक पाया जाता था। वह अपने इष्टदेव कृष्ण की भावना प्रियतम या पति के रूप में करती थीं। उनका मानना था कि इस संसार में कृष्ण के अलावा कोई पुरुष है ही नहीं। कृष्ण के रूप की दीवानी थी–

बसो मेरे नैनन में नंदलाल।
मोहनी मूरति, साँवरि, सुरति नैना बने विसाल।।
अधर सुधारस मुरली बाजति, उर बैजंती माल।
क्षुद्र घंटिका कटि-तट सोभित, नूपुर शब्द रसाल।
मीरा प्रभु संतन सुखदाई, भक्त बछल गोपाल।।

मीराबाई रैदास को अपना गुरू मानते हुए कहती हैं –

गुरू मिलिया रैदास दीन्ही ज्ञान की गुटकी।

इन्होंने अपने बहुत से पदों की रचना राजस्थानी मिश्रित भाषा में ही है। इसके अलावा कुछ विशुद्ध साहित्यिक ब्रजभाषा में भी लिखा है। इन्होंने जन्मजात कवियित्री न होने के बावजूद भक्ति की भावना में कवियित्री के रूप में प्रसिद्धि प्रदान की। मीरा के विरह गीतों में समकालीन कवियों की अपेक्षा अधिक स्वाभाविकता पाई जाती है। इन्होंने अपने पदों में श्रृंगार और शांत रस का प्रयोग विशेष रूप से किया है।

इनके एक पद-

मन रे पासि हरि के चरन।
सुभग सीतल कमल-कोमल त्रिविध-ज्वाला-हरन।
जो चरन प्रह्मलाद परसे इंद्र-पद्वी-हान।।
जिन चरन ध्रुव अटल कींन्हों राखि अपनी सरन।
जिन चरन ब्राह्मांड मेंथ्यों नखसिखौ श्री भरन।।
जिन चरन प्रभु परस लनिहों तरी गौतम धरनि।
जिन चरन धरथो गोबरधन गरब-मधवा-हरन।।
दास मीरा लाल गिरधर आजम तारन तरन।।